:: प्रमाण - पत्र ::

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

प्रमाणित किया जाता है कि :—

1- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध शोध छात्रा का निजी एवं मौलिक शोध कार्य है ।

2- इन्होंने मेरे निर्देशन में दो वर्ष से अधिक कार्य किया है ।

3- शोध छात्रा ने हमारे विभाग में दो सौ दिनों से अधिक उपस्थिति दी है।

पर्यवेक्षक ,

डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी
एम०ए०,पी-एच०डी०(हिन्दी, संस्कृत),डी०लिट्०
आचार्य, हिन्दी-विभाग
पं० जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बांदा (उ०प्र०)

विश्रामसागर का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पीएच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

-: शोध छात्रा :-

कु० सीमा दीक्षित

एम० ए०, डी० पी० एड०

पर्यवेक्षक :—

डा० कृष्णदत्त अवस्थी

एम० ए०, पीएच० डी० (हिन्दी, संस्कृत) डी० लिट्०, आचार्य हिन्दी-विभाग

पं० जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बांदा (उ. प्र.)

मकर संक्रान्ति
सं० २०४२

:: भूमिका ::

****

विज्ञान के इस भौतिक युग में नैतिकता का ह्रास सभी मनीषियों के लिए एक गम्भीर चिन्ता का विषय बन गया है नैतिक मूल्यों के इस ह्रासोन्मुखी युग में क्या करना चाहिए ? किस प्रकार समाज में वांछित सुधार होना चाहिए ? किस प्रकार जन जीवन में शान्ति और सुव्यवस्था हो सकेगी, इस बात के लिए हम सभी को सोचने समझने और विचारने की आवश्यकता है । जब मैंने पी०एच-डी० स्तर के शोध के विषय में चिन्तन प्रारम्भ किया तब शोध-विषय पर गम्भीर अध्येताओं ने मुझे इसी नैतिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थ पर शोध करने का परामर्श दिया, जिसमें मेरी विचार धारा के अनुरूप सामग्री की सम्प्राप्ति निश्चित थी। परिणामस्वरूप मैंने विश्रामसागर को अपने शोध का विषय निर्धारित किया ।

इस शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में मैंने ग्रन्थकार श्री रघुनाथ दास रामसनेही के जन्म, स्थान, समय, शैशव, शिक्षा, दीक्षा व्यवसाय, विरक्त जीवन, काव्य रचना, काव्य प्रयोजन, तत्कालीन परिस्थितियों आदि का शोध पूर्ण विवेचन किया है । जिससे इस बात का पता लगाने में सुविधा हो सके कि किन प्रेरणाओं एवं परिस्थितियों ने कवि से इस प्रकार के महनीय ग्रन्थ को लिखवाया और किन परिस्थितियों ने एक सैनिक से एक आदर्श भक्त हो जाने की स्थितियाँ उत्पन्न कर दीं ।

द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत ग्रन्थ का सामान्य परिचय दिया गया है विषय वस्तु तीन खण्डों में विभक्त है इतिहासायन, कृष्णायन और रामायण, इन तीन भागों में इतिहासायन विविध पुराणों की कथावस्तु से सम्बद्ध है जिसमें वैष्णव भक्ति, नैतिक जीवन और सदाचार पर बल देने के लिए अनेक रोचक एवं उपदेशप्रद भक्ति प्रधान कथानकों को ग्रथित किया गया है द्वितीय भाग कृष्णायन के कृष्ण के समग्र जीवन को संक्षिप्त रूप में श्रीमद्भागवत आदि अनेक पुराणों के आधार पर संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है । तृतीय भाग

'रामायण' में राम कथा के समग्र प्रणयन में कवि ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता के साथ मनोयोग दिया है । वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण एवं राम कथा से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थों का आश्रय लेकर कवि ने इसे रोचक बनाने का प्रयास किया है उसमें अनेक स्थल ऐसे भी जोड़े गए हैं जो रामचरित मानस में स्थान नहीं पा सके । उनका सम्बन्ध रसिक भक्ति से प्रतीत होता है,जो तुलसी की मर्यादा-वादी भक्ति के अनुकूल नहीं था, किन्तु फिर भी कवि ने उसमें किसी प्रकार की अश्लीलता नहीं आने दी । 'राम कलेवा' इस बात का जीता-जागता उदाहरण है ।

तृतीय अध्याय में विश्रामसागर का रसात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है वैसे तो प्रायः सभी रसों का अस्तित्व इस ग्रन्थ में विद्यमान है किन्तु कवि की मुख्य वृत्ति शान्त रस और भक्ति रस में रमी है । जहाँ तक श्रृंगार का प्रश्न है वह भी सीमित और सन्तुलित है युद्धों के चित्रण में वीर और रौद्र रस का भी सुन्दर परिपाक किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में 'विश्रामसागर' की अलंकार-योजना पर प्रकाश डाला गया है । वैसे शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों के पर्याप्त प्रयोग किए गए हैं, किन्तु रामचरितमानस की भाँति सांगरूपकों के चित्रण में कवि की मनोवृत्ति अधिक रमी है उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक,यमक, और वक्रोक्ति कवि के प्रिय अलंकार प्रतीत होते हैं। इस प्रकार अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग कवि की काव्य कला का परिचायक है ।

पंचम अध्याय में विश्रामसागर में गुण, रीति तथा ध्वनि का विवेचन किया गया है और यह सिद्ध किया गया है कि कवि ने माधुर्य गुण का प्रयोग विशेष रूप से किया है । रीतियों में वैदर्भी रीति उसे अधिक प्रिय रही है। उसने नाद सौन्दर्य को भी स्थान दिया है और वस्तु ध्वनि को अनेक स्थानों में दिखाने की चेष्टा की गयी है ।

षष्ठम् अध्याय में 'विश्रामसागर' की भाषा का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और यह सिद्ध किया गया है कि कवि का वर्णविन्यास विशेष प्रशस्त है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों में उनकी प्रवृत्ति अधिक नहीं रमी,

क्यों कि वीतरागी कवियों को इन बातों से अधिक प्रयोजन नहीं रहता । फिर भी जिन मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। उनका भी एक गम्भीर उद्देश्य है, जो मुख्यत: नैतिक भावना और वैराग्य से सम्बद्ध है । कवि ने अपनी भाषा में संस्कृत के तत्सम् शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है बीच-बीच में उन्होंने उर्दू और फारसी के भी प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। आंशिक रूप में आंचलिक शब्द स्वत: प्रस्तुत हो गए हैं व्याकरणात्मक दृष्टि से कवि की भाषा महाकाव्योचित है। यत्र तत्र दोष अवश्य मिलते हैं, किन्तु वे नगण्य हैं ।

सप्तम् अध्याय में कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों का विश्लेषण किया गया है । समस्त ग्रन्थ में कवि ने 65 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, जो उनकी कवित्व शक्ति का परिचायक है। कथा प्रसंग की दृष्टि से छंदगत् औचित्य को कवि ने भली भांति पहचाना है। अधिकांश रूप में उन्होंने चौपाई, दोहा, सोरठा, गीतिका, छप्पय, कुण्डलिया, श्लोक, चतुष्पद, हंसाल, तोमर, तोटक, और रोला इन द्वादश छंदों का कवि ने अधिक प्रयोग किया है ।

अष्टम् अध्याय में यह दिखलाया गया है कि कवि को दर्शन शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था। सांख्य दर्शन, योग दर्शन और वेदान्त दर्शन का प्रभाव स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है । भक्ति-दर्शन को भी उन्होंने अच्छे ढंग से संवारा है। नैतिक विचारधारा, सत्संग की महिमा, जैसे सामाजिक आदर्शों को संत पुरुषों के जीवन दर्शन के साथ जोड़कर कवि ने अपने समग्र व्यक्तित्व का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

नवम् अध्याय में कवि की भक्ति पर विस्तृत विचार किया गया है, जिसमें भक्ति की महिमा, राम नाम का महत्व, कृष्ण भक्ति, शाक्त निंदा, गुरु महिमा आदि पर विचार किया गया है और कवि के प्रकृति-चित्रण पर भी चिन्तन प्रस्तुत कर के यह सिद्ध किया गया है कि प्रकृति के आलम्बन रूप को ही कवि ने अधिक महत्व दिया है जब कि यथा स्थान प्रकृति के अन्य रूपों को भी चित्रित किया गया है ।

दशम् अध्याय में यह दिखलाया गया है कि कवि का अध्ययन कितना व्यापक था। श्रीमद्भागवत, महाभारत एवं विविध पुराणों का मन्थन करके कवि ने उनसे जो नवनीत निकाला, उसे इस ग्रन्थ में समाज के कल्याण के लिए प्रस्तुत कर दिया। उन्हें धर्म, नीति, दर्शन और काव्य शास्त्र का प्रामाणिक ज्ञान था, जिसे ग्रन्थ के विविध उद्धरणों द्वारा प्रकट किया गया है और अन्त में यह दिखलाया गया है कि यह ग्रन्थ कितना लोक प्रिय है और क्यों ? इस प्रकार भारतीय संस्कृति का सार संग्रह स्वरूप यह ग्रन्थ अति श्लाघनीय है।

एकादश अध्याय में अपने उक्त शोध का उपसंहार करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि आज के इस अशान्त युग में यह विश्रामसागर ग्रंथ मानव की नैतिकता सदाचार, भक्ति भावना जैसी दिव्य एवं कल्याणकारक जीवन-शैली लेकर लोक का बहुत बड़ा कल्याण कर सकता है। ग्रंथकार ने अपने व्यापक-अध्ययन और नैतिक आचरण इन दोनों के प्रभाव से लोक को विश्राम देने के लिए अपने इस ग्रन्थ की रचना की है अतः वह अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है।

इस प्रकार यह शोध ग्रन्थ डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी के निर्देशन में लिखा गया है जो भारत के अनेक विश्वविद्यालयों के प्रसिद्ध शोध परीक्षक हैं और भक्ति साहित्य के बहुचर्चित विद्वान् हैं। इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन में मैंने पंडित जवाहर नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय के पुस्तकालय का आश्रय लिया है। एतदर्थ प्राचार्य डॉ० गोरखनाथ द्विवेदी का विशेष आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे वांछित पुस्तकों के अध्ययन करने की सुविधा प्रदान की, साथ ही नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय जो बांदा में स्थित है, उससे भी मुझे सहयोग प्राप्त हुआ। इस शोध-प्रबन्ध के सम्बन्ध में जिन विभिन्न विद्वानों से मुझे सहायता मिली है, उनमें डॉ० मुन्शीराम शर्मा, डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, डॉ० रमननाथ त्रिपाठी (दिल्ली) डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, डॉ० भगीरथ मिश्र, डॉ० उदयभान सिंह, डॉ०भोला शंकर जैसे विद्वानों का नाम मुख्य है। अप्रत्यक्ष रूप में मैं उन विद्वानों और मनीषियों का भी ऋण स्वीकार करती हूँ, जिनके ग्रन्थों, लेखों अथवा सुझावों से मैंने लाभ उठाया है।

अंत में अब मैं अपने पूज्य पिताजी श्री जगत नारायण दीक्षित को किन शब्दों में कृतज्ञता लिखूं, जिन्होंने इस शोध के सम्बन्ध में मेरे साथ अनेक यात्राएँ की । विभिन्न विद्वानों एवं महात्माओं से सम्पर्क करके अनेक शंकाओं का समाधान कराया । इसी प्रकार नतमस्तक माता जी श्री मती ऊषा की कृपा और वात्सल्य को किन शब्दों में स्मरण करूँ, जिन्होंने मुझे गृहकार्य से मुक्त रखकर अनवरत् अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया है । मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आधुनिक समाज के लिए ही नहीं, अपितु शोधार्थियों के लिए भी लाभदायक सिद्ध होगा ।

सीमा दीक्षित

सीमा दीक्षित

:: विषय-सूची ::

- विश्रामसागर का काव्य शास्त्रीय अध्ययन -

अध्याय- 1

कवि परिचय एवं रचनाकाल

महापुरुषों के जन्म स्थान एवं समय के विषय में प्रायः मतमतान्तर हो जाया करते हैं । किन्तु सौभाग्य से विश्रामसागर के रचयिता बाबा रघुनाथ दास रामसनेही के विषय में ऐसा नहीं है। इनके जीवन से सम्बद्ध सामग्री का संग्रह करने पर यह ज्ञात हुआ कि अयोध्या निवासी परमहंस महाराज राम मंगल दास विरचित "भक्त भगवन्त चरितावली" एवं "अवध संदेश" के "संत- चरितांक" में उनके जीवन से सम्बद्ध अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं । प्रस्तुत सन्दर्भ में उक्त आधार पर इनके जीवन के विषय में प्रकाश डाला जा रहा है और कतिपय बातें अयोध्या के संतों एवं महापुरुषों की भेंटवार्ता के आधार पर लिखने की चेष्टा की जा रही है । "रघुनाथ चरितामृत" शीर्षक लेख के आधार पर यह पता चलता है कि बाबा रघुनाथ दास नाम के तीन संत रहे हैं, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ विश्रामसागर के प्रणेता बाबा रघुनाथ दास का जन्म जनपद बाराबंकी के "पैतपुर" नामक ग्राम में सम्वत् 1874 विक्रमी, वैशाख शुक्ल तृतीया गुरुवार, के दिन हुआ था । इनके बाबा 'हरिराम' एक प्रसिद्ध कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे/उनके पुत्र श्री दुर्गाप्रसाद एक सामान्य सुशिक्षित किन्तु ब्रह्म भक्त थे । रघुनाथ जी का जन्म होते ही समस्त गाँव में उनका जन्मोत्सव मनाया गया और घर- घर में बधावे बजने लगे । अपने प्राकट्य होने के सन् में उन्होंने स्वयं ही अपने ही द्वारा रचित "राम नाम सुमिरणी" नामक ग्रन्थ में संवत् दोहा लिखा है -

वैशाख पख उतपति भयो भयो बैसे को ।
सिखे बैहनौ पित रघुनाथ जन बेहनौ सब दिनौ निश्चय ।।

शैशव -
========

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस सूक्ति के अनुसार

- -

1- राम नाम सुमिरणी ।

इनके बालचरित्र भी बड़े प्रभावशाली एवं लोकरंजक सिद्ध हुए। उनमें अनेक विचित्रताओं का आभास पाकर लोग इन्हें असाधारण बालक के रूप में समझने लगे थे और उनका यह विश्वास था कि भविष्य में यह बालक एक आदर्श महापुरुष होकर रहेगा ।

शिक्षा - दीक्षा -

यद्यपि ये प्रारम्भ से ही भावुक भक्त थे । कथावार्ता में इनकी विशेष रुचि रहती थी, किन्तु फिर भी अध्ययन के क्षेत्र में इन्होंने हिन्दी और संस्कृत का उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया था । वाल्मीकि रामायण, विभिन्न पुराणों एवं धर्म ग्रन्थों का अनुशीलन करना उनकी दिनचर्या थी । सत्संगति के प्रति इनका विशेष लगाव था, अतः भक्ति, नीति और दर्शन का इन्हें अच्छा ज्ञान हो गया था । इनके विचारों में शैशव से ही प्रगतिशीलता थी । कान्यकुब्ज ब्राह्मण होते हुए भी इन्होंने कभी हिन्दू - मुस्लिम के भेद को स्वीकार नहीं किया । मुहर्रम के दिनों में ये मुसलमान भाइयों को शर्बत पिलवाते थे । इससे यह ज्ञात होता है कि इनकी संकीर्ण मनोवृत्ति नहीं थी ।

इनकी वैराग्य प्रधान प्रवृत्ति को देखकर माता - पिता के चित्त में चिन्ता हुई कि कहीं हमारा पुत्र विरक्त न हो जाए, अतः उन्होंने उनका विवाह सम्पन्न करा दिया। किन्तु विवाहित होने पर भी उनको भजन की चिन्ता बनी रहती थी । इनकी आस्था में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी । इन्हें मल्ल-विद्या के प्रति विशेष लगाव था, अतः सुन्दर स्वरूप के साथ ही साथ उनका स्वास्थ्य भी उत्तम था । एक श्रेष्ठ पहलवान के रूप में उनकी गणना होने लगी थी ।

व्यवसाय -

गृहस्थाश्रम में जीविका की चिन्ता सबको होती है, परिणामस्वरूप इन्होंने [illegible] के राजा के सेनापति 'वाजिद अलीशाह' के यहाँ नौकरी कर ली। तदुपरान्त सेना में भर्ती हो गए। फिर भी उनकी भक्ति और सत्संग की प्रवृत्ति बराबर बनी ही रही। वहीं पर उस समय के सुप्रसिद्ध वैष्णव भक्त बलदेवदास

जी के दर्शन हुए और उन्हीं से उन्होंने राममंत्र की दीक्षा ली।[1] उन्हीं की कृपा से इनका नाम रघुनाथ दास रामसनेही पड़ गया।

जीवन का मोड़ -
============

ऐसी किंवदन्ती है कि एक बार जब ये सेनानायक के पद पर प्रतिष्ठित थे तब इनकी सेना की ओर से "मिनगागढ़" पर चढ़ाई की गयी, किन्तु ये (बाबा रघुनाथ दास रामसनेही) अपनी पूजा में संलग्न रहे, अतः उनका रूप धारण करके किसी अदृश्य शक्ति ने सेनानायक की भूमिका निभायी और उनको विजय प्राप्त हुयी। अंग्रेजी सेनापति राबर्ट ने सेनानायक की तत्परता से विजय प्राप्त की। शत्रु सेना के पैर उखड़ गये। जब ये उसके पास पहुँचे तब उस अंग्रेज-अधिकारी ने इनकी वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इन्हें इस बात पर महान आश्चर्य हुआ, क्यों कि ये अनुपस्थित रहे और सैनिक दल की प्रतीक्षा में थे। यद्यपि उन्होंने बताया कि मैं आज युद्ध में सम्मिलित नहीं हो पाया था। किन्तु राबर्ट साहब ने यह कहा कि - तुमने कठोर परिश्रम और आदर्श शौर्य दिखलाया है, अतः तुम जाकर विश्राम करो। तुम्हारी मनः स्थिति ठीक नहीं है। इस घटना का यह प्रभाव पड़ा कि इन्होंने समझा कि मेरे आराध्य भगवान राम को मेरे लिए महान कष्ट सहना पड़ा, अतः उसी दिन उन्होंने सेना की नौकरी से त्याग पत्र दे दिया।

गुरु -
====

इनके गुरु का नाम देवादास जी था। देवादास जी का जन्म ब्राह्मण कुल में सम्पन्न घराने में हुआ था। देवादास जी रामप्रसादाचार्य (बड़ी गद्दी या बड़ा स्थान) या मूल गद्दी का नाम रामप्रसादाचार्य था। 'कनक-भवन' और 'हनुमान गढ़ी' (अयोध्या) के बीच में यह स्थान अब भी है। वहाँ से देवादास जी राम निवास "बड़ा फाटक" प्रसिद्ध रामघाट मार्ग में आये। देवादास गुरु की मूल गद्दी में जानकी जी का अधिक महत्व था, किन्तु उन्होंने (देवादास जी) राम का महत्व अधिक बतलाया है। देवादास जी अतिथि गंज के रहने वाले थे।

- -

1- विश्रामसागर, प्राक्कथन, पृ0 -1

पुरी सिरनाम पुनि रामघाट परधाम तहँ बसि जन रघुनाथ नित ।

जपत राम को नाम।[1] अरिल्ल छंद , देवादास जी के शिष्य रघुनाथ दास जी थे । रघुनाथ दास जी के प्रमुख गुरु भाई -

केशवदास मुरारि महामति दास प्रह्लाद अवन्ध अतोरि ।
राज बिहारी रघुबर राम गुलाम उभय सिय वरण जलोरि ।।[2]

बाबा रघुनाथ दास रामसनेही जी कृत एक ग्रन्थ "रामनाम सुमिरणी" पर बहुत ही संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला जा रहा है -

<u>रामनाम सुमिरणी -</u>

राम नाम सुमिरणी ग्रन्थ का रचनाकाल सम्वत् 1919 सन् 1863 है। 'राम नाम सुमिरणी' रघुनाथ दास रामसनेही कृत में उक्त चौपाई पुष्टि के लिए

चौदनस समयोनवस कर संवत जानि ।
जेठ मास सित पक्ष वार रवि मानिये तब कीन्ह्यो यह ग्रन्थ ।।

राम नाम सुमिरणी में राम नाम महिमा, चित्त की एकाग्रता के लिए नाम का महत्व, एकाग्रता के पश्चात् अनाहत नाद तथा नैसर्गिक प्रकाश इत्यादि गुप्त तथा गूढ़ रहस्यों का स्पष्ट शब्दों में वर्णित है ।

रघुनाथ दास जी के गुरुभाई मुरारि दास जी के पास मुझे यह ग्रन्थ रामनाम सुमिरणी मैं (मशीनी) का प्राप्त हुआ ।

गुरु भाई - मुरारि दास जी आश्रम के महंत रघुवीर दास जी हैं। यह आश्रम 'तुलसी बाड़ी' रामघाट मार्ग, अयोध्या में स्थित है। यह ग्रन्थ महंत रघुवीर दास जी के पास प्राप्त हुआ ।

रामानुजाचार्य के अनुयायी नामानुरागी वैष्णव रामानन्दी परम्परा के सम्प्रदाय में हैं ।

1- राम नाम सुमिरणी

2- ब रामनाम सुमिरणी - रघुनाथ दास रामसनेही

सन् 1863 ई0 बाबू राम लकाऊ चीनी बाजार सिकारपाना में राम नाम सुमिरणी छपी ।

दिनचर्या -

वे नित्य प्रातः उठकर कागज पेन्सिल लेकर सरयू के किनारे जाते थे तथा वहीं पर विश्रामसागर की रचना करते थे । वे स्वयंपाकी नहीं थे जाति-पांति का विचार न कर कई गृहस्थों के यहाँ से रोटी माँग कर लाते थे तथा एक पोटली में बाँधकर सरयू नदी में डुबोकर खाते थे । कभी रसोई की भिक्षा-वृत्ति के लिए साधु समाज ने आपत्ति उठाई तथा इस बात को लेकर उन्हें खान - पान से बहिष्कृत कर दिया । राम सनेही जी सदैव यही कहते रहे कि प्रभु के दिए हुए प्रसाद को वह कैसे छोड़ सकते हैं । इस पर बड़ी संख्या पर साधु संत एकत्रित हुए तथा सरयू के किनारे उनके साथ-साथ गए । रामसनेही जी ने भिक्षा से प्राप्त रोटियों को सबके सामने एक पोटली में बाँधा तथा सरयू जी में डुबो कर जैसे ही पोटली को खोला तो प्रत्येक रोटी में राम नाम अंकित देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे तथा अपने समाज में बड़े आदर-पूर्वक सम्मिलित कर लिया ।

बाबा रघुनाथ दास रामसनेही जी का तिलक -
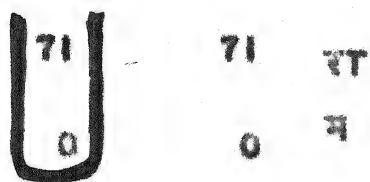
इस प्रकार का तिलक लगाते थे ।

आश्रम -

आज उनका यह आश्रम तथा साधना स्थल बहुत जीर्ण अवस्था को प्राप्त हो गया है ।

महंत गोविन्द दास जी आश्रम के जीर्णोद्धार के लिए प्रयत्नशील हैं । आश्रम में उनके दो कमरे हैं, जहाँ पर बाबा रघुनाथ दास जी साधना किया करते थे ।

विरक्त जीवन -

वैराग्य के कारण इन्होंने पैदल ऋषिकेश तक की यात्रा की। वहाँ कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् गंगा के किनारे - किनारे पैदल ही काशी के लिए चल पड़े। तीन वर्ष की यात्रा करके वे काशी पहुँचे। इस यात्रा में गंगा-जल पान करना और जो कुछ भी मिल जाता उससे उदर पूर्ति कर लेना इनकी प्रवृत्ति रही। उसी समय एक ग्राम्य में महामारी के प्रकोप से एक ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हो गयी थी, किन्तु इन्होंने उसे अपने भजन के प्रभाव से गंगाजल पिलाकर जीवित कर दिया था। काशी में इनका प्रभाव दिन - दिन फैलता गया और इनके अनेक शिष्य हो गए। जब अयोध्या निवासी इनके गुरु स्वामी बलदेव दास जी को इनके प्रभाव का पता चला, तब इन्होंने एक वैष्णव भक्त को भेजकर इन्हें अपने पास बुलवा लिया। इनका आश्रम अयोध्या नगरी के विद्याकुण्ड में बना हुआ था। इनकी उदार प्रवृत्ति इतनी थी कि चाहे जितने सारे संत आ जाए, सबको भोजन दिलाते थे। कहते हैं कि एक दिन गुरुजी ने कहा कि तुम आवश्यकता से अधिक उदारता करते हो। यदि सीमा से अधिक साधु सेवा करनी है तो अलग से आश्रम बना लो। फलत: इन्होंने उन्हें प्रणाम किया और उनके स्थान से जाकर वासुदेव-घाट में रहने लगे और कठोर तप करते हुए साधु संतों की सेवा करने लगे। जिससे समस्त अयोध्या में साधु समाज में इनका बड़ा सम्मान हुआ। सोलह वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् इन्होंने अपने घर की यात्रा की। वहाँ इनकी उपस्थिति में इनके पिताजी का देहान्त हो गया। उनकी विधिवत् क्रिया सम्पन्न करने के पश्चात् कुछ दिनों में उनकी माता जी का भी स्वर्गवास हो गया। कुछ वर्षों तक इन्होंने अपनी जन्म भूमि में ही रहकर भजन किया और दो पुत्र और दो पुत्रियों को जन्म देने के बाद स्त्री के दिवंगत हो जाने पर इन्होंने पूर्ण वैराग्य धारण कर लिया। अन्त में ये अयोध्या में आकर सरयू के पावन तट पर भजन करने लगे। इनकी भक्ति से प्रभावित होकर राजा मानसिंह ने रामघाट पर इन्हें आश्रम बनाने के लिए भूमि

1- भक्त भगवन्त चरितावली सम्वत् 2032- परमहंस रामप्रसादास अवध सन्देश सन्त चरितांक 3-4 वर्ष 9 सम्पादक पं0-श्री रामजीरामायणी 1966

दान में दी । आप वहाँ पर एक सूखे पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे जो कुछ दिन बाद हरा-भरा हो गया वह आगे चलकर "ठूँठा पीपल" के नाम से विख्यात हुआ । फैजाबाद के जिलाधिकारी ने इनसे विशेष अनुरोध करके छावनी नाम से साधु सन्तों के निवास के लिए एक भव्य आश्रम बनवा दिया। उनके प्रधान शिष्य जगन्नाथ ने इनका पूर्ण सहयोग दिया । उस आश्रम में विधिवत् साधु सेवा होती थी और कोठारी पुरणदास बड़ी ही लगन के साथ साधु सेवा में इनकी सहायता करते थे। कहते हैं कि एक बार कोठारी जी वैयक आश्रम को गए । उनके स्थान पर किशनदास नामक शिष्य को भंडारी बनाया गया । महाराज जी ने उस समय एक बहुत बड़ा भंडारा किया, किन्तु अकस्मात् घी के घट जाने पर महाराज जी ने सरयू जी से जल मँगवाया और कढ़ाई में डलवा दिया। तत्पश्चात् जैसे ही घी बाहर से आ गया तो जितना जल लिया गया था उतना ही घी सरयू में डुबवा दिया गया । यह इनके अलौकिक चमत्कार का ही प्रभाव था । जब 1934 ई० में अकाल पड़ जाने के कारण साधु महात्माओं की दशा अति दयनीय हो गयी थी, उस संकट के समय में भी आपने सभी संतों को सम्मान पूर्वक भोजन कराया था।

इनकी सिद्धि के अनेक कथानक प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि सरयू का प्रवाह अयोध्या से एक कोस दूर हो गया था । यह चमत्कार उनकी प्रार्थना से हुआ था, क्यों कि इन्हें साधु महात्माओं के ठहरने के लिए कुछ भूमि की आवश्यकता थी। एक राजा ने इनकी भक्ति से प्रभावित होकर निवेदन किया कि आप मेरे रुपये से एक भव्य भवन बनवा लें। उन्होंने कहा कि इस पैसे को साधु सेवा में लगाओ और संतों को भोजन कराओ। कहते हैं कि एक बार एक संत आया। पौष के महीने की बात है उसने महाराज से कहा कि आप मुझे मालपुआ और खरबूजा खिलाइये। महात्मा जी ने अपने तप के प्रभाव से इस असामयिक मांग की भी पूर्ति कर दी। कहते हैं कि एक बार अन्न से लदी हुयी नौका सरयू में डूबने ही वाली थी किन्तु महाराजने अपने तप के प्रभाव से उस डूबती हुई नौका को बचा लिया । एक बार की घटना है कि बढ़ी हुई सरयू में महाराज जी खड़ाऊँ पहने हुए ही कूद पड़े और कहा कि मैनाक पर्वत सरयू जी में स्नान करने आया है, अतः यह

गहरी नहीं है। ऐसा कहकर सरयू जी के उस पार चले गए। इसी प्रकार की पच्चीसों कहानियाँ उनके जीवन के साथ जुड़ी हुई हैं।

अयोध्या के संतों एवं महापुरुषों की भेंटवार्ता से एक बात यह भी ज्ञात हुयी है कि अभी हाल में ही इतने वर्षों बाद बाबा रघुनाथ दास रामसनेही जी के दर्शन कई संतों को हुए और रामसनेही जी ने कहा कि मेरी इच्छा है कि रामचरित मानस की ही भाँति 'विश्रामसागर' का भी अखण्ड पाठ करवाया जाय।

भगवद् भक्त होने के नाते अपने शिष्यों की प्रेरणा से उन्होंने 'विश्रामसागर' नामक ग्रन्थ की रचना की[1] और फिर सं० 1919 में उन्होंने "रामनाम सुमिरणी" नामक ग्रंथ की रचना की।

इस प्रकार बाबा रघुनाथ दास रामसनेही त्याग, सहिष्णुता, राम-भक्ति और सत्संग में संलग्न रहे। साधु समाज में प्रतिष्ठा सम्मान प्राप्त किया और पौष शुक्ल दशमी, गुरुवार के दिन सम्वत् 1939 विक्रमी में उन्होंने संत सभा के मध्य रामधुन करते-करते प्राणायाम द्वारा अपने शरीर को छोड़ दिया।

इस प्रकार की मृत्यु विरले संतों की ही होती है।

__(ख) काव्य रचना का समय –__

भगवद् भक्त होने के नाते अपने शिष्यों की प्रेरणा से उन्होंने विश्रामसागर नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसका रचना काल सम्वत् 1911 पुरुषोत्तम मास माना जाता है। उन्होंने स्वयं विश्रामसागर में ही ग्रन्थ के रचना काल का उल्लेख किया है। यथा –

सोइ नाम सुमिरि सुभाय। कहौं ग्रन्थ एक बनाय।
विश्रामसागर नाम। सुनि लहै नर आराम॥
संवत मुनि वसु निगम शश। रुद्र अधिक मधुमास।
शुक्ल पक्ष कवि नौमिदिन। कीन्हीं कथा प्रकाश॥

1– विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय– 2 पृ० 12

अर्थात् मुनि + वसु + निगम + शैल + रूद्र = संवत् 1911 पुरुषोत्तम मास-7 (मलमास) के 4—100चैत्र 11 शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि को इस ग्रन्थ की रचना हुई।

काव्य का प्रयोजन -

प्रत्येक देश का साहित्य किसी न किसी रूप में जीवन एवं नैतिक हितों से अनुप्रणित होता है। साहित्य की प्रत्येक दिशा नैतिक आकांक्षाओं एवं जीवन परिधि की ओर संकेत करती है। वैदिक साहित्य, मानव - जीवन को तीन प्रमुख आकांक्षाओं की ओर संकेत करता है (1) पुत्रैषणा (2) वित्तैषणा (3) लोकैषणा।

"काव्य प्रकाश" के रचयिता 'मम्मट' ने अपने ग्रन्थ में काव्य निर्माण का प्रयोजन बतलाते हुए लिखा है -

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥[1]

अर्थात् यश की प्राप्ति, सम्पत्ति लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा, रोगादि, विपत्तियों का नाश, तुरन्त ही उच्चकोटि के आनन्द का अनुभव और प्रेयसी के समान मधुर उपदेश देने के लिए काव्य ग्रंथ उपादेय (प्रयोजनीय) हैं।

उपर्युक्त श्लोक के आधार पर काव्य के निम्नांकित प्रयोजन स्वीकार किये जा सकते हैं -

(1) यश प्राप्ति -

आचार्य मम्मट ने यश के प्रयोजन की व्याख्या[1] में बताया है कि कालिदास आदि विशिष्ट कवियों के काव्य का प्रयोजन यश ही था। महाकवि जायसी ने अपने काव्य पद्मावत् के सम्बन्ध में लिखा है -" औ मैं जानि कवित्त अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।[2]" महाकवि तुलसीदास जी ने

- -

1- काव्य प्रकाश 1/2- मम्मट

2- पद्मावत् - जायसी

यद्यपि "स्वांतः सुखाय" की घोषणा की है, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि "जो प्रबन्ध बुध नहि आदरहीं । सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ।।" इसके अतिरिक्त निज कवित्त केहि लाग न नीका " से भी यही ध्वनित होता है कि इस महाकवि का भी हृदय यश की इच्छा से सर्वथा शून्य नहीं था।अस्तु, जैसा कि अंग्रेजी में कहा जाता है -

" Fame is the last infirmity of noble minds."

(ख्याति कामना, महापुरुषों का अन्तिम दौर्बल्य है)

अर्थकृते -
====

आचार्य मम्मट के "अर्थकृते" की व्याख्या में लिखा है कि काव्य "रत्नावली नाटिका " के प्रणेता राजा श्री हर्ष आदि से धावक पण्डित आदि को धन प्राप्ति कराता है ।मम्मट का यह दृष्टिकोण कवि की जीविका से सम्बन्धित है।इसलिए आचार्यों ने इसे महत्व प्रदान किया है । आचार्य सोमनाथ ने कीर्ति के बाद वित्त को महत्व देते हुए लिखा है -

"कीरति वित्त विनोद अरु,अति मंगल को देति ।
करै भलौ उपदेश नित,वह कवित्त चित चेति ।।

व्यवहार - परिज्ञानम् -

मम्मट की दृष्टि काव्य की उपलब्धि पर भी थी।अतः उन्होंने काव्य प्रयोजन में ही 'व्यवहार विदे' का उल्लेख कर दिया । काव्य के व्यावहारिक पक्ष पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का और विस्तार कर देते हैं । शायद यही मन्तव्य डॉ० जानसन की अभिव्यक्ति में भी निहित है -

काव्य बौद्धिक सत्यता हेतु कल्पना के आह्वान द्वारा सत्य है,आनन्द के सम्मिश्रण की कला है -

" Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason."

अनर्थ निवारणम् -

मम्मट का "शिवेतरक्षये" प्रयोजन काव्य रचना को साहित्य की परिधि में प्रतिष्ठित कर देता है । हितसम्पन्नता, लोक मंगल कामना एवं अशिव की क्षति का आशय ही यह है कि काव्य "स - हित" होता है, उसकी सहितता ही उसकी जीवन्तता का मूल आधार है । "कुरुक्षेत्र" के रचयिता दिनकर ने अपने काव्य में विश्व को युद्ध के अनिष्ट से बचाने के लिए ही शान्ति का संदेश दिया है ।

सद्यः आनन्द प्राप्ति -

"सरस्वती कण्ठाभरण" के टीकाकार 'रत्नेश्वर' ने इसी आनन्द को प्रीति का नाम देते हुए लिखा है -

"प्रीतिः सम्पूर्णः काव्यार्थस्वाद समुत्थः आनन्दः अर्थात् सम्पूर्ण काव्यार्थ के आस्वाद से समुत्पन्न आनन्द ही प्रीति है । 'भामह' ने इसे प्रीति ही माना है। करोति कीर्तिम्च प्रीतिम्च" अभिनव गुप्त ने भी प्रीति को ही प्रधानता दी है।

कान्ता सम्मित उपदेश -

जैसे कामिनी की वाणी प्रिय लगती है वैसे ही काव्य की वाणी प्रिय लगती है । काव्य का यह उद्देश्य हो जाता है कि वह पाठकों को कान्ताओं की भाँति ऐसा उपदेश करें कि लोग उसका पूरी तरह पालन करें । कान्ता एवं काव्य के उपदेशों में प्रभु सम्मित शब्द प्रधान एवं सुहृत्सम्मित अर्थ प्रधान दोनों प्रकार के उपदेश सन्निहित होते हैं। अतः काव्य से हानि की शंका नहीं रहती और लोग काव्य पर उसी तरह विश्वास करते हैं, जैसे वे अपनी प्रिया कामिनी पर, जो कभी अनर्थ मूलक कार्य का आग्रह नहीं करती ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य-प्रयोजन पर विचार करते हुए उन्मुक्त हृदय से लोकैषणा पर बल दिया है और 'विश्रामसागर' के रचयिता बाबा रघुनाथ दास रामसनेही भी लोक कल्याण सम्पादन के उद्देश्य से काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे । अध्येताओं को सभी ग्रन्थ एकत्र नहीं मिलते, अतः समस्त धार्मिक

ग्रन्थों का सार-तत्व लेकर इन्होंने "रामायण" की भाँति अपने इस प्रकृत ग्रन्थ "विश्रामसागर" की रचना की है, जिसका अध्ययन करने पर एक अलौकिक शांति का अनुभव होता है ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कवि अपने लक्ष्य में पर्याप्त सफल रहा है । यही कारण है कि ग्रामजीवन में "मानस" की भाँति "विश्रामसागर" भी घर घर रमा हुआ है और लोग इसकी चर्चा करते हुए शान्ति का अनुभव करते हैं ।

तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक स्थितियाँ -
===

'विश्रामसागर' का रचना काल सन् 1855 के करीब का है। भारत में मध्ययुग सोलहवीं शती के बाद भी प्रलम्बित रूप से बना रहता है, क्यों कि भारत पर बर्बर आक्रमणों ने देश में अन्धयुगीन अवस्था उत्पन्न कर दी और वैज्ञानिक तथा सामाजिक क्रान्ति के अभाव में प्राय: 1857 ई0 तक मध्य युग का ही प्रभाव रहा ।

इस समय देश में अनेक कारणों से बहुत सा असन्तोष था । जनता आर्थिक कष्टों से पीड़ित थी । मध्य वर्ग के लोग बेकारी के कारण संकट में थे । सभी बुद्धिमान् भारतीय शोषण - विचार में थे तथा अपने देश के आर्थिक शोषण के कारण दु:खी थे । भारत की आर्थिक पद्धति को इंग्लैण्ड की जनता की आवश्यकता के अनुसार ढाल दिया गया । भारतीयों के हितों को पूर्ण रूप से उपेक्षित किया गया । ब्लण्ट के अनुसार , भारतीय अर्थ की बुराई यह थी कि भारतीय वित्तमन्त्री इंग्लैण्ड के हितों का भारत के हितों की अपेक्षा अधिक ध्यान रखते थे ।

भारतीयों के विषय में यूरोपीय लोगों में अनेक प्रकार की कहावतें प्रचलित थीं । प्रथम, एक यूरोपीय जीवन का मूल्य कई भारतीय जीवनों के समान था । द्वितीय, प्राच्य व्यक्ति केवल एक ही वस्तु को समझता है और वह है भय । तृतीय, इंग्लैण्ड को विवश होकर कई प्राणों को गँवाना पड़ा तथा भारत पर अधिकार रखने के लिए लाखों रुपये व्यय करने पड़े ।[1]

- -

1- भारत का संवैधानिक इतिहास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन । राष्ट्रवादी आन्दोलन का विकास - पृ0 240-241। विद्याधर महाजन

डॉ०ई० वाचा के कथनानुसार - "भारतीयों की आर्थिक अवस्था ब्रिटिश शासन के अधीन बिगड़ चुकी थी । चार करोड़ भारतीयों को केवल दिन में केवल एक बार खाना खाकर सन्तुष्ट रहना था । इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैण्ड भूखे किसानों से बलपूर्वक कर प्राप्त करता था तथा वहाँ अपना माल बेच कर लाभ कमाता था ।"[7] भारत मंत्री लार्ड सैलिसबरी ने 1857 में स्वीकार किया कि ब्रिटिश शासन भारत का रक्त शोषण करके उसे रक्त हीन दुर्बल बना रहा है ।

अन्याय के दमन और रामराज्य की स्थापना के लिए सामूहिक चेतना, शौर्य-संगठन, भक्ति और नीतिमत्ता की आवश्यकता होती है, जिनकी प्रतिध्वनि "रामायण(तुलसी कृत)" में पद - पद पर मिलती है। महाराष्ट्र के संत समर्थ गुरु रामदास का "दास बोध" जो राजनीतिक दृष्टि से पतित जाति को ऊपर उठाने का अमोघ मंत्र था । लोक सुखी विष्णु की कल्पना में उदासी और निराशा का कहीं नाम भी नहीं है । इस प्रकार सगुण भक्ति आन्दोलन का सम्बन्ध उस राजनीतिक प्रक्रिया से है, जिसने भारत में मुगल - साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। मध्य युग तक संसार की सबसे प्रबल भावना और प्रेरक शक्ति धर्म था, वह राजनीति और साहित्य सभी को प्रभावित करता था ।

आचार्य शुक्ल जी अपने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में लिखते हैं, "इतने भारी राजनीतिक उलट- फेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही । अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?"[8]

मध्य युग में राजनीति और सामाजिक जीवन से साहित्य को जितनी प्रेरणा मिली, उससे कहीं अधिक प्रेरणा धर्म से मिली । इस युग की प्रधान धार्मिक-भावना भक्ति थी, यद्यपि इस मुख्य धारा के अगल- बगल में दूसरी भावनाएँ भी काम कर रहीं थी । शैव, वैष्णव, जैन तथा बुद्ध आदि सभी ने भगवान् का रूप धारण किया और उनकी उपासना से ही संसार में ऋद्धि सिद्धि मिल सकती थी । इस समय पौराणिक धर्म तान्त्रिक रूप धारण करता जा रहा था । तान्त्रिक धर्म की पूजा-

पद्धति और उपासना में वैष्णव, शैव, शाक्त और बौद्ध एक दूसरे के निकट आ रहे थे[1]।

इस प्रकार इस समय साहित्य में आस्तिकता का स्वर भी मुखर था। नैतिक भावनाओं और आदर्शों पर साहित्य का सृजन हो रहा था, अतः यह प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विश्रामसागर' भी इन प्रभावों से अछूता नहीं है। इसमें नैतिक-जीवन और भक्ति भावना को अत्यधिक प्रश्रय दिया गया है। भक्ति के क्षेत्र में भी वैष्णव भक्ति इसीलिए मुख्य रूप में वर्णित की गयी है कि इसके कवि वैष्णव थे। अयोध्या धाम से उनका विशेष सम्बन्ध होने के कारण 'विश्रामसागर' राम-भक्ति से ओत-प्रोत है। और राम के ही अवतार माने जाने वाले श्री कृष्ण के कथानक को भी इसमें उसी मधुरता के साथ चित्रित किया गया है। स्वामी अग्रदास के समय से राम की मर्यादा वादी भक्ति में रसिक भावना का भी प्रभाव हो गया था। फलतः इसमें राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय की केवल उतनी ही झलक दिखायी गयी है, जिससे लौकिक मर्यादा वाद में भी किसी प्रकार की आँच न आये।

इस प्रकार विश्रामसागर में तत्कालीन परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

- -

1- हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में भारतीय मध्ययुग- डॉ० राजवती पाण्डेय

'विश्रामसागर' विक्रमी सम्वत् 1911 की एक भक्ति प्रधान रचना है, जिसमें तुलसी के रामचरितमानस की अमिट छाप पड़ी हुई है। इसका रचयिता कवि वैष्णव था, जिसमें राम भक्ति का प्राधान्य था। इसका कारण यह है कि साधु के रूप में उनकी आस्था का प्रमुख स्थान भी राम की जन्मभूमि अयोध्या ही रही है। इस प्रकार मानस की भाँति इसमें भी नाना पुराणों और धर्म ग्रन्थों का सारांश सन्निहित है। इसके अतिरिक्त इसमें विभिन्न राम कथा ग्रन्थों का भी उल्लेख है। अवधी भाषा में निबद्ध यह ग्रन्थ जनता के कल्याण के लिए लिखा गया है। कवि का स्वयं का कहना है कि मैं एक ही ग्रन्थ में अनेक ग्रन्थों का सारतत्व सन्निहित कर रहा हूँ, जिसमें अनेक भक्ति प्रधान कथानक भी दिए गए हैं।[1]

'विश्रामसागर' की विषय वस्तु तीन खण्डों में विभक्त है। यहाँ प्रथम 'इतिहासायन' खण्ड जिसमें विविध पौराणिक आख्यानों का विवरण सैंतालिस अध्यायों में दिया गया है। द्वितीय खण्ड 'कृष्णायन' के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें बारह अध्यायों के माध्यम से कृष्ण कथा की आंशिक व्याख्या की गई है। तृतीय खण्ड 'रामायण' नाम से विख्यात है, जिसमें बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक का समस्त कथानक रामचरितमानस एवं विभिन्न राम कथा ग्रन्थों से सम्मिलित आधार पर लिखा गया है। इसमें कुल तीस अध्याय हैं। इस प्रकार मेरे विचार से समस्त ग्रन्थ का क्रमशः खण्डों में सामान्य परिचय एवं विषय-वस्तु इस प्रकार है :—

(क) वस्तुविषय इतिहासायन का परिचय -

इतिहास और अयन इन दो शब्दों की सन्धि से इतिहासायन

1- पुनि बहुमत बहु ग्रन्थन माहीं। सब संग्रह बिन जानि न जाहीं।।
तेहि ते मैं एक ग्रन्थ सँवारा। धाव चरण कम अर्थ अपारा।
बात बात पर वर इतिहासा। भक्ति विवेक सहित नहिं हासा।।

विश्रामसागर - पृ0 13 - 14

डी०ई० वाचा के कथनानुसार "भारतीयों की आर्थिक अवस्था ब्रिटिश शासन के अधीन बिगड़ चुकी थी । चार करोड़ भारतीयों को केवल दिन में केवल एक बार खाना खाकर सन्तुष्ट रहना था । इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैण्ड भूमि किसानों से बलपूर्वक कर प्राप्त करता था तथा वहाँ अपना माल भेज कर लाभ कमाता था ।" भारत मंत्री लार्ड सैलिसबरी ने 1857 में स्वीकार किया कि ब्रिटिश शासन भारत का रक्त शोषण करके उसे रक्त हीन दुर्बल बना रहा है ।

अन्याय के दमन और रामराज्य की स्थापना के लिए सामूहिक चेतना, शौर्य-संगठन, भक्ति और नीतिमत्ता की आवश्यकता होती है, जिनकी प्रतिध्वनि "रामायण(तुलसी कृत)" में पद - पद पर मिलती है। महाराष्ट्र के संत समर्थ गुरु रामदास का "दास बोध" तो राजनीतिक दृष्टि से पतित जाति को ऊपर उठाने का अमोघ मंत्र था । लोक रक्षी विष्णु की कल्पना में उदासी और निराशा का कहीं नाम भी नहीं है । इस प्रकार सगुण भक्ति आन्दोलन का सम्बन्ध उस राजनीतिक प्रक्रिया से है, जिसने भारत में मुगल - साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। मध्य युग तक संसार की सबसे प्रबल भावना और प्रेरक शक्ति धर्म था, वह राजनीति और साहित्य सभी को प्रभावित करता था ।

आचार्य शुक्ल जी अपने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में लिखते है, "इतने बड़े राजनीतिक उलट- फेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही । अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?"[7]

मध्य युग में राजनीति और सामाजिक जीवन से साहित्य को जितनी प्रेरणा मिली, उससे कहीं अधिक प्रेरणा धर्म से मिली । इस युग की प्रधान धार्मिक-भावना भक्ति थी, यद्यपि इस मुख्य धारा के अगल- बगल में दूसरी भावनायें भी काम कर रहीं थी । देव, ईश्वर, जैन तथा बुद्ध आदि सभी ने भगवान् का रूप धारण किया और उनकी उपासना से ही संसार में ऋद्धि सिद्धि मिल सकती थी । इस समय पौराणिक धर्म तान्त्रिक रूप धारण करता जा रहा था । तान्त्रिक धर्म की पूजा-

पद्धति और उपासना में वैष्णव, शैव, शाक्त और बौद्ध एक दूसरे के निकट आ रहे थे[1]।

इस प्रकार इस समय साहित्य में आस्तिकता का स्वर भी मुखर था। नैतिक भावनाओं और आदर्शों पर साहित्य का सृजन चल रहा था, अतः यह प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विश्रामसागर' भी इन प्रभावों से अछूता नहीं है। उसमें नैतिक-जीवन और भक्ति भावना को अत्यधिक प्रश्रय दिया गया है। भक्ति के क्षेत्र में भी वैष्णव भक्ति इसीलिए मुख्य रूप में वर्णित की गयी है कि इसके कवि वैष्णव थे। अयोध्या धाम से उनका विशेष सम्बन्ध होने के कारण 'विश्रामसागर' राम-भक्ति से ओत-प्रोत है और राम के ही अवतार माने जाने वाले श्री कृष्ण के कथानक को भी इसमें उसी मधुरता के साथ चित्रित किया गया है। स्वामी अग्रदास के समय से राम की मर्यादा वादी भक्ति में रसिक भावना का भी प्रभाव हो गया था। फलतः इसमें राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय की केवल उतनी ही झलक दिखलायी गयी है, जिससे लौकिक मर्यादा वाद में भी किसी प्रकार की आँच न आवे।

इस प्रकार विश्रामसागर में तत्कालीन परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

- -

1- हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में भारतीय मध्ययुग- डॉ० राजबली पाण्डेय

अध्याय - 2

विजयानगर का सामान्य परिचय

'विश्रामसागर' विक्रमी सम्वत् 1911 की एक भक्ति प्रधान रचना है, जिसमें तुलसी के रामचरितमानस की अमिट छाप पड़ी हुई है। इसका रचयिता कवि वैष्णव था, जिसमें राम भक्ति का प्राधान्य था। इसका कारण यह है कि साधु के रूप में उनकी साधना का प्रमुख स्थान भी राम की जन्मभूमि अयोध्या ही रही है। इस प्रकार मानस की भाँति इसमें भी नाना पुराणों और धर्म ग्रन्थों का सारांश सन्निहित है। इसके अतिरिक्त इसमें विभिन्न राम कथा ग्रन्थों का भी उल्लेख है। अवधी भाषा में निबद्ध यह ग्रन्थ जनता के कल्याण के लिए लिखा गया है। कवि का स्वयं का कहना है कि मैं एक ही ग्रन्थ में अनेक ग्रन्थों का सारतत्व सन्निहित कर रहा हूँ, जिसमें अनेक भक्ति प्रधान कथानक भी दिए गए हैं[1]।

विश्रामसागर की विषय वस्तु तीन खण्डों में विभक्त है। यहाँ प्रथम 'इतिहाससायन' खण्ड जिसमें विविध पौराणिक आख्यानों का विवरण तैंतालिस अध्यायों में दिया गया है। द्वितीय खण्ड 'कृष्णायन' के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें द्वादश अध्यायों के माध्यम से कृष्ण कथा की आंशिक व्याख्या की गई है। तृतीय खण्ड 'रामायण' नाम से विख्यात है, जिसमें बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक का समस्त कथानक रामचरितमानस एवं विभिन्न राम कथा ग्रन्थों के सम्मिलित आधार पर लिखा गया है। इसमें कुल तीस अध्याय हैं। इस प्रकार मेरे विचार से समस्त ग्रन्थ का क्रमशः खण्डों में सामान्य परिचय एवं विषय-वस्तु इस प्रकार है :—

(क) वस्तुविषय इतिहाससायन का परिचय –
================================

इतिहास+अयन इन दो शब्दों की सन्धि से इतिहाससायन

1– पुनि बहुमत बहु ग्रन्थन माहीं। सब सोइ बिन जानि न जाहीं ।।
तेहिते मैं एक ग्रन्थ सँवारा। धरब बरण कम अर्थ अपारा।
बात बात पर बर इतिहासा। भक्ति विवेक सहित नहिं हासा ।।
विश्रामसागर – पृ0 13 – 14

शब्द निष्पन्न होता है। आचार्य 'बलदेव उपाध्याय' ने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' ~~के इतिहास~~ में 'इतिहास' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है -
इति+ ह + आस = जहाँ पर 'इति' का अर्थ है इस प्रकार 'ह' का अर्थ निश्चित 'आस' का अर्थ है 'था'। निष्कर्ष रूप में इतिहास शब्द का अर्थ हुआ ऐसा निश्चित था। यह 'इतिहास' शब्द की व्युत्पत्ति हुई। वास्तव में इतिहास अतीत की घटनाओं का लेखा- जोखा होता है। जहाँ तक पौराणिक कथानकों का सम्बन्ध है, हमारे प्राचीन ग्रंथों में उन्हें इतिहास-पुराण ही कहा गया है/यथा - इतिहास पुराणाभ्याम् वेदम् समुपबृंहयेत्।" इस प्रकार पौराणिक आख्यानों को भी इतिहास कहने की परम्परा रही है। हमारे जितने भी पुराण ग्रन्थ हैं, वे एक प्रकार के प्राचीन इतिहास ही हैं। यह बात दूसरी है कि आज आधुनिक इतिहासों के साथ उनकी तुलना नहीं की जा सकती। इसीलिए कवि ने पुरावृत्त वृत्तों को 'इतिहासायन' ग्रन्थ में संगृहीत किया है। इसके प्रारम्भ में कवि ने सीता राम के युगल स्वरूप की वन्दना करते हुए अपने गुरु देवादास की भी प्रशस्ति गायी है और अपने को विश्रामसागर नामक समस्त ग्रन्थों के तत्वस्वरूप का निर्माता बतलाया है। मानस की भाँति इसका प्रारम्भ भी 'मगण' से हुआ है और श्लोक के द्वारा ही ग्रन्थ प्रारम्भ किया गया है। प्रत्येक अध्याय में तो नहीं किन्तु प्रायः अध्याय का प्रारम्भ निम्नलिखित दोहे से किया गया है-

सुमिरि राम सिय सन्त गुरु। गणप गिरा सुखदानि।।

इसका तात्पर्य यह है कि कवि सीताराम के युगल रूप का उपासक है। वह इसके पश्चात् सन्तों की भी वन्दना करता है/तृतीय स्थान गुरु को देता है और चतुर्थ तथा पंचम स्थान क्रमशः गणेश और सरस्वती को देता है। इन पाँचों की वन्दना करना कवि का विशेष ध्येय प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रत्येक अध्याय

के दोहे के उत्तरार्द्ध में कवि अध्याय के वर्ण्य विषय को और उसके मूल स्रोत को भी बतलाता चलता है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि वह पाठकों की सुविधा के लिए उक्त दोनों सूचनाएं देता है । कथा का मूल स्रोत बता कर वह अपनी कथा को प्रमाणिक भी करता है और उसका तत्व बतलाकर पाठकों के कौतूहल को शान्त करता है कि इस अध्याय में कौन सी कथा है। सात चरणों में मंगलाचरण करने के पश्चात् कवि अपने कथ्य रामचरित के गान करने का उल्लेख करता है और उसे भाषा बद्ध करने के प्रसंग में ही विभिन्न गणों का परिचय प्रदान करता है, जो उसके पिंगल शास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है। तदुपरान्त कवि परम्परानुसार अपनी दीनता का प्रकाशन करता हुआ खलों की निन्दा करता है और राम कथा को वर्षा का रूपक देकर विभिन्न वन्दनाएं करता है जिनमें हनुमान जी की वन्दना के अतिरिक्त हरि वन्दना विशेष महत्वपूर्ण हैं ।

द्वितीय अध्याय में कवि ने राम नाम की महिमा का सांगरूपक प्रस्तुत करते हुए सम्वत् 1911 में पुरुषोत्तम मास की चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन से इस ग्रन्थ की रचना किए जाने का उल्लेख किया है और अयोध्या पुरी के राम घाट में रहकर अपने गुरु देवादास के आशीर्वाद से भगवान राम की प्रेरणा से इस ग्रन्थ के रचने की बात कही है । उल्लेखनीय है कि इसमें कवि ने काव्य के नौ रसों का परिज्ञान कराया है और 'विश्रामसागर' को सागर का रूपक देते हुए इसमें उक्ति, युक्ति, गौरव, ध्वनि, अर्थ, भावना, अनुप्रास, आशय, यमक आदि की भी चर्चा की है । कवि ने विश्रामसागर के नाम की सार्थकता भी बतलायी है[1]। इसीलिए कवि ने इस ग्रन्थ के महत्व को बतलाते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ चतुर्वर्ग भगवद् भक्ति, वैराग्य एवं समस्त फलों को देने वाला है । एक उल्लेखनीय बात यह है कि कवि ने लोक भाषा में इस ग्रन्थ के लिखने का विशेष महत्व बतलाया

1- षट शास्त्र वेद पुराण मत विश्राम याही में लह्यो ।
यहि अर्थ विश्रामसागर नाम मैं याको कह्यो ।
जे सुनहिं समुझहिं प्रीति करि हरिचरन में चित लावहीं ।
रघुनाथ ते गोपद सरिस संसार यह तरि जावहीं ।।

पृ0 16 अध्याय- 2

है। वह कहता है कि -

तेहिते सोनि जहाँ की बानी । सोई ताहि तहाँ सुख दानी ।[1]
लेन देन विधि जो कछु करई। देश वाक्यते कारज सरई ।।

वह अपनी भाषा का बड़ा पक्षपाती प्रतीत होता है, क्यों कि उसने अपनी भाषा के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा में काव्य रचना की निन्दा की है, क्यों कि दूसरी भाषा में रचना करने पर अनुवाद की आवश्यकता पड़ती ही है। इससे उसकी लोकभाषा भक्ति का प्रमाण मिलता है। इसके पश्चात् सांगरूपक द्वारा कवि ने राम कथा को भक्ति और मोक्ष का साधन बतलाकर उसके महत्व को सिद्ध किया है ।

तृतीय अध्याय में कवि ने वैष्णव पद्धति के आधार पर गुरु महिमा का यशोगान किया है और प्रसंग वश 'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति भी बतलायी है यथा-

तम गु कार रु तासु हर, गुरु सोइ करै प्रकाश ।
बरण्यों अर्थ शास्त्र को, यह मैं घर इतिहास ।।[2]

चतुर्थ अध्याय में कवि ने एक दृष्टान्त देकर गुरु दीक्षा को महत्व देते हुए बतलाया है कि उसके बिना सब कुछ असफल है।[3]

पंचम अध्याय में कवि ने पूर्व अध्याय के दृष्टान्त को विस्तार से लिखते हुये गुरु को सर्वश्रेष्ठ देवता और वैष्णव धर्म को सबसे बड़ा धर्म बतलाया है। यथा-

वैष्णव धर्म ते परे जो, धर्म न दूसरो कोय ।
सो सहस्त्र जप मानो, सजन न बाढ़ै सोय ।।[4]

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2 पृ0 17

2- इतिहासायन खण्ड अध्याय- 3, पृ0 31

3- बिन गुरुदीक्षा अफल सब, जपतप होम क्रियादि।
ज्यों पाहन में बीज वह, उपजै ना फल आदि।। पृ0- 31 विश्रामसागर

4- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, पृ048 अध्याय- 5

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सभी धर्म अपने अपने स्थान पर महत्वपूर्ण होते हैं, किन्तु कवि स्वयं वैष्णव था, इसलिए इसने वैष्णव धर्म को सर्वोत्कृष्ट कहा है ।

छठवें अध्याय में कवि ने राम नाम के महत्व को बतलाते हुए 'राम' शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ बतलायी हैं उसको नारायण और विष्णु का ही रूप कहा है। इसके अतिरिक्त विष्णु, कृष्ण और वासुदेव शब्दों की व्युत्पत्ति बतलाते हुए भगवान को परिभाषित किया है और अन्त में सम्पूर्ण राम की अपेक्षा हरिभजन को अधिक महत्व दिया है।[1] यथा -

ज्यों अन्ध रजनि व्योम घन, तम रवि देह मिटाय ।
बिन हरि भजन न भव है तरै, करै जो कोटि उपाय ।।

सातवें अध्याय में कवि ने हरिनाम लेकर कौन कौन से पापी तरे हैं उनका बखान किया है। उनमें वाल्मीकि, गणिका, गज और यवन उद्धारण की कथा कही है। कवि ने कहा है कि हरि का नाम उल्टा सीधा कैसा भी लिया जाय, सभी हितकारक है। हरिनाम के महत्व को बतलाते हुए कहा भी है[2] अर्थात् उस नाम का प्रभाव अवर्णनीय है ।

आठवें अध्याय में पिछले अध्यायों के हरिभजन को महत्व देते हुए कवि ने 'अजामील' कथा के बारे में लिखा है-अजामिल बड़ा ही दुराचारी था। उसने अपनी विवाहिता स्त्री को त्याग दिया था तथा वेश्या के पास रहता था। एक साधु के कहने पर उसने अपने पुत्र का नाम 'नारायण' रखा। अन्तिम समय में उसने घबराकर अपने पुत्र का नाम लिया। पुत्र का नाम लेते ही वह अधम, पापी, दुष्ट और हरिविमुख अन्तकाल में पुत्र का नाम (नारायण) पुकार कर विष्णु लोक को चला गया ।

1- विचारमालासार हरितत्वायन क्र०, पृ० 61 अध्याय- 6

2- सब है नाम प्रभाव लेहि, कहि न सकैं हरि आपु ।
तातें क्षमा कीजिए, राम नाम को आपु ।। पृ० 68

नवें अध्याय में अजामील कथा के सन्दर्भ में ही पुनीतात्मा प्रस्तुत धर्म-राज सम्वाद का वर्णन कवि ने किया है धर्मराज कहते हैं कि राम नाम जपने में भी अन्तर है। जो प्राणी संसार में राम नाम स्वभावतः लेते हैं उनमें प्रेम नहीं होता। सद्गुरु से जिसने राम नाम की दीक्षा ली तथा जो सब कुछ राम नाम को ही मानता है, वह ही सच्चा हरिभक्त है। और अन्त में उन्होंने भक्त और अभक्त के भेदों को सविस्तार कहा है।

दसवें अध्याय में कवि ने गृहस्थाश्रम के सन्दर्भ में 'वधिक कपोत कथा' कही है। इसमें एक वधिक का हृदय किस प्रकार कपोत और कपोती ने बदल दिया, इसका वर्णन किया है और फिर वह वधिक भी वन में घोर तप करके बैकुण्ठ चला गया। इसी अध्याय में कवि ने धर्म और अधर्म के ऊँचे और नीचे लक्षण जो होते हैं, उनका वर्णन किया है।

ग्यारहवें अध्याय में कवि ने यमपुरी वर्णन किया है, जिसमें ~~कवि ने~~ यमपुरी जाते समय व्यक्ति को जो-जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनका क्रमशः वर्णन किया है और अट्ठाइसों नरकों के बारे में विस्तार से वर्णन किया है।

बारहवें अध्याय में कवि 'शाल्मलि' नामक विप्र की कथा को विस्तृत करते हुए स्वर्ग प्राप्त करने हेतु जो - जो काम करने चाहिए, उनका वर्णन किया है। विविध प्रकार के दान देना एवं साधुओं की सेवा करना और हरि स्मरण आदि की महत्ता दर्शायी है।

तेरहवें अध्याय में 'सुव्रता धर्मराज प्रसंग' - वर्णन है। इस कथा में सूत जी शौनक जी कहते हैं कि - हे शौनक सब कुछ कर्माधीन है/कर्म के अनुसार ही प्राणी सुखी-दुःखी, रोगी- निरोगी, आदि होता है। इसी सन्दर्भ में एक सुव्रता नाम की लड़की की कथा सुनाते जिसकी बाल्यावस्था में ही माँ मर गयी थी और बाल्यावस्था में ही पिता भी मृत्यु को प्राप्त हो गए थे। इस प्रकार से कन्या को पिता के शव के पास बैठ अनेक प्रकार से आर्तनाद करती हुयी देख धर्मराज विप्र का रूप धारण करके आये और उसे उसके (लड़की) पूर्वजन्म का हाल कह सुनाया कि किस प्रकार वेश्या थी और उसके यहाँ एक विप्र के मर

तू धन्य है,जो तूने नारायण देव की वैष्णवभक्त की सेवा मँगाकर धर्म की रक्षा की । अन्त में प्रसन्न होकर धर्मराज दोनों को दर्शन देते हैं ।

बीसवाँ अध्याय 'बहुला गऊ' की कथा का है इस कथा में बहुला गऊ को एक सिंह मारने के लिए आता है किन्तु वह सिंह को कई प्रकार से आश्वासन देकर अपने पुत्र के पास आती है और फिर पुत्र एवं अपनी सखी गायों से मिल कर वापस सिंह के पास आ जाती है। इस प्रकार गऊ की सत्यनिष्ठता को देख कर वह जीव हिंसा को त्याग देता है और अन्त में देव लोक को प्राप्त हो जाता है ।

इक्कीसवाँ अध्याय 'मोरध्वज' नामक राजा की कथा का है/मोरध्वज बड़ा ही धर्मपरायण और दृढ़ रामभक्त था/उसकी धर्मपरायणता एवं भक्ति को देखकर भगवान ने स्व सुदर्शन को उसका रक्षक बना दिया/एक बार यमदूत मोरध्वज के पास गए और वहाँ पर उनका प्रभाव कुछ भी नहीं चला और वह वापस आकर धर्मराज से रुष्ट होने लगे । इस पर धर्मराज विष्णु जी के पास गए विष्णु जी ने धर्मराज को बताया कि राजा मोरध्वज के समान कोई भक्त नहीं है और चलो मैं तुमको दिखलाऊँ । ऐसा कहकर क्रमशः वे सिंह और साधु का रूप धारण कर मोरध्वज के पास गए एवं मोरध्वज से उसके पुत्र ताम्रध्वज को अपने सिंह के भोजनार्थ माँगा । मोरध्वज ने सहर्ष स्वीकार कर लिया ऐसा देखकर धर्मराज और विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हुए और वरदान देकर अपने स्थान को चले गए ।

बाइसवें अध्याय में भी मोरध्वज आख्यान वर्णित ही है/इसमें मोरध्वज ने एक वृद्ध ब्राह्मण (कृष्णजी) की सेवा हेतु अपने को रानी एवं राजकुमार से चिरवाया, इस प्रकार की कथा का वर्णन है ।

तेइसवें अध्याय में राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव की कथा है/ध्रुव ने अपनी माता की शिक्षा मान वन में जाकर अनेक प्रकार के तप किए । इसी कथा के माध्यम से कवि ने नीति एवं भक्ति के साधक तत्त्वों का भी वर्णन किया है[1]।

1- विद्या जाति महत्त्व, यौवन को मद रूप मद ।

तजैं जतन करि संत पाँच काटि है भक्ति के ।। पृ0 215, विश्रामसागर.

चौबीसवाँ अध्याय ध्रुव कथा के परिप्रेक्ष्य में ही है। ध्रुव की कठिन तपस्या को देखकर भगवान ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये और ध्रुव के मांगने पर प्रेम भक्ति का वरदान दिया, एवं समाज में विश्वकर्मा से कुंदनपुरी का निर्माण करवा कर अपार राज्य धन, वैभव आदि दिया।

'हरितालायन' का पच्चीसवाँ अध्याय प्रह्लाद कथा वर्णन की है। प्रह्लाद हिरण्यकशिपु का पुत्र था। प्रह्लाद बड़ा ही भक्त था एवं पढ़ने के स्थान पर ही राम-राम ही कहता था। उसके इस व्यवहार को देखकर राजा हिरण्यकशिपु ने उसे नानाप्रकार की यातनाएँ दीं।

प्रह्लाद कथा का अगला भाग श्रीनरसिंह अवतार कथा छब्बीसवें अध्याय में है। प्रह्लाद को अनेक प्रकार के कष्ट देने पर भी जब उसका बाल बाँका न हुआ, तब एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा कि तू किसी चीज से डरता क्यों नहीं है? इस पर प्रह्लाद ने कहा कि मेरा राम सर्वव्यापी है। ऐसा कहते ही भगवान नृसिंह का रूप धारण कर आए और हिरण्यकशिपु को मार डाला।

सत्ताइसवें अध्याय में 'ब्रह्मा की उत्पत्ति', 'सृष्टि की उत्पत्ति' एवं 'स्वायम्भुव मनु' की कथा का वर्णन है और अवधपुरी किस प्रकार भूलोक में आयी इसका बड़ा ही मनोग्राही वर्णन है।

हरितालायन ग्रन्थ के अट्ठाइसवें अध्याय में सातों द्वीप जम्बु, लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शकला (शाक) और पुष्कर इसका सविस्तार वर्णन किया गया है तदुपरान्त इसी अध्याय में बड़े ही मनोहारी ढंग से श्री सरयू की उत्पत्ति की कथा का वर्णन किया गया है।

उनतीसवें अध्याय में श्री गंगा की उत्पत्ति की कथा है कि किस प्रकार राजा सगर के साठ हजार पुत्र भस्म हुए तथा राजा भगीरथ ने तपस्या करके वरदान स्वरूप गंगा जी को पृथ्वी में लाये। इसका सविस्तार वर्णन कवि ने किया है तथा इसी अध्याय के बीच राजा बलि एवं वामन रूप धारी

भगवान विष्णु की कथा एवं गंगा जी का शिवजी की जटाओं से होकर फिर पृथ्वी में आना, इसका वर्णन इस अध्याय में किया गया है ।

तीसवाँ अध्याय एकादशी उत्पत्ति से सम्बद्ध है। सतयुग में 'मुर' नाम का एक दैत्य था जिसने अपने तपोबल से यह वरदान माँग लिया था कि समर में वह किसी से भी पराजित न हो । और फिर उसने सभी दैत्य एवं देवताओं आदि को पराजित कर सबको अधीन कर लिया। तब अंत में विष्णु जी ने आदि माया को उत्पन्न किया और आदिमाया ने मुर को मार डाला । इससे सभी देवताओं ने आदि माया की स्तुति की और विष्णु जी ने प्रसन्न होकर उसे (आदिमाया) को वरदान दिया कि मेरे शरीर से एकादशी को उत्पन्न होने के कारण तुम्हारा नाम एकादशी होगा और जो व्यक्ति एकादशी का व्रत करेगा, उसे सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होगी । कवि ने इसके बाद एकादशी व्रत की महिमा एवं एकादशी व्रत-विधान का भी वर्णन किया है ।

इकतीसवाँ अध्याय एकादशी माहात्म्य से सम्बन्धित है। इसमें कवि ने शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष में एकादशी के व्रत का प्रभाव क्रमानुसार महीनों में किया है ।

बत्तीसवाँ अध्याय भी एकादशी माहात्म्य के सन्दर्भ में ही है। इसमें आषाढ़ कृष्ण पक्ष से कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी के पुण्य को बताया गया है। साथ ही बीच-बीच में अनेक प्रकार की लघु कथाएँ भी हैं। इस प्रकार एकादशी के चौबीस नाम गिनाये गए हैं ।

'[illegible]' ग्रन्थ का तैंतीसवाँ अध्याय भी तुलसी माहात्म्य से सम्बन्धित है । इसमें तुलसी की उत्पत्ति एवं माहात्म्य को बताया गया है। इस सन्दर्भ में दो किस्सों की कथा प्रचलित है। एक तो यह है कि तुलसी नाम की एक नारी थी, जिसने भगवद्दर्शन के लिए घोर तप किया और जब विष्णु जी ने उसे दर्शन दिए तब वह विष्णु जी के मोहिनी रूप को देखकर मुग्ध होकर बोली कि पति होकर आप सदैव मेरे निकट रहें। ऐसा सुनकर लक्ष्मी जी ने शाप दिया

कि तू जड़ वृक्ष हो जा । भगवान ने यह सुनकर तुलसी से कहा कि तुम वृक्ष हो जाओ, तुम मेरी प्रिय रहोगी । मैं शालिग्राम का शरीर धारण कर सदा तेरे निकट रहूँगा ।

इसी की तुलसी-उत्पत्ति सम्बन्ध में दूसरी कथा यह है कि एक जलन्धर नाम का दैत्य था, जिसकी पत्नी वृन्दा बड़ी ही पतिव्रता थी। उसके इस पतिव्रत से उस दैत्य को समर में कोई भी जीत न पाता था । अंत में विष्णु जी ने पति रूप में मायारूपी जलंधर का रूप धारण कर वृन्दा के साथ विहार कर वृन्दा का व्रत भंग कर दिया और इस प्रकार जलंधर युद्ध में मारा गया । फिर सबों ने मिल कर क्रमशः शिवजी और ब्रह्मा जी की स्तुति की। फिर सभी लोग विष्णु जी के पास गए । लक्ष्मी जी ने भस्म और जल लेकर पृथ्वी पर रखा, जिससे वृन्दा का शरीर तुलसी वृक्ष के रूप में उत्पन्न हुआ । विष्णु जी बड़े प्रसन्न हुए । इस प्रकार तुलसी की उत्पत्ति हुई । तुलसी को विष्णु जी ने अपने शीश पर स्थान दिया । जो कण्ठ में तुलसी की माला धारण करते हैं, वे बिना स्नान किए ही शुद्ध रहते हैं ।

बीसवें अध्याय में 'युधिष्ठिर यज्ञ, वर्णाश्रम' धर्म और हरि भक्ति-साधन आदि का वर्णन है । युधिष्ठिर यज्ञ किस प्रकार से एक नेवले की कथा से प्रेरित होकर वाल्मीकि श्वपच भोजन द्वारा पूर्ण हुआ, इसका विस्तार वर्णन है और हरि भक्त एवं कर्म, ज्ञान, उपासना का अलग - अलग वर्णन है ।

पैंतीसवें अध्याय में सत्संगति की महिमा का बड़ा ही विस्तार से वर्णन किया गया है तथा सत्संगति को सभी प्रकार के दान, तप और यज्ञ आदि से सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। उसी की महत्ता को बतलाते हुए कहा है । इसी सन्दर्भ में आधार नामक बनिया और जाजुल्य मुनि की कथा है ।

1- सतसंगति भवनिधि नहिं नावा । चढ़े सो पार होय सतभावा ।
साधु संगति शीतल होई । जन्म मरण भय में जाइ खोई ।।
विश्रामसागर, पृ0 349

छत्तीसवाँ अध्याय राजा नहुष की कथा है। नहुष किस प्रकार शाप ग्रसित और फिर युधिष्ठिर के द्वारा अपने सभी प्रश्नों का उत्तर जान कर शाप मुक्त होकर देवलोक को गया। इसी अध्याय में एक कथा ऐसी शूद्र की है। वह बड़ा ही निर्धन शूद्र था। एक बार दत्तात्रेय मुनि आये और उन्होंने चौबीस गुरु बतलाए। जिनका वर्णन इस कथा में है तथा अन्त में हरिभजन करने के लिए कहा।

सैंतीसवाँ अध्याय पिता पुत्र सम्वाद और विश्वावसु मन्दालसा अलर्क के प्रसंग आदि से सत्संगति का पुण्य और प्रभाव, दशरथ पुत्र श्री रामचन्द्र जी के अवतारों की संख्या प्रश्न के कई रूप, जग की अनित्यता आदि का वर्णन है।

'हरिहरनारायन' के अड़तीसवें अध्याय में सेनाजित प्रसंग वर्णन की कथा है। सेनाजित एक नीतिवान राजा था उसका दस वर्ष का पुत्र अकस्मात मर गया। राजा को महान कष्ट हुआ और वह अपने प्राणों को त्याग देने के लिए तैयार हो गया। उसी समय वहाँ पर लोमश ऋषि आये, उन्होंने राजा को अनेक प्रकार का ज्ञान दिया आत्मा क्या है। सत, रज, तम, तीनों प्रकार के गुणों का वर्णन किया। मन की वृत्तियाँ, दस इन्द्रियाँ, पाँचों तत्वों का अलग-अलग उदाहरण देकर वर्णन किया। ऋषि के इस प्रकार के वचनों को सुनकर पुत्र-शोक को त्याग कर राजा ज्ञान, नियम और संयम-पूर्वक जप और योग करके मोक्ष को प्राप्त हुए।

उनतालिसवाँ अध्याय सत्संग माहात्म्य से सम्बन्धित है। इस अध्याय में वशिष्ठ जी और विश्वामित्र जी की बड़ी ही रोचक कथा है। एक बार वशिष्ठ जी विश्वामित्र के यहाँ आये, तो विश्वामित्र ने उनका यथा सम्मान किया तथा अन्त में भेंट स्वरूप लाख वर्ष के तप का आधा फल ऋषिराज को अर्पित किया। कुछ दिन पश्चात् विश्वामित्र जी वशिष्ठ के यहाँ आये। तो वशिष्ठ जी ने भेंट स्वरूप दो घड़ी के सत्संग का फल अर्पण किया। इस पर विश्वामित्र जी रूठ गए दोनों अपनी-अपनी भेंटों को श्रेष्ठ मनवाने के लिए विष्णु जी के पास गए। विष्णु जी ने एक लघु कथा के माध्यम से सत्संग को श्रेष्ठ बताया। इस प्रकार सत्संग का माहात्म्य बतलाया गया है।

चालीसवाँ अध्याय 'अम्बरीष कथा' वर्णन से है। अम्बरीष भगवान का

बड़ा ही भक्त था। एक बार उसने दुर्वासा मुनि को निमन्त्रण पर बुलाया, किन्तु राजा ने द्वादशी केवल तीन पल जानकर मात्र चरणामृत से पारण कर लिया। इस पर दुर्वासा ने क्रोधित होकर शाप दिया कि तुम कुल समेत भस्म हो जाओ। जब यह ज्वाला अम्बरीष के पास पहुँची तो उसने राम का स्मरण किया। उनकी रक्षा हेतु चक्र सुदर्शन मुनि की ज्वाला को भस्म कर मुनि की ओर चला। मुनि रक्षा हेतु क्रमशः ब्रह्मा, शिवजी एवं विष्णु जी के पास गए। विष्णु जी ने कहा कि मैं भक्त का दास हूँ। मैं भक्त के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता, तुम राजा अम्बरीष के पास ही जाओ वह ही तुम्हारी रक्षा कर सकता है। मुनि ने अम्बरीष से शरण माँग कर कुछ दिन तप किया एवं विष्णु जी से वरदान माँगा कि अम्बरीष के दस अवतार जन्म इस पृथ्वी पर हों। पर विष्णु जी ने अपने भक्त के लिए स्वयं दस अवतार लिए। इस प्रकार इस अध्याय में भक्त की महिमा का गुणगान किया गया है।

इकतालीसवें अध्याय में 'प्रह्लाद आख्यान' है। प्रह्लाद भगवान का बड़ा ही भक्त था। अनेक दुष्टों ने उसका वध करने के लिए अनेक उपाय किए, किन्तु ईश्वर की कृपा से उपाय व्यर्थ ही चले गए। इस कथा में कवि ने यह बतलाया है कि यदि भक्त का कोई भी कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता क्योंकि ईश्वर उसकी हर पल सहायता के लिए तत्पर रहता है।

बयालीसवें अध्याय में राजा 'नृग की कथा' है—कि किस प्रकार वह हरि भक्त का अपमान एवं बैर करके वह गिरगिट बन गया और श्री कृष्ण के द्वारा उसका किस प्रकार उद्धार हुआ और इसके साथ ही भक्त की महिमा एवं संत-जनों का गुणगान करते हुए, राम कृष्ण की तुलना करते हुए श्री राम को बड़ा बतलाया है एवं राम-नाम की महिमा का गुणगान किया गया है।

तैंतालीसवें अध्याय में राजा 'ययाति' की कथा का वर्णन किया गया है। राजा ययाति के अन्त समय में यमदूत उसे नरक में ले गए। जहाँ पर उसे अपने पितर मिले, पितरों ने उसे [ययाति] हरिभक्ति करने के लिए कहा और एक हरिभक्त

की कृपा से वह वापस पृथ्वी में आ और गुरुमुख होने के लिए तत्पर हो गया, किन्तु पत्नी के आग्रह करने पर उस अज्ञानी ने भक्ति को त्याग दिया ।

'इतिहासायन'का चौवालिसवाँ अध्याय राजा श्वास और नारद संवाद से सम्बद्ध है । पितरों के आग्रह पर राजा श्वास को समझाने के लिए नारद आते हैं और अनेक प्रकार के तरीकों से उसे ज्ञान देते हैं।तब राजा कहता है कि मैं स्त्री के कारण ही दिग्भ्रमित हो गया था । इस पर नारद जी स्त्री स्वभाव के अनेक अवगुणों का बखान करते हुए,इसी सन्दर्भ में एक लघु कथा कुन्दन नामक ब्राह्मण की सुनाते हैं कि किस प्रकार निर्धन से धनी होकर पुनः स्त्री के कारण ही सदा के लिए निर्धन हो गया ।

पैंतालीसवाँ अध्याय पिछले अध्यायों की पूर्व कथा राजा 'श्वास' पितृ-उद्धार से ही सम्बन्धित है/इसमें एक स्त्री-दास व्यक्ति का प्रसंग है।जिसके मरने पर सियार आदि भी उस मृतक शरीर को खाने के लिए तैयार नहीं होते।नारद जी कहते हैं हे राजा!जरा सोचो कि तुम्हारी क्या गति होगी?इस प्रकार समझाने पर राजा को ज्ञान हो जाता है और वह गुरुमंत्र लेकर भक्ति करने लगता है और उधर उसके पितरों का उद्धार हो जाता है।जब धर्मराज को पता चलता है तब वे लोगों को दिग्भ्रमित करने के लिए ओझा का वेष धारण कर पृथ्वी में आते हैं और नगरवासियों से भैरव,मसनी की सेवा करना पर्व आदि, पशु की बलि देना आदि शिक्षा देकर चले जाते हैं/धर्मराज की शिक्षा की रीति आज भी संसार में प्रचलित है ।

छियालीसवें अध्याय में राजा 'श्वास' को नारद जी नवधा भक्ति के बारे में बताते हुए कहते हैं कि भक्ति के नव अंग हैं -(1) श्रवण (2) कीर्तन (3) स्मरण (4) पदसेवा (5) अर्चना (6) वन्दना (7) दास्य (8) सखा और (9) आत्मनिवेदन ।

और इसी प्रकार बारह भाँति के श्रोता होते हैं - प्रवरा, चातक,

हंस, शुक, मीन, मक्षिका, बैल, मधु, कूक, तम, पुर और सेक । इनमें छः श्रोता उत्तम बतलाए गए हैं । इसी प्रकार पाँच प्रकार के वक्ता बतलाये हैं - सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, मणि, और दीप राजा व्यास के पूछने पर नारद जी ने 'भक्त-संहिता' में वर्णित दश अपराधों का बखान किया है। यथा -

गुरु अवज्ञा एक हरि , जन हरि निन्दा पाप ।
गने ब्रह्म में भेद पुनि, करै नाम बल पाप ।
करै नाम बल पाप, नाम परताप न जाने ।।
बिन श्रद्धा उपदेशि, दोष श्रुति शास्त्र न माने ।।
माने अगि रघुनाथ भले निज बन्धी कटु उर ।
ये दश तजि अपराध, जपै तब नाम कौ गुरु ।।

इसी प्रकार अष्ट प्रतिभा और चरणामृत के तत्व एवं भक्ति रस के पाँच तत्व आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है ।

'इतिहासायन' के सैतालीसवें अध्याय में कवि ने षट् शास्त्र का सारांश दिया है । इस उपनिषद के आधार पर योग शास्त्र की चर्चा की गयी है । योग के आठों अंगों का विस्तृत विवेचन करने के पश्चात्, वेद, वेदों के उपवेद आदि का वर्णन करने के पश्चात् मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त का संक्षिप्त विवेचन किया गया है । कवि ने वेद, स्मृति, संहिता, आगम, निगम और पुराणों का इष्ट परमात्मा ही माना है । अन्त में कवि ने इतिहासायन में प्रयुक्त छन्दों का परिचय कराया है । उसने अन्त में संस्कृत, प्राकृत, फारसी विविध प्रान्तों की बोलियों को भाषा कहा है और उसमें अपने ग्रन्थ की रचना करने का संकेत किया है । इस प्रकार यह अध्याय कवि की दार्शनिक बहुज्ञता का एक प्रमाण है। जिससे कवि के अध्ययन एवं अनुभव का प्रमाण मिलता है ।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, पृ0 474

(अ) वस्तुविषय-

कृष्णायन भाग का सामान्य परिचय -

कृष्णायन शब्द कृष्ण + अयन इन दो शब्दों के योग से बना है । अयन शब्द के अनेक अर्थ होते हैं - स्थान, घर, क्षेम आदि ।

ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसार कृष्ण पद के ककार का अर्थ ब्रह्मा, ऋकार का अर्थ शेषनाग और मूर्धन्य "षकार" शिव का और "णकार" धर्म का बोधक है। अन्त में जो "अकार" है, वह श्वेत दीप निवासी 'विष्णु'का वाचक है तथा विसर्ग नर- नारायण अर्थ का बोधक माना गया है । पुनः 'कृष्ण'शब्द के विषय में लिखा गया है "कृष" शब्द निर्वाण का वाचक है, "णकार" मोक्ष का बोधक है और "अकार" अर्थ दाता है वह श्री हरि निर्वाण मोक्ष" प्रदान करने वाले हैं इसलिए कृष्ण कहे गए हैं । भगवान निष्कर्म भक्ति के दाता है, इसलिए उनका नाम "कृष्ण" है। "कृष" का अर्थ है कर्मों का निर्मूलन "ण" का अर्थ है — दास्य भाव और 'अकार' प्राप्ति का बोधक है । वे कर्मों का समूल नाश करके भक्ति की प्राप्ति कराते हैं, इसलिए कृष्ण कहे गए हैं । विष्णु के सम्पूर्ण नामों की तुलना में "कृष्ण" को श्रेष्ठतम माना गया है[1] ।

इस प्रकार कृष्ण के विभिन्न अर्थ हैं । विश्रामसागर में कृष्ण को पृथ्वी के समान क्षमादायक माना है[2] ।

1- विष्णोर्नाम्नां च सर्वेषां सारात् सारं परात्परम् ।
कृष्णेति मंगलं नाम सुन्दरं भक्ति दास्यदम् ।।
ब्रह्म वैवर्तपुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे ।।
13/63-65 पृ0 370 सन् 1963

2- पृथ्वि क्षमा का शब्द जो, तादि कहत हैं कृष्ण । विश्रामसागर- पृ0 56

यहाँ 'कृष्णायन' ग्रन्थ के अध्याय क्रमानुसार विवेचित हैं - कृष्णायन के पहले अध्याय में हरिवंशायन ग्रन्थ की ही भाँति वन्दना की गयी है। उसके बाद राजा परीक्षित को कलियुग आगमन की सूचना मिलती है, तो वे कलियुग को कुछ स्थान बतलाते हैं कि यहाँ जाकर रहो। कलियुग राजा के स्वर्ण मुकुट में बैठ जाता है, जिससे कि राजा पथभ्रष्ट हो जाता है और शाप प्राप्ति होने पर भी वह अनेक प्रकार से हरिभक्ति एवं हरिस्मरण करने लगे और शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत् की कथा सुनायी। बारह स्कन्ध सुनकर उन्होंने तीन प्रकार की उत्पत्ति और चार भाँति के प्रलय का बखान किया। इतने में सर्प ने राजा परीक्षित को तुरंत ही डस लिया। उसी समय दिव्य विमान आया, जिसमें बैठकर राजा परीक्षित बैकुण्ठ लोक को चले गये।

'कृष्णायन' के दूसरे अध्याय में कृष्ण-जन्म उत्साह, पूतना, कागासुर, तृणावर्त वध आदि का वर्णन किया गया है। राजा उग्रसेन की पत्नी के साथ कालनेमि नामक राक्षस ने छल से दिन में रति भोग किया और फिर उसी कालनेमि अंश को रानी ने जन्म दिया जिसका नाम कंस रखा गया। कंस ने अपनी चचेरी बहन देवकी का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया उसके पश्चात् किस प्रकार आकाशवाणी से प्रेरित होकर कंस ने उन्हें बन्दीगृह में रखा एवं किस प्रकार कृष्ण गोकुल पहुँचे इन सबका बड़े ही रोचक ढंग से कवि ने वर्णन किया है। और उसके बाद कंस ने पूतना को श्रीकृष्ण को मार डालने के लिए भेजा किन्तु कंस ने बड़े ही रोचक ढंग से पूतना को काल कवलित कर दिया।

'कृष्णायन' का तीसरा अध्याय कृष्ण दधिचोरी प्रसंग से सम्बन्धित है। एक बार एक विप्र अतिथि। माता यशोदा ने उसके लिए रसोई बनाई विप्र ने आँख मूँद करके भोग लगाया और जब उसने आँखें खोलीं तो श्रीकृष्ण को खाते हुए देखा। इसी प्रकार किसी गोपी के दही के बर्तन फोड़ना, दही खाना एवं फैलाना और बन्दरों आदि को लुटाना। कुल मिलाकर बाल्यावस्था की सभी बाल लीलाओं को इसमें कवि ने चित्रित किया है।

'कृष्णायन' के चतुर्थ अध्याय में छोटी-छोटी कई लघु कथाएँ हैं नल-कूबर और मणिग्रीव (कुबेर जी के दो पुत्र थे जो शाप के कारण जड़ वृक्ष हो गए थे) एक बार यशोदा जी ने श्रीकृष्ण को ऊखल से बाँध दिया, श्रीकृष्ण जी ऊखल को घसीटते हुए जा रहे थे; कि ऊखल उन वृक्षों से टकरा गया और वृक्ष गिर पड़े तथा दो दिव्य पुरुष प्रकट होकर स्तुति करने लगे। इसके बाद कृष्ण और राधिका के विवाह का वर्णन है। एक बार एक असुर बछड़े का रूप धारण करके आया तब कृष्ण जी ने उसकी पूँछ पकड़ कर पृथ्वी में पटक कर मार डाला। एक बार बगुले का रूप धर कर बकासुर आया जो कि कृष्ण को निगल गया, किन्तु कृष्ण जी ने निकल कर उसे मार डाला। इसी प्रकार उन्होंने अघासुर का भी उद्धार किया। इसी प्रकार ब्रह्मा के मद, मोह और विभिन्न तर्कों का समाधान किस सहज तरीके से कृष्ण जी ने किया उसका बहुत ही रोचक वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय अनेक लघु कथाओं से सम्बन्धित है। जिनमें काली नाग का उद्धार एवं गोवर्धन लीला प्रमुख है। किस प्रकार से श्रीकृष्ण ने यमुना में गेंद गिर जाने से यमुना में कूदकर और काली नाग का मर्दन कर उसका उद्धार किया। इसके बाद वर्षा ऋतु का वर्णन बहुत ही मनमोहक तरीके से किया है। कृष्ण जी ने गोपियों का चीर हरण किस प्रकार किया, इसका वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के आग्रह करने पर सभी गोकुलवासियों ने गोवर्धन की पूजा की। तब इन्द्र ने कुपित होकर घनघोर वर्षा की तब सब गोपों ने कृष्ण जी से शरण ली उन्होंने तुरन्त ही गोवर्धन उठाकर उस पर छत्र के समान छाया कर दी। इन्हीं सब लीलाओं का इस अध्याय में विस्तार वर्णन किया गया है।

छठा अध्याय 'कृष्ण रासलीला' वर्णन से सम्बन्धित है। शरद ऋतु में एक दिन चाँदनी रात देखकर कृष्ण जी वन में आये और वंशी बजाने लगे। वंशी सुनकर अनेक गोपियाँ जैसी थी उसी प्रकार से दौड़ कर चली आयी। सोलह हजार गोपियों के साथ कृष्ण जी ने रास मंडल रचा। रास की अनेक प्रकार की लीलाएँ कहीं इसके बाद गोपियाँ बोली हे प्रभो! अब तुम व्यास बनो, हम अपने हृदय का संशय आप से निवारण करेंगी। संसार में तीन प्रकार के जीव होते हैं बिना सेवा

के जो स्नेह करता है, वह स्वामी उत्तम है । जो सेवावश प्रीति करते हैं, वह मध्यम हैं और जो अपने अनन्य सेवक को भूल जाते हैं वे नीच हैं। फिर सेवा न करने वाले की बात ही क्या ? गोपियों के इन गूढ़ वचनों का उत्तर कृष्ण भगवान ने बड़े ही अच्छे ढंग से दिया, जिससे की गोपियाँ सन्तुष्ट हो गयीं। इस प्रकार रात्रि में लीला करके और होते ही सब अपने-अपने घर चली गयीं ।

'कृष्णायन' के सातवें अध्याय में कृष्ण भगवान की लीलाओं का वर्णन है। उन्होंने क्रमशः नाग, गरुड़, असुर, केशी, दैत्य, व्योमासुर आदि जो कि क्रम से भगवान का वध करने हेतु आये थे उन सभी का वध करके उद्धार किया । यह सब सुन-सुन कर कंस बड़ा व्याकुल हुआ। अन्त में कंस को सभासदों ने यह सलाह दी, कि उन्हें मल्ल युद्ध हेतु बुलाया जाए और फिर मार डाला जाए। कंस ने उन्हें बुलाने का कार्य अक्रूर जी को सौंपा। अक्रूर जी ब्रज से बलराम और श्रीकृष्ण को ले आये एवं एक दिन इन लोगों को अपने घर में ठहराया। सबेरे यह लोग मथुरा घूमने हेतु गए वहाँ रास्ते में धोबी के अशिष्ट पूर्ण व्यवहार करने से उन्होंने धोबी को मार डाला। इसके बाद कुब्जा का कूबड़ ठीक कर दिया । इस प्रकार से घूमते-फिरते श्रीकृष्ण जी ने अपने दर्शन से सभी मथुरावासियों को कृतार्थ किया। तदुपरान्त वे रंगभूमि में आए ।

आठवाँ अध्याय 'श्री कृष्ण कुब्जागृह आगमन' की कथा से सम्बन्धित है । कृष्ण ने रंगभूमि में जैसे ही प्रवेश किया वहाँ पर युद्ध के लिए एक हाथी खड़ा हुआ था। जिसको कि श्रीकृष्ण ने एक ही मुष्टिका प्रहार में मार डाला । कृष्ण जी ने चाणूर को और बलराम जी ने मुष्टिक को मल्ल युद्ध में पछाड़ दिया। इस पर कंस ने भयभीत होकर कहा कि उग्रसेन और वसुदेव को मार डालो और दोनों भाइयों को अभी बाहर निकाल दो । ऐसा सुनते ही श्री कृष्ण ने कंस को पकड़ कर मार डाला एवं उग्रसेन को राज्य वापस दे दिया और अपने माता-पिता को बन्दीगृह से मुक्त किया । फिर कृष्ण और बलराम जी का जनेऊ वसुदेव जी ने करवाया। फिर दोनों भाइयों ने चौदहों विद्याएँ गुरु संदीपन के द्वारा सीखीं । एक दिन श्रीकृष्ण भगवान कुब्जा के यहाँ गए। कृपानिधान भगवान ने उसे प्रमुदित करके उसके साथ रमण किया ।

नवाँ अध्याय 'उद्धव-ब्रज-आगमन कथा' से सम्बन्धित है। एक बार कृष्ण जी ने उद्धव जी को ब्रज भेजा, कि जाकर नन्द बाबा और माता यशोदा एवं गोपियों की कुशल क्षेम ले आओ। उद्धव जी जब ब्रज पहुँचे तो उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण जी के विरह में सभी ब्रज वासी एवं गौएँ आदि भी अति शोकाकुल हो गए हैं इसी सबका कवि ने विस्तार से वर्णन किया है। और माता यशोदा बाल लीलाएँ जो श्रीकृष्ण करते थे उन्हीं लीलाओं को याद कर-कर के ही दुखी होती रहती हैं। उद्धव और गोपियों का वाक्य-विलास बहुत ही रोचक है। इन वर्णनों में कवि ने दर्शन, मायावाद, नीति, व्यंग्य आदि का बड़े ही अच्छे ढंग से वर्णन किया है। दर्शन आदि गूढ़ तत्वों को गोपियों के मुख से बड़े ही सहज और स्वाभाविक ढंग से कहला दिया है। इस प्रकार उद्धव हार कर कृष्णजी के पास पहुँचे और कृष्ण जी से सब समाचार कहे।

'कृष्णायन' के दसवें अध्याय में कृष्ण जरासंध समर की कथा है। राजा धृतराष्ट्र पाण्डुपुत्रों को बहुत दुःख पहुँचाते थे और अक्रूर जी ने धृतराष्ट्र को काफी समझाया कि तुम्हें अपने एवं पाण्डु पुत्रों दोनों में समान भाव रखना चाहिए। जब वह किसी भी प्रकार नहीं समझा, तो अक्रूर जी ने मथुरा आकर सारा समाचार कृष्ण जी को बतला दिया। इसी समय कंस की दोनों रानियाँ रथ पर चढ़ कर अपने पिता जरासन्ध के सम्मुख जाकर बिलख-बिलख कर विलाप करने लगीं। इस पर जरासन्ध ने आश्वासन दिया और तेइस अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्ण से युद्ध करने के लिए चला। और जरासन्ध ने मथुरा का घेराव कर दिया अनेक प्रकार से युद्ध हुआ और अन्त में श्रीकृष्ण ने सारी सेना का नाश कर डाला और जरासन्ध को छोड़ दिया किन्तु जरासन्ध ने पुनः सेना एकत्र कर के युद्ध किया किन्तु फिर से वह हार गया। इस कथा को सुनकर कालयवन ने तीन करोड़ यवनों की सेना लेकर धावा बोल दिया और कृष्ण की माया से राजा मुचुकुन्द के द्वारा कालयवन भस्म हो गया और इस प्रकार अपने भक्त राजा मुचुकुन्द को उन्होंने दर्शन दिए।

ग्यारहवें अध्याय में 'रुक्मिणीहरण' का वर्णन है। कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी थी। रुक्मिणी के विवाह योग्य होने पर राजा भीष्मक के पुत्र रुक्मी और कई लोगों ने श्रीकृष्ण के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा,

किन्तु राजा भीष्म ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया, कि वह सोलह वर्ष तो नन्द बाबा के व्रज में रहा है तथा सभी लोग उसे अहीर के नाम से जानते हैं। और अंततः उन्होंने शिशुपाल के साथ विवाह करने के लिए निश्चित किया।

किन्तु स्वयं रुक्मिणी जो कि कृष्ण के रूप से प्रभावित थी, उसने एक विप्र के द्वारा सन्देशा भेजा कि वो मेरा हरण कर ले और मैंने आपको ही "कृष्ण" पति रूप में स्वीकार कर लिया है। कृष्ण ने भी आकर रुक्मिणी का हरण किया और सभी योद्धाओं से युद्ध करके सबको पराजित कर दिया।

'कृष्णायन' का बारहवाँ अध्याय रुक्मिणी-मंगल, प्रद्युम्न उत्पत्ति और रति के संग विवाह का वर्णन है। रुक्मिणी का हरण करके जब कृष्ण प्रस्थान कर दिए तब जरासन्ध क्रुद्ध होकर फिर से युद्ध के लिए आया और फिर कवि ने युद्ध का वर्णन तथा आठों प्रकार के विवाह का वर्णन किया है। तत्पश्चात् शुभ लग्न होता है। इसका सविस्तार वर्णन इस अध्याय में किया गया है। कुछ दिनों बाद रुक्मिणी ने प्रद्युम्न नामक बालक को जन्म दिया। बड़ा होने पर प्रद्युम्न और रति का विवाह हुआ।

(ग) विश्रामसागर- रामायण भाग का सामान्य परिचय -

रामकथा को क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित रूप में लिखने के लिए कवि ने 'रामायण खण्ड' की रचना की है। कवि के राम विविध चरित्र के धाम हैं। अपनी कथावस्तु का निर्माण करने में उन्होंने वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म-रामायण एवं ब्रह्मपुराण आदि, विविध पुराणों का आधार लिया है। जिससे कवि की बहुश्रुतता का परिचय मिलता है। इसमें विष्णु चरित्र और सौम्या रामायण के आधार पर[1] राम की बाल लीलाओं का सरस उल्लेख किया गया है।

इस रामायण खण्ड में कवि ने 30 अध्याय के माध्यम से राम कथा का बड़ा ही सरस एवं रोचक चित्र प्रस्तुत किया है।

1- सुमिरि राम सिय लखन गुरु, गणप गिरा सुखखानि।
कहौं भुशुंडी चरित कछु सौम्या, भणित बखानि॥
विश्रामसागर- रामायण खण्ड,
पृष्ठ - 704

इस रामायण खण्ड में कवि ने रामचरित मानस की ही भाँति सम्पूर्ण राम कथा को सात काण्डों में क्रमशः बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य-काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड में वर्णन किया है। जिस काण्ड में जितनी कथा रामचरित मानस में वर्णित है, उतनी ही कथा कवि ने रामायण खण्ड के हर काण्ड में रखी है।

इस खण्ड का क्रमिक विवेचन इस प्रकार है - 'रामायण खण्ड' के प्रथम अध्याय में राम जन्म के अवतार के दस हेतु बताए गए हैं और हर कल्प में अलग-अलग रावण हुए हैं। जिनका वर्णन किया गया है। चौथे राजा प्रतापभानु की कथा है। किस प्रकार से ब्रह्म के द्वारा उसे शाप मिला और वह विश्वा मुनि का किस प्रकार पुत्र हुआ, इसका कवि ने वर्णन किया है। फिर बड़े होकर रावण तथा उसके भाइयों ने कठिन तप किया और फिर सरस्वती के द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने ऊट-पटांग वर माँगे। इसके पश्चात् रावण आदि के विवाह का वर्णन है। फिर रावण-इन्द्र युद्ध का वर्णन है। इसके बाद रावण ने शिवजी को किस प्रकार से अपने मस्तकों की आहुति दी और रावण को वरदान मिला इसका वर्णन किया गया है।

दूसरा अध्याय 'मेघनाद-अहिरावण विजय' से सम्बन्धित है। मेघनाद ने एक बार इन्द्र से युद्ध किया। इन्द्र के हार जाने पर इन्द्र की ओर से क्षमा माँगने ब्रह्मा जी आए। और इसी प्रकार एक बार उसने वासुकि से युद्ध किया और अन्त में वासुकि ने हार कर अपनी कन्या सुलोचना से उसका विवाह कर दिया। इसी प्रकार मेघनाद के भाई अक्षयकुमार ने भी कठिन तप करके शिवजी से कठिन वर प्राप्त कर लिया। इसके बाद लंका में रावण के एक और अन्य पुत्र अहिरावण की उत्पत्ति आदि का वर्णन है।

रामायण खण्ड के तीसरे अध्याय में कई लघु कथाएँ हैं। राम-जन्म उत्सव कथा में-दशरथ जी का विवाह, वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्ति के हेतु, यज्ञ पुनः अग्नि देव के प्रसाद (चरु) को आपस में तीनों रानियों को बाँटना। यथा-

समय दशरथ जी के पुत्र राम की उत्पत्ति एवं उनके जन्म के समय अनेक प्रकार का दान पुण्य आदि का वर्णन किया गया है ।

चौथा अध्याय श्री रामचन्द्र की 'बाललीलाओं' से ओत-प्रोत है एवं भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि के जन्म का वर्णन है । चारों भाइयों के कुछ बड़े होने पर उनके नाम रूप एवं गुण के अनुसार रखे गए ।

जिनका तेज चर-अचर में आकाश के समान व्याप्त है। ऐसे गुणागार भगवान का नाम 'राम' रखा गया । जो विश्व का भरण-पोषण करते हैं और जिनके गुण अज्ञान को नष्ट करने वाले हैं । उनका नाम 'भरत' रखा जिनके स्मरण से शत्रु का नाश हो जाता है। उनका नाम 'शत्रुघ्न' है । वर्ष गांठ आदि में जो उत्सव हुआ उनका वर्णन किया गया है और एक बार बाललीलाओं में ही भगवान ने कौशल्या जी को अपने विराट रूप के दर्शन दिए ।

पाँचवाँ अध्याय 'रामचरित्र' वर्णन से सम्बन्धित है । रामचरित्र से सम्बन्धित यहाँ एक लघु कथा इस प्रकार है कि एक बार एक मदारी एक बन्दर लेकर आया। उस बन्दर को देख भगवान राम मचल पड़े, कि मुझे यही बन्दर चाहिए। इसी सन्दर्भ में वशिष्ट [illegible] जी ने कहानी सुनाई कि किस प्रकार से हनुमान जी की उत्पत्ति हुई और उन्होंने एक बार बचपन में ही सूर्य को निगल लिया। जिसके फलस्वरूप उन्हें अनेक प्रकार के श्रेष्ठ वरदान मिले । अधिक बल होने के कारण वो अक्सर मुनियों के पास जाकर कमण्डल वगैरा तोड़ देते, वृक्ष तोड़ डालते और पर्वत के शिखर गिरा देते । अतः ऋषियों ने खिन्न होकर हनुमान जी को शाप दे दिया। तब हनुमान जी ने सूर्य नारायण से सभी प्रकार की विद्या प्राप्त की और गुरु के कहने पर रघुपति के दर्शन हेतु, सुग्रीव के पास ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे । विद्या हेतु वे गुरु के पास गए और अनेक प्रकार से विद्या ग्रहण की । इसी प्रकार से श्री राम के भोजन एवं शिकार आदि का वर्णन इसी अध्याय में है । तीस सखियाँ जो भगवान का गुणगान करती थीं उनके नाम गिनाए गए हैं । लोमश मुनि के भ्रम का निवारण और राम की पतंग आदि का वर्णन है ।

छटा अध्याय 'विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा' से सम्बन्धित है । राम के पौरुष को देखकर रावण एक बार बड़ा लज्जित हुआ। तब रावण ने कहा कि जाकर तपस्वियों से कर ले आओ दूतों ने आज्ञा पाकर तपस्वियों से कर देने का आग्रह किया । तपस्वियों ने उन्हें एक घड़ा रुधिर दिया और कहा कि इसी घड़े से कुल का नाश हो जायगा । और एक बार वर्षा हेतु राजा रानी दोनों ने जनक पुर के आँगन में हल जोता जिसके फलस्वरूप सीता जी उत्पन्न हुईं । कन्या के बड़े होने पर जनक जी ने शिवजी के धनुष को तोड़ने की प्रतिज्ञा रखी: कि जो इस धनुष को तोड़ेगा उसी के साथ सीता का विवाह किया जायगा ।

इधर विश्वामित्र जी ने अपने यज्ञ के रक्षा हेतु अयोध्या जाकर दोनों भाइयों (राम,लक्ष्मण) को बुला लाए । राम ने वन में पहुँच कर सभी राक्षसों का संहार कर डाला ।

सातवें अध्याय में 'श्रीरामचन्द्र रंगभूमि-आगमन' की कथा है । विश्वामित्र जी के पास धनुष-यज्ञ देखने हेतु जनक जी का निमन्त्रण आया । इस प्रकार सभी लोग जनकपुर की ओर चले। रास्ते में रामचन्द्र जी ने एक शिला को छू दिया और चरण स्पर्श होते ही अहिल्या जो कि गौतम द्वारा शाप ग्रस्त थी, उसका उद्धार हो गया । जनकपुर पहुँचने पर विश्वामित्र जी राजा जनक को राम एवं लक्ष्मण का परिचय बतलाते हैं । नगरवासियों के लिए ये लोग एक आकर्षण का केन्द्र होते हैं । राम सीता का उपवन में मिलन एवं सीताकृत पार्वती की स्तुति आदि का वर्णन है । इसके बाद राम-लक्ष्मण रंगभूमि में प्रवेश करते हैं। जनक जी की प्रतिज्ञा का वर्णन, लक्ष्मण जी का क्रोध, सीता जी की मन ही मन भगवान शंकर एवं गिरिजा महारानी से प्रार्थना आदि का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।[5]

रामायण खण्ड के आठवें अध्याय में श्रीपरशुराम वन यात्रा का वर्णन है। पूर्व प्रसंग में सीता जी गिरिजा महारानी से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे प्रभु ! मुझे आप अपने चरणों की दासी बना लीजिए, अन्यथा मैं अपने शरीर का त्याग करके मैं आप में मिल जाऊँगी । इसके बाद रामचन्द्र जी ने धनुष को तोड़ दिया और सीता जी ने प्रसन्न होकर जयमाला पहना दी + और

इसी समय धनुष भंग की ध्वनि सुनकर परशुराम जी आ गए । परशुराम जी का क्रोध , परशुराम - लक्ष्मण संवाद आदि एवं परशुराम के द्वारा राम की स्तुति आदि का वर्णन है ।

नवें अध्याय में 'श्रीरामचन्द्र विवाह' वर्णित है। राजा जनक जी ने राजा दशरथ के पास दूत भेजा कि वे बारात सहित आकर विवाह करें । राजा दशरथ को जब जनक जी का पत्र मिला, तब वो अत्यन्त प्रसन्न हुए और हर्षित होकर राम जी की बारात लेकर पहुँच गए । बारात की अगवानी, विवाह का दिन एवं मण्डप में बारात किस प्रकार सुशोभित हो रही। इसका वर्णन किया गया है । और राम जी के साथ लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, आदि के विवाह का भी वर्णन है ।

दसवाँ अध्याय 'श्रीराम कलेवा' से सम्बद्ध है । इसमें कलेवा के समय सीता जी कि सखियों एवं बहनों ने राम जी एवं उनके भाइयों के साथ जो मन-मोहक हास- परिहास किया है, उसी का वर्णन है ।

रामायण खण्ड का ग्यारहवाँ अध्याय 'बारात की विदाई' से सम्बन्धित है। राजा दशरथ के बहुत प्रकार से आग्रह करने पर राजा जनक बारात की विदाई करने के लिए तैयार हुए। इसमें उन्होंने अनेक प्रकार का दहेज, विवाह में प्राप्त ,भेंट सामग्री आदि का विस्तृत विवेचन किया है । पुत्रियों की विदाई का कवि ने बड़ा ही करुण दृश्य उपस्थित किया है। बारात की वापसी , राम का भोजन एवं शयन आदि का वर्णन कवि ने इस अध्याय में किया है ।

अयोध्या काण्ड के प्रारम्भ में रामायण खण्ड का बारहवाँ अध्याय है। भरत केकय देश को चले जाते है। इधर राजा दशरथ अपनी वृद्धावस्था पर विचार करते हुए राम का राज्यतिलक करने हेतु तैयारियाँ करवाते हैं। उधर सरस्वती आकर मन्थरा नामक दासी की बुद्धि फेर देती है और कैकेयी कोप भवन में जाकर बड़े नाटकीय ढंग से राजा दशरथ को वचन बद्ध करके, दो वरदान माँगती है। राजा दशरथ दूसरा वरदान सुनकर बड़ी ही नाजुक स्थिति में विचलित हो जाते हैं। तब राम आकर कई प्रकार से सीख देते हैं। अंततः वह वन के लिए तैयार हो जाते हैं।

और सीता तथा लक्ष्मण के आग्रह करने पर उनको भी अपने साथ ले लेते हैं । फिर कौशल्या से आशीर्वाद प्राप्त कर वन को चल देते हैं ।

तेरहवाँ अध्याय 'श्री राम-चित्रकूट-आगमन-कथा' से सम्बन्धित है। चित्रकूट जाते समय श्री निषाद से भेंट, केवट द्वारा सरयू पार कराने से पहले पैर धोना, मार्ग की स्त्रियों की तरह - तरह की बातें ऋषि वाल्मीकि से भेंट, चित्रकूट आगमन आदि का वर्णन इस अध्याय में किया गया है ।

चौदहवें अध्याय में 'सुमन्त्र का अयोध्या वापस लौटना,' राम के वियोग में दशरथ जी का निधन, रानियों एवं पुरजन का विलाप, भरत का अयोध्या आना, भरत की कौशल्या से भेंट आदि का वर्णन है । राम से मिलने हेतु भरत का अवधपुरी से प्रस्थान आदि का वर्णन है ।

पन्द्रहवें अध्याय में पूर्व अध्याय के प्रसंग का ही विस्तार है । भरत का निषादराज से मिलन एवं अनेक मुनियों के दर्शन से अपने को पुनीत करने का वर्णन है । भरत पहले भरद्वाज के आश्रम में जाते हैं । उसके बाद चित्रकूट के दर्शन करते हैं । भरत के साथ सेना को देखकर लक्ष्मण जी का क्रोध आदि का वर्णन है । इसके बाद कवि ने भरत-राम के मिलन का बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है ।

सोलहवाँ अध्याय 'श्रीभरत-पादुका-अभिषेक' वर्णन के सन्दर्भ में है । इस समय जनक का आगमन होता है और दोनों परिवारों का मिलन होता है। इसके पश्चात् भरत की महानता का वर्णन कवि ने किया है राजा जनक कहते भी हैं[1] भरत की महानता को स्वीकार करते हुए राम [illegible] जाकर कहते हैं ।

- -

1- सुन वशिष्ट मुनि बहु अवगाहा। मिली न भरत बुद्धि की थाहा ।।
जोग भोग सुख नव में राजू । जिमि जानौं हरिजन कर भाऊ ।।
भरत भाग्य गुण शील विचारा । शेष कहैं पर लहैं न पारा ।।
महिमा भरत केरि सुनु प्यारी । जानैं राम न सकैं उचारी ।।
सो किमि अपर सकै को गाई । पियरियाँ उर बहु सिंधु समायी ।।
अध्याय- 16, पृ0 895, विश्रामसागर

कि-संसार में भरत जैसा भाई न हुआ है, न है और न होगा। इसके बाद भरत को रामचन्द्र जी ने अपनी पादुकायें देकर विदा किया और भरत ने कुछ दिन सोच-वाकर गुरु से आज्ञा ले।श्री राम जी की पादुकायें सानुराग सिंहासन पर स्थापित कर दीं।

सत्रहवें अध्याय में 'अरण्यकाण्ड' की कथा है। एक बार प्रेम-विभोर होकर श्री राम और सीता जी बैठे हुए थे।उसी समय ईर्ष्या वश जयन्त ने काक का शरीर धारण करके सीता जी के चरणों में पंजा मार कर भागा। इस पर राम ने कुशकांस द्वारा एक बाण छोड़ दिया। फिर जयन्त सभी के पास रक्षा हेतु गया; किन्तु किसी ने भी उसे शरण न दी अन्त में वह राम के पास ही आया और निर्भय होकर चला गया। भगवान राम फिर अत्रि के आश्रम में गए। राम ने सुतीक्ष्ण को वरदान दिया और पंचवटी में वास करने लगे पंचवटीमें अनेक ऋषि मुनि प्रतिदिन आते थे। एक बार लक्ष्मण जी ने राम से पूछा कि पाप की जड़ क्या है? माया एवं जीव में भेद आदि के बारे में पूछा। जिसका कि राम ने बड़ा ही सन्तोष जनक उत्तर बतलाया। लक्ष्मण - राम प्रश्नोत्तर को कवि ने इस अध्याय में बड़े ही विस्तार से वर्णन किया है।

अठारहवाँ अध्याय 'श्री राम का शबरी के गृह में आगमन' कथा से सम्बन्धित है/एक राक्षसी शूर्पणखा श्री राम के पास आकर उनसे विवाह का प्रस्ताव रखती है, तब राम लक्ष्मण के पास भेज देते हैं/लक्ष्मण भी अस्वीकार कर देते हैं। तब लज्जित होकर शूर्पणखा अपना विकराल रूप प्रकट करती है। तब लक्ष्मण शूर्पणखा को अंग-भंग कर देते हैं। इसके बाद खर - दूषण से युद्ध होता है खर-दूषण के मर जाने पर शूर्पणखा रावण के पास जाती है/रावण अपने मामा मारीच को मृग रूप में पंचवटी में लाकर सीता का छल से हरण करके सीता को लंका ले जाता है। राम-सीता के वियोग में अत्यन्त व्यथित होते हैं। इसके पश्चात् जटायु के मोक्ष और शबरी के बैकुण्ठ गमन की कथा का वर्णन है।

'किष्किन्धाकाण्ड' का प्रारम्भ उन्नीसवें अध्याय से है। जिसमें श्री राम-सुग्रीव की मित्रता का वर्णन किया गया है। हनुमान जी के बतलाने पर सुग्रीव राम

के पास गए एवं अपना सारा दुख कह सुनाया। तब राम ने कहा कि हम बालि का वध कर देंगे। इस पर दुखी होकर सुग्रीव बोला कि जो कोई इन सात विशाल ताड़ के वृक्षों को एक बाण से गिरा देगा। वह ही बालि का वध कर सकता है। इस पर श्री राम ने उन वृक्षों को गिराया और फिर बालि का भी वध किया। सुग्रीव का राज्य-तिलक कर दिया। काफी दिन व्यतीत हो गए किन्तु सुग्रीव ने सीता का पता नहीं लगाया। इस पर भगवान राम कुपित हुए। उधर हनुमान जी ने सुग्रीव को याद दिलाया और सुग्रीव ने राम सेना का संयोजन बहुत ही विस्तृत रूप में किया।

बीसवें अध्याय में राम के कुपित होने पर लक्ष्मण जी आये और बोले मैं नगर को भस्म किए देता हूँ। सुग्रीव, तारा (सुग्रीव की पत्नी) को लेकर शीघ्र ही लक्ष्मण जी के पास क्षमा-याचना माँगने हु हेतु आए। फिर सुग्रीव आदि सारी सेना राम के पास पहुँची। कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् सुग्रीव ने चारों दिशाओं में वानरों को भेजा। जटायु के भाई सम्पाति ने वानरों को बतलाया कि सीता रावण के नगर (लंका) में अशोक वृक्ष के नीचे है। सौ योजन समुद्र पार कर के सीता का पता लगाने का काम हनुमान जी को सौंपा गया। इक्कीसवाँ अध्याय रामायण खण्ड के सुन्दर-काण्ड से प्रारम्भ है। हनुमान जी सिंधु पार करके लंका नगरी में पहुँचे वहाँ पर लंकिनी नाम की राक्षसी का संहार किया। फिर हनुमान जी विभीषण से युक्ति पूछ कर अशोक-वाटिका में सीता के पास गए। उसी समय अनेक सुन्दरियों के साथ सज्जित होकर रावण सीता के पास आया और सीता से अपनी ओर आकर्षित करने का असफल प्रयास कर लज्जित होकर अपने भवन को चला गया। फिर हनुमान द्वारा राम का गुणगान, और अनेक प्रकार से हनुमान-सी० सीता की वार्ता का वर्णन है।

बाइसवें अध्याय में हनुमान द्वारा लंकापुरी विध्वंस करने की कथा है। हनुमान-रावण की उत्तम वाटिका को विध्वंस करने लगे। मना करने पर उन्होंने राक्षसों (रक्षकों) समेत रावण के पुत्र अक्षय कुमार को मार डाला। फिर मेघनाद से अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। उसके पश्चात् रावण-हनुमान सम्वाद का बहुत ही रोचक वर्णन है। रावण ने हनुमान को दंड देने हेतु पूँछ में आग लगा दी। लंका दहन करने के पश्चात् अपनी आग बुझाने के लिए समुद्र में कूद पड़े और फिर सीता जी के पास

पहुँच कर सीता जी का सन्देश और चिन्ह स्वरूप चूड़ामणि प्राप्त कर हनुमान जी लंका से वापस चले गए।

तैंतीसवें अध्याय में राम की सिन्धुतट आगमन कथा है। हनुमान जी ने लंका से वापस आकर सीता जी का सन्देश रामचन्द्र जी को सुनाया। सारी सेना एवं राम ने लंका के लिए प्रस्थान किया। इधर लंका जलने के पश्चात् रावण ने सभा में बैठकर विचार-विमर्श किया। अधिकतर सभी मूर्खों ने युद्ध का ही प्रस्ताव रखा। मन्दोदरी ने रावण को अनेक प्रकार से समझाया, किन्तु रावण ने एक भी न सुनी। विभीषण ने रावण से कहा—जानकी जी को लौटा दिया जाय। इस पर रावण ने विभीषण पर चरण प्रहार किया। इस प्रकार विभीषण राम की शरण में पहुँच गया। विभीषण जब राम की शरण में पहुँचा, तो किस प्रकार एक भक्त राम की शरण में आता और ईश्वर उसको किस प्रकार अपनाते हैं, इसका बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। फिर राम द्वारा विभीषण के राज-तिलक की कथा है।

चौंतीसवें अध्याय में राम जी मंत्रियों से पूछते हैं कि समुद्र पार किस तरह किया जाय। इस पर विभीषण कहते हैं कि नीति के अनुसार आप सागर से समुद्र पार करने का मार्ग माँगिए। इसके बाद सागर के बतलाने पर नल-नील द्वारा पुल का निर्माण कर श्रीराम जी एवं सम्पूर्ण सेना दूसरे दिन समुद्र को पार कर लंका पहुँची। रावण ने अपने दूतों के द्वारा बहुत बड़ाई सुनने पर मन्दोदरी एवं कुछ राक्षसों के साथ धौरहरे पर चढ़कर अपार कपि सेना देखी। इधर रामचन्द्र जी ने छत्र धारण किए हुए रावण को देख कर एक बाण से उसके मुकुट आदि गिरा दिए। यह सब देख कर मन्दोदरी बहुत ही चिन्तित हुई और उसने अपने पति को समझाने का पुनः प्रयास किया, किन्तु सब व्यर्थ ही रहा क्योंकि रावण ने उसकी एक न सुनी।

पैंतीसवाँ अध्याय 'अंगद-रावण सम्वाद' से सम्बन्धित है। अंगद रावण की सभा में किस प्रकार पहुँचा, फिर रावण और अंगद का सम्वाद बड़े ही विस्तार में है। अंगद रावण के अतीत के जीवन का व्यंग्य उड़ाते हुए कहता है कि—तुझे मेरे पिता बालि ने काँख में रखा, बाणासुर ने तुम्हें पकड़ कर नाच नचाया आदि इस प्रकार की कथाओं को कहकर रावण का मजाक उड़ाता है। उधर रावण भी बन्दर किस प्रकार

अपने स्वामी के इशारे पर नाच आदि दिखाते हैं, ऐसा कहकर अंगद की हंसी उड़ाता है। काफी देर इसी प्रकार वाद-विवाद होने पर अन्त में अंगद अपना चरण रोप कर कहता है कि यदि कोई मेरे चरण को हटा दे तो सीता तुम्हारी अन्यथा हमारी। किन्तु कोई भी उसके चरण को नहीं हटा पाता। इस प्रकार वर्णना करते हुए अंगद ने वापस आकर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में शीश नवाया।

छब्बीसवाँ अध्याय लक्ष्मण हित 'रामविरह कथा' से सम्बन्धित है। वानर-राक्षस युद्ध का वर्णन है। लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध बड़े ही भयंकर रूप में होता है। लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार होने से लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं। लक्ष्मण को मूर्छित देख कर राम अनेक प्रकार से विलाप करते हैं। हनुमान लंका से सुषेण वैद्य को ले आते हैं वे संजीवन बूटी लाने के लिए कहते हैं, पहाड़ सहित आते हुए देखकर भरत ने सोचा शायद कोई राक्षस है उन्होंने एक बाण मारा, जिससे कि हनुमान राम-नाम कहते हुए गिर पड़े। होश आने पर जब भरत को पूरी कथा मालूम पड़ती है, तब उन्हें बड़ा दुख होता है। फिर हनुमान जी शीघ्र ही लंका आ जाते हैं और लक्ष्मण जी को होश आ जाता है।

सत्ताईसवें अध्याय में कुम्भकर्ण के वरदान के कारण दोनों भाइयों को नागपाश में बाँधकर मेघनाद रावण के पास जाता है। रावण बड़ा प्रसन्न होता है फिर गरूड़ आकर सब सर्पों को भगा देता है और दोनों भाइयों को फिर सेना में ले आता है। अनेक प्रकार से कुम्भकर्ण युद्ध करता है अन्त में मारा जाता है। कुम्भ-कर्ण के निधन पर रावण एवं स्त्रियाँ अनेक प्रकार से विलाप करती हैं। उसके बाद मेघनाद का वध होता है। मेघनाद की पत्नी सुलोचना अनेक प्रकार से विलाप करती हुई कृपासिन्धु भगवान के पास गयी और अपने पति का शीश प्राप्त कर सती हो गयी।

अट्ठाईसवाँ अध्याय 'राम-रावण समर' वर्णन के सन्दर्भ में है। रावण ने अपने पुत्र अहिरावण को बुलाकर युद्ध के लिए कहा। तब अहिरावण विभीषण का रूप बनाकर गया और दोनों भाइयों को उठा लाया। और देवी को बलि चढ़ाने लगा उसी समय हनुमान आए और अहिरावण को मार कर दोनों भाइयों को ले गए। फिर क्रमशः हनुमान-रावण युद्ध, लक्ष्मण-रावण युद्ध और रामरावण युद्ध का वर्णन है। राम हर बार रावण की भुजायें काटते और हर बार भुजायें फिर हो जाती। इस प्रकार फिर और भुजायें काटते काटते आठ दिन बीत गए।

उन्तीसवें अध्याय में श्री राम ने दुर्गा की स्तुति करके इकतीस बाण छोड़े। एक बाण से नाभि के अमृतकुण्ड को सोख लिया और तीस बाणों से बीसों भुजाओं को क्रोध करके काट डाला। ब्रह्माण्ड काँपने लगा देवताओं ने नगाड़े बजाए एवं पुष्प वर्षा की। फिर विभीषण सुन्दर पालकी में बैठाकर सीता जी को ले आए। अग्नि से प्रकट करने हेतु प्रभु ने कुछ निन्दनीय शब्द सीता जी को कहे।इस प्रकार फिर सीता जी की अग्नि परीक्षा ली। इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी, सीता जी, लक्ष्मण जी, सेनापतियों और विभीषण को साथ ले कर पंचमी के दिन पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने देश को चले। उधर ज्योतिषियों ने भी विचार करके बतलाया कि प्रभु अयोध्या के निकट आ पहुंचे हैं।

तीसवें अध्याय में श्री राम भरत- मिलाप और राम राज्याभिषेक का वर्णन है। दोनों भाई, गुरु, नगर निवासी और मन्त्रियों के समाज सहित माताओं से आज्ञा लेकर श्रीराम के स्वागत के हेतु चले। भाइयों से मिलने के बाद राम अपनी सभी माताओं से मिले। इसके बाद राम के राज्याभिषेक का वर्णन है।देवों द्वारा राम की स्तुति करना।श्री राम की शोभा का वर्णन और अन्त में कवि ने राम राज्य की महिमा का वर्णन किया है।

विश्रामसागर की विषयवस्तु का सामान्य परिचय देने के बाद कथा वस्तु की निम्नलिखित विशेषताएँ उभर कर सामने आती हैं -

1- आधार -
==========

विषयवस्तु का आधार नाना-पुराण, श्रीमद्भागवत् और राम-चरित मानस है।जिनमें उनके मतानुसार अमर भक्ति का आश्रय लेकर कवि ने कथावस्तु का चयन किया है,। जैसा कि स्थान-स्थान पर निर्देश किया गया है।

2- सरलता -
==========

कवि ने विषयवस्तु के लोक मानस के लिए ही संजोया है।अतः उसने सरलता का पर्याप्त ध्यान रखा है। पाण्डित्य-प्रदर्शन या अन्तर्कथाओं के कारण कहीं पर विषयवस्तु उलझी नहीं प्रतीत होती। यही कारण है कि लोक जीवन में विश्रामसागर बड़ी श्रद्धा के साथ पढ़ा और सुना जाता है।

३- रोचकता-

कवि ने विश्रामसागर की प्रत्येक कथावस्तु को रोचक बनाने की चेष्टा की है। जिससे उसके पठन और श्रवण करने में नीरसता का अनुभव नहीं होता।

४- आस्तिकता -

सामान्य जन मानस का श्रद्धा और भक्ति के ताने-बाने से बना हुआ है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कवि ने स्थान-स्थान पर आस्तिकता का समर्थन किया है। इस कारण लोक जीवन की श्रद्धा को सहज ही में ग्रहण कर लेने में कवि को सफलता प्राप्त हुई है।

५- नैतिकता एवं सदाचार -

महापुरुषों का यह लक्ष्य होता है कि लोक जीवन का कल्याण हो और वे संसार के उन आदर्शों की ओर प्रेरित करते हैं; जो इह-लोक और परलोक में कल्याणकारी है। विश्रामसागर की कथावस्तु में इसी उद्देश्य से नैतिक विचारों एवं सदाचारों के मूल तत्वों को ग्रहण किया गया है। इस कारण कथावस्तु में जनता के लिए विशेष आकर्षण उत्पन्न हो गया है।

संक्षेप में कथावस्तु की ये मुख्य विशेषताएं हैं जिनके कारण यह ग्रन्थ जन-मानस में विशेष आदरणीय बन गया है। धर्म-प्रधान जनता में राम और कृष्ण विशेष पूज्य हैं। ये दोनों अवतार धर्म के प्राण हैं। अतः उनके चरित्रों का गुणगान करने के कारण कवि भी जनता की श्रद्धा का पात्र बन गया है, साथ ही उसका ग्रन्थ भी आदरणीय बन गया है।

अध्याय - 3

विश्रामसागर का रसात्मक अनुशीलन

प्राचीन आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा घोषित किया है आदि रस वादी आचार्य भरत मुनि ने रस को ही सभी काव्य शास्त्रीय अंगों में प्रमुखता प्रदान की है। वस्तुत: रस अंगी है और अलंकार आदि सभी अंग है। यह रस न तो उत्पन्न होता है और न इसका अनुमान ही किया जाता है अपितु यह अनुभूति का विषय होता है। रस मूल रूप में सामाजिक में होता है और वह विभावादि के कारण ही अपने विशेष रूप में अनुभव किया जाता है। रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में लिखा है-

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादे: स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो: ।।[1]

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण: ।
व्यक्त: स तैर्विभावाद्यै: स्थायी भावो रस: स्मृत: ।।[2]

उपर्युक्त श्लोकों के विवेचन करने से पूर्व रस सिद्धान्त के इतिहास पर कुछ दृष्टिपात करेंगे -

आनन्दोपलब्धि मानव का प्रमुख उद्देश्य है। इस आनन्द की खोज वह सभी क्षेत्रों में करता रहा है यथा - भौतिक जगत, साहित्य - साधना, धर्म और दर्शन आदि। साहित्य के क्षेत्र में जिस आनन्द की उपलब्धि की साधना - - साहित्यकार आदिकाल से करते आ रहे हैं उसी को रस की पारिभाषिक संज्ञा दी गयी है।

रस के प्रति मानव का आकर्षण अनादि है। यह दूसरी बात है कि 'रस' शब्द की किसी युग में किसी विशेष अर्थ की प्रधानता रही है। 'रस' शब्द

- -

1- चतुर्थ उल्लास, काव्य प्रकाश, पृ० 85, श्लोक संख्या - 27

2- वही वही पृ० 86, श्लोक संख्या - 28

का प्रयोग ऋग्वेद में अधिकतर वनस्पति द्रव, जल और दुग्ध के अर्थ में किया गया है । डॉ० नगेन्द्र ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ऋग्वेद में भी रस शब्द ऋचाओं के अर्थात वाणी के आनन्द के ही अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । उपनिषदों में आकर 'रस' शब्द ब्रह्मानन्द का वाचक बन गया । तैत्तरीयोपनिषद में "रसो वै सः" लिखकर इसी अर्थ को स्वीकार किया गया है । इन्हीं उपनिषदों में रस शब्द "भोज्य" ""स्वाद" के अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया है । जिसका "जिह्वया हि रसान् विजानाति" अर्थात् रसों या स्वादों का ज्ञान जिह्वा से होता है । इस प्रकार रस वैदिक वाङ्मय में कहीं पर वनस्पति, द्रव के अर्थ में, कहीं जल के अर्थ में, तो कहीं ब्रह्म और कहीं स्वाद के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।[1]

'रस' शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरम विकास से सम्बन्धित है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में "रस" शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्व के लिए होता है । खाद्य - पदार्थों और फलों के क्षेत्रों में रस मधुरतम सारपदार्थ का द्योतक है । संगीत के क्षेत्र में सेन्द्रिय द्वारा प्राप्त "आनन्द" का नाम रस है । चिकित्सा के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट प्राणदायिनी औषधियों को रस कहा जाता है । अध्यात्म के क्षेत्र में स्वयं परमात्मा को ही 'रस' या रस को ही परमात्मा घोषित किया है - "रसो वै सः" अर्थात् रस ही परमात्मा है । इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी काव्य के आस्वादन से प्राप्त आनन्दानुभूति को ही रस की संज्ञा दी गई है । अस्तु, काव्यानन्द ही रस है[2] ।

ब्रह्मानन्द स्वाद सहोदर काव्यानन्द को आचार्यों ने पारिभाषिक शब्दावली में 'रस' की संज्ञा दी है । भरत मुनि ने रस की परिभाषा देते हुए कहा है - "विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः" अर्थात् "विभाव" "अनुभाव" एवं व्यभिचारी भाव के संयोग से "रस" की निष्पत्ति होती है ।

- -

1- रस सिद्धान्त , नवीन साहित्यिक निबन्ध , डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० 720

2- रस सिद्धान्त, और रस निष्पत्ति साहित्यिक निबन्ध डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त पृष्ठ- 29

रस सूत्र की सम्यक् व्याख्या के लिए भाव, विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव के स्वरूप को समझना आवश्यक है क्योंकि यह रस - तत्व ही हैं ।

भाव [स्थायी भाव]

भाव से तात्पर्य स्थायी भाव से है । आचार्य भरत ने भाव का विश्लेषण करते हुए कहा है - "वागङ्गसत्त्वोपेतान् भावयन्ति इति भावाः" अर्थात् [अनुभावों के] वाचिक, आङ्गिक एवं सात्विक प्रदर्शन द्वारा जो नाटक के अर्थ को विभावित करते हैं, वे भाव हैं । मूल भूत ये भाव ही स्थायी हैं - रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय एवं शम तथा वात्सल्य स्नेह - ये दस स्थायी भाव हैं -

विभाव -

"रत्याद्युद्बोधकाः लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः"

अर्थात् लोक में रति आदि स्थायी भावों के जो उद्बोधक हैं वे ही काव्य में विभाव कहे जाते हैं । विभाव के दो भेद हैं -

[1] आलम्बन एवं [2] उद्दीपन ।

आलम्बन के पुनः दो भेद किए जाते हैं - [1] आलम्बन एवं [2] आश्रय ।

अनुभाव -

अपने आलम्बन - उद्दीपन आदि कारणों से उद्बुद्ध बाह्य भाव को प्रकाशित करने वाला जो लौकिक कार्यरूप है वही काव्य और नाटक में अनुभाव है मुख्यतः इसके पाँच भेद हैं - 1- कायिक 2- वाचिक 3- मानसिक 4- आहार्य 5- सात्विक ।

व्यभिचारी भाव -

ये संख्या में तैंतीस हैं - "निर्वेद, आवेग, श्रम, मद, जड़ता, उग्रता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलस्य, अमर्ष, निद्रा,

अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, त्रास, व्रीड़ा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चापल्य, ग्लानि चिन्ता एवं वितर्क ।" विशिष्ट प्रक्रिया से प्रमुख रस हेतु स्थायिभावों की ओर संचरण के कारण ये संचारिभाव या व्यभिचारिभाव कहे जाते हैं ।

आधुनिक विद्वानों ने भी मनोविज्ञान की सहायता से रस का विवेचन किया है, जिसमें डॉ० नगेन्द्र का "रस सिद्धान्त" इस क्षेत्र का सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने भी रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है - काव्य शास्त्र में परम्परित नवरसों का उल्लेख किया जाता है। विश्रामसागर के कवि ने भी अपने ग्रन्थ में इन नौ रसों के अस्तित्व को इस प्रकार स्वीकार किया है-

अद्भुत हास श्रृंगार भय, वीर विभत्स विषाद ।[1]
रुद्र सुकरुण सम शान्त ये, यामें नव रस स्वाद ।।

इस प्रकार श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत वीभत्स, शांत रस का अस्तित्व तो है ही किन्तु यह ग्रन्थ भक्ति प्रधान है। अतः "भक्ति रसामृत सिन्धु" के आधार पर भक्ति रस को भी मान्यता दे दी गयी है । और वात्सल्य रस को तो 14 वीं शताब्दी से रस की श्रेणी में स्थान मिल चुका था। अस्तु, इस दृष्टि से इस ग्रन्थ में कवि की रसात्मक काव्य प्रतिभा का परीक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है -

1- श्रृंगार रस	2- करुण रस	3- रौद्र रस
4- वीर रस	5- भयानक रस	6- हास्य रस
7- अद्भुत रस	8- वीभत्स रस	9- शान्त रस
10- भक्ति रस	11- वात्सल्य रस	

अब क्रमशः इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है -

श्रृंगार रस -

कामेच्छा प्राणी मात्र की प्राकृतिक भूख है । पशु, [illegible], [illegible]

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड अध्याय- 2 पृ० 14

सृष्टि में स्त्रीतत्व और पुरुषत्व का ही साम्राज्य है । सृष्टि निर्माण भी दोनों के समुचित योग का परिणाम है । पुरुष और प्रकृति या ब्रह्म और माया सृष्टि निर्माण के मूल कारण हैं । ब्रह्म अपनी माया की शक्ति से सृष्टि निर्माण का कार्य करता है। अतः ज्ञानियों ने अशेष विश्व को माया माना है । प्राणी मात्र की सृष्टि मैथुनी सृष्टि मानी जाती है । इसके लिए स्त्री तत्व और पुरुष तत्व बनाए गए और प्राणियों का निर्माण क्रम से चलने लगा । चूंकि मानव जीवन ज्ञान और विवेक से सम्बन्धित है अतः उसके प्रत्येक कार्य में बुद्धि और भावना का योग होता है । मनुष्य ब्रह्म की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है, अतः उसकी भावनाओं का व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार का महत्व है। चूंकि मनुष्य भावनामय अनुभूतिमय प्राणी है, अतः उसके हृदय में विभिन्न प्रकार की भावनाएं रहा करती हैं ।

जीवन में प्रेम का अत्यन्त महत्व है इसीलिए किसी कवि ने कहा है-
" Life is flower of which love is honey. "

उपर्युक्त लिखी इन अनेक भावनाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भावना प्रेम की है। प्रेम भाव के दो पक्ष होते हैं संयोग पक्ष एवं वियोग पक्ष । यह वियोग शरीर तथा मन दोनों से सम्बन्धित हो सकता है, जिसमें मन की ही सत्ता महत्वपूर्ण है । मन की ही स्मृति प्रवणता के कारण विरह प्रेम की जागृत गति कहा गया है और मिलन को सुषुप्ति कहा गया है ।

शृंगार रस की इसी महत्ता के कारण अग्निपुराणकार ने शृंगार रस को आदि रस के रूप में प्रतिष्ठापित किया है ।

1- आधुनिक हिन्दी निबन्ध- पृष्ठ 472, - भुवनेश्वरी चरण सक्सेना

श्रृंगार रस आदि रस है -

अग्निपुराणकार ने श्रृंगार रस की प्रकृति को मूल रस के रूप में निरूपित किया है यथा - जो अक्षर, परब्रह्म, अज और विभु है, उसका सहज आनन्द कभी - कभी प्रकट हो जाता है; यह अभिव्यक्ति चैतन्य चमत्कार और रसमय होती है । उसके आदि विकार को अहंकार कहते हैं उसके अहंभाव से अभिमान ममता का आविर्भाव हुआ जो भुवन में व्याप्त है। ममता संकलित अभिमान से रति की उत्पत्ति हुई। यही "रति" श्रृंगार रस की जननी है[1] । श्रीमद्भागवत् में वैवस्वत मनु और श्रद्धा से मानवीय सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है । श्रद्धा कामगोत्र की बालिका है[2] । भारतीय वाङ्मय में मूलभाव के रूप में काम की व्यापकता का उल्लेख अनेक स्थलों में पाया जाता है[3] । कविवर प्रसाद ने आदि वासना के रूप में काम के आगमन का सुन्दर चित्रण किया है । यथा -

जो आकर्षण बन हंसती थी ।
रति थी अनादि वासना वही ।
अव्यक्त प्रकृति उन्मीलन के ।
अन्तर में उसकी चाह रही[4] ।।

सृष्टि के विकास क्रम में काम का महत्वपूर्ण स्थान समझने के लिए ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

विश्वात्मा की इच्छा शक्ति "काम" के रूप में अवतरित होकर समस्त प्रपंच के संचालन के मूल में ठहरती है ।

- -

1- अध्याय 339, 1-6 अग्नि पुराण

2- पृष्ठ संख्या-5 आमुख कामायनी, जयशंकर प्रसाद -नवम् संस्करण ।

3- (क) अथर्व वेद, 912,19/10,129/4 (ख) श्रीमद्भगवद्गीता 7/5
(ग) मनु स्मृति 1/25

4- कामायनी - काम सर्ग - जय शंकर प्रसाद ।

प्रतीक रूप में सप्तवर्गी कमल को विकसित होने के लिए जो शक्ति प्रेरित करती है उसका नाम "काम" है । "श्रृंगार" शब्द के दो अंश है – श्रृंग और "आर" श्रृंग का अर्थ कामोद्रेक अर्थात् काम की वृद्धि करना है "आर" शब्द (ऋ) धातु से बना है "ऋ" का अर्थ है "गमन" । गति का अर्थ यहाँ प्राप्ति लेने से श्रृंगार का अर्थ काम वृद्धि की प्राप्ति होता है । कामीजनों के हृदय में 'रति' स्थायी भाव रस अवस्था को प्राप्त होकर "काम" की वृद्धि करता है, इसी से इसका नाम श्रृंगार है ।

चूंकि स्थायी भाव 'रति' विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के एकीकरण से रस अवस्था को प्राप्त होकर कामीजनों के चित्त में काम की वृद्धि करता है, इसीलिए वह श्रृंगार कहलाता है । अंकुरित काम ही अपनी प्रिया रति से मिल कर सृष्टि की उत्पत्ति का हेतु होता है ।

<u>श्रृंगाररस के भेद –</u>

श्रृंगार रस के तीन भेद माने जाते हैं –

(1) अयोग, वियोग अथवा पूर्वराग । संयोग के पूर्व उत्पन्न प्रेम को "पूर्व राग" कहते हैं ।

(2) संयोग अथवा संभोग श्रृंगार तथा

(3) वियोग अथवा विप्रलम्भ श्रृंगार ।

<u>संयोग या संभोग श्रृंगार –</u>

पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर जब नायक और नायिका एक दूसरे के दर्शन , मिलन, स्पर्श, आलाप, आदि में संलग्न होते हैं, तब उस अवस्था के वर्णन को संयोग श्रृंगार कहते हैं । आचार्य विश्वनाथ ने संभोग श्रृंगार का लक्षण इस प्रकार दिया है – एक दूसरे के प्रेम में पगे नायक और नायिका जहाँ परस्पर दर्शन, स्पर्श आदि करते हैं, वह संयोग श्रृंगार कहलाता है । चुम्बन, आलिंगन आदिक

इसके अनंत भेदों की गिनती नहीं हो सकती है[1]।

"विश्रामसागर" में 'कृष्णायन-खण्ड' के अन्तर्गत रासलीला में श्रृंगार रस की छटा अवलोकनीय है यथा -

छविधाम वंशीवट जहाँ मणि जटित कंचन की मही।
तहँ रासमंडल रच्यो मोहन बात सो कापै कही।।
नवलातनवल सु गोपिका लखि साज सब ठाढ़ी भई।।
एक एक के मधि एक मूरति काम की शोभा भई[2]।।

यहाँ पर "वंशीवट" कंचनभूमि, उद्दीपन विभाव" नवलललनगोपियाँ" आलम्बन" श्री कृष्ण" आश्रय" कृष्ण का प्रतिगोपी प्रतिकृष्ण रूप बनाना "अनुभाव हर्ष, संचारी है। इनसे परिपुष्ट" रतिभाव" संयोग श्रृंगार के रूप में परिणत हो गया है। इसी प्रकार श्री कृष्ण के लिए गोपियों की आतुरता में "औत्सुक्य" संचारी के साथ श्रृंगार की छटा देखिये -

मन चाहत है मिलन को, मुख देखन को नैन।
श्रवण चहत सुखप्रद सुन्यो, श्याम सुन्दर के बैन[3]।।

यहाँ "गोपियाँ" आश्रय है, क्यों कि उन्हीं में "रस" उदित है और श्रीकृष्ण" आलम्बन है। मिलन दर्शन, श्रवणादि की "अभिलाषा" उद्दीपन है।

कोउ आरि कर गर श्याम के मुरली छिनाय बजावती।
कोउ तानपूरन कान्ह संग कोउ पकरि उर लपटावती।।
हँसि लेत गोद उठाय मोहन हाथ अंगनि पै धरैं।
लखि देव नभ परसून बरषे हरषि सब जै जै करैं[4]।।

इस प्रसंग में श्रीकृष्ण आलम्बन, गोपियाँ आश्रय, मुरली छीनकर बजाना गले में

- -

1- श्लोक संख्या 210,211, तृतीय परिच्छेद, साहित्य ~~दर्शना~~ दर्पण।
2- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 6, पृ0 576
3- वही वही, " -6, पृ0 647
4- वही, वही, " -6, पृ0 577

हाथ अलना और हृदय से लगाना "अनुभाव की श्रेणी में आते हैं। इधर श्रीकृष्ण द्वारा हंसकर गोद में उठा लेना, अंगों में हस्त स्पर्श करना प्रकृति क्रियायें, "उद्दीपन विभाव" हर्ष, औत्सुक्य आदि संचारी भाव है। इस प्रकार परिपुष्ट "रति" संयोग श्रृंगार के रूप में स्पृहणीय बन गई है। संयोग श्रृंगार की तुलना में वियोग श्रृंगार अधिक मार्मिक होता है। "विश्रामसागर" में इसके भी अनेक उदाहरण विद्यमान हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार -

जब अनुराग के उत्कृष्ट होने पर भी प्रिय संयोग का अभाव रहता है + उस अवस्था के वर्णन को विप्रलम्भ या वियोग श्रृंगार कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है। जिसमें नायक और नायिका का परस्परानुराग तो प्रगाढ़ हुआ करता है, किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता, उसे विप्रलम्भ कहते हैं[1]।

विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेद होते हैं - {1} पूर्वराग विप्रलम्भ {2} मान विप्रलम्भ {3} प्रवास विप्रलम्भ {4} करुण विप्रलम्भ।

विरह वियोग के संसार में उपालम्भ का बहुत बड़ा स्थान है, विश्राम सागर में भक्त रघुनाथ रामसनेही की गोपियों ने भी उपालम्भ का सहारा लिया है।

अतः उपालम्भ पर संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित है। शास्त्रीय विद्वानों ने इस प्रकार इस क्षेत्र का विश्लेषण प्रस्तुत किया है :-

स्नेह विकल चित्त पर विरह वियोग की धूलि पड़ने से उपालम्भ का जन्म होता है। यह विरहाग्नि से निकला धूम के समान है जो काव्याश्रय पाकर सुगन्धिपूर्ण हो जाता है। ईर्ष्या, विरह एवं विवशता के कारण ही उसकी उत्पत्ति

- -

1- श्लोक संख्या 187 वही - श्रृंगार रस उपासना और उसका रस राजकत्व,
-डॉ० त्रिभुवन सिंह

होती है । विवशता एवं दयनीयता ये ही दो मुख्य तत्व हैं । जो प्रच्छन्न-रुप से उपालम्भ का सृजन करते हैं । साधारणतः लोग व्यंग्य और उपालम्भ को एक ही समझकर भद्दी भूल कर बैठते हैं । लेकिन, सत्य तो यह है कि ये दोनों दो हैं फिर भी इन दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध हैं । आक्रोश, क्रोध और ईर्ष्या का मिश्र भाव ही व्यंग्य में झलकता है । पर उपालम्भ में नायिका की विवशता अधिक रहती है । इसमें अत्यधिक अपने और कुछ अपने नायक के प्रति दोषारोपण का भाव निहित रहता है । उपालम्भ में दीनता की भावना अधिक तीव्र रहती है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या उपालम्भ का प्रयोग केवल श्रृंगार-प्रसंग ही होता है या अन्यत्र भी? इस प्रसंग में यह तो सर्वथा सत्य है कि उपालम्भ का प्रासाद प्रेम की नींव पर ही खड़ा होता है, परन्तु जिस तरह प्रेम का क्षेत्र विशाल है उसी तरह उपालम्भ का भी । वस्तुतः उपालम्भ का भाव स्थिति का परिणाम है। इसका मुख्य आधार सादृश्य और सहानुभूति । इसमें न वास्तविक शिकायतें रहती हैं और न प्रेम पात्र की निन्दा ही । इस तरह के काव्याभिप्राय का भाव गहरी आत्मीयता और प्रेम है । प्रेमी अपने प्रेम पात्र से अलग होकर विकल और विह्वल हो उठता है । उसके मिलन की अभिलाषा तीव्र होकर उसे व्यथित कर देती है । ऐसी दशा में भी उसके मन में गहरी प्रेमानुभूति रहती है । ऐसी ही मनः स्थिति में प्रेमी किसी सहृदय, सहचर या सहचरी के माध्यम से अपने प्रेमी को उपालम्भ देता है । विश्रामसागर में बाबा रघुनाथ दास रामसनेही जी की गोपियों ने भी कृष्ण की सहचरी वंशी के निर्माता बाँस के वृक्ष को ही अपने उपालम्भ देने का माध्यम बनाया है यथा कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

वे मगदा पग बंधन को तुम बालिसो आठेनहु को निवारेउ ।।

वे जल थाह अतावत है तुम प्रेम अथाह के वारिद पारेउ ।।

हे बरबस बजाइ भो तुम बास छोड़ाय उजारि मैं डारेउ ।।[1]

का कहिए हरि की बँसुरी तुम आपन बँस को नाम बिगारेउ ।।

यहाँ पर ही बाँस की बंसी के प्रति गोपियों का आत्मीभाव चरम सीमा पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है । बाँस की प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध बंसी की प्रकृति को बताकर गोपियों द्वारा आक्रोश व्यक्त करने की परम्परा प्रचलित है ।

यथा - बैरे बाँसुरिया बिन बोहलो जाने { नेही }

हे रसाल हे पनस कुआंचरा तुम आवत देखे चल कान्हा ।।

हे जामुनि हे मुनरि तुता ? तुम देख्यौ यदुपति के पूता ।।[2]

यहाँ पर गोपियाँ "आश्रय" हैं जिनमें विरह व्याप्त है । उन्मादावस्था के चित्रण में कवि ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है । आलम्बन "श्रीकृष्ण" का अप्राप्त हो जाना ही उनके विरह का मूल कारण है । निर्वेद, शंका, जड़ता, दैन्य, विषादादि, व्यभिचारी भाव है ।

पीछे फिर चितवत नयन मम बार बार , पीछे न परत पग कहि मन दीजिए ।

पवन न भई की पताकहु अवर नाहिं, रथ के न भई अंग केती अब दीजिए ।।

धूरिहु न भई हरितन लागि जाती संग, खगहु न भई जो उड़ाय दरी लीजिए ।

बाई बिलखात जिमि भाषी मधु जात, छोड़ि, जियों नाहिं जात पै दरश आश जीजिए ।।[3]

यहाँ पर गोपियों के विरह की तीव्रता की प्रखर व्यंजना हुई है । मिलन की इच्छा इतनी प्रबल है कि वे पवन न होने पथ की धूल न होने, पक्षी न होने, मधुमक्खी न होने पर पश्चाताप करती है, अन्यथा वियोग न होता । मिलनेच्छा की यह पराकाष्ठा उत्कृष्ट है । विरही "राम" सीता जी के वियोग में उन्मत्त से हो गए हैं । वे अपनी सेना ही भूल बैठे हैं । लक्ष्मण जी के बताने पर ही कदा-कदा सेना का ज्ञान होता है । यथा -

बन्धु वचन सुनि धीरज धारा । बहुरि राम बन वचन उचारा ।

को बोलत लक्ष्मण तब दासा । हम को तुम राखहु बनवासा ।।

करत कहा ढूँढ़त प्रिय प्यारी । हा हा सीते जनक दुलारी ।।

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 580

2- वही, वही, अध्याय- 6 पृ0 579

3- वही, वही, अध्याय- 7 पृ0 590

इस प्रसंग में "हनुमन्नाटक" के निम्नलिखित श्लोक का प्रभाव दृष्टव्य है :-

किं कुर्वत विजने वने तत वतो देवी समुद्वीक्ष्यते ,
का देवी जनकाधिराज तनया- हा हा प्रिये जानकी ।।

हे हरि करि कुल कुल अधिप, सब परमारथ रूप ।
तुम देखी मम प्रीतमा, देहु बताए अनूप ।।[1]

इस प्रसंग में भी विरही राम की उन्मादावस्था का चित्रण है । तुलनीय-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम देखी सीता मृग नैनी ।।[मानस० आरण्य०]

इससे सिद्ध होता है कि उक्त प्रसंग में "हनुमन्नाटक" अथवा "मानस" का स्पष्ट प्रभाव है । जहाँ तक वेदना की तीव्रता का प्रश्न है, वह तो सर्वोपरि है ही ।

लखन लखहु तक उये रवि, नाथ मलिन है चन्द ।
मित्र कुल के कलंक ते, तरनि तेज भी मन्द ।।
तरनि तेज भी मन्द, कमल नहिं फूले ताता ।
अहो मित्र दुख दुखी, मिले कैसे जलजाता ।।
अहै नखत प्रफुल्लित कुमुद, शत्रु विपति लखि हँसत मन ।।
पुनि न दीन उत्तर कछे, कह लखत [illegible] रघुपति लखन।।[2]

यहाँ पर विरही राम सूर्य समझकर चन्द्र को उत्तेजक मानते हैं । लक्ष्मण उन्हें वास्तविकता का ज्ञान कराते हैं । राम की उन्माद दशा कितनी तीव्र है । अस्तु "विश्रामसागर" में "श्रृंगार" का चित्रण एक सीमित मात्रा में ही विद्यमान है । भक्त कवि की मनोवृत्ति श्रृंगार के क्षेत्र में उतनी ही रमती है, जितनी उसके आराध्य से जुड़ सकती है । यही बात बाबा रामस्नेही के विषय में भी सत्य है।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 18, पृ० 933

2- वही, वही, " -18, पृ० 936

श्री राम के जीवन का अंकन करने में "पुष्पवाटिका" और "रामकलेवा" के स्थल श्रृंगार वर्णन के लिए उपयुक्त हैं, जिनका कवि ने प्रयोग किया है । इसी प्रकार श्रीकृष्ण के कथानक में " रासलीला" के प्रसंग में ही कवि ने श्रृंगार चित्रण करने की चेष्टा की है । इसके अतिरिक्त "विष्णु" द्वारा वृन्दा के सतीत्वभंग करने के वृत्तान्त में कवि ने रुचि नहीं ली । इसे श्रृंगार कहा भी नहीं जा सकता, क्योंकि परस्त्री रति अनौचित्य है, जिसे रसाभास की कोटि में स्थान मिलता है । इसी प्रकार इन्द्र द्वारा अहल्या के साथ छल करने के वृत्तान्त को भी "रसाभास" ही कहा जायगा , श्रृंगार रस नहीं ।

करुण रस -
=======

विश्व साहित्य का प्रेममय भाग अधिकांशतः विरह गाथाओं से भरा पड़ा है । संयोग श्रृंगार पर वियोग श्रृंगार की अपेक्षा बहुत ही कम लिखा गया है । वियोग का सम्बन्ध करुणापूर्ण दुःखात्मक भावनाओं से है और उसमें अनुभूतियाँ तीव्र हो जाती है तथा सहानुभूति में व्यापकता आ जाती है । कदाचित इसीलिए महाकवि भवभूति ने "एको रसो करुण एव निमित्त भेदात्" कह दिया । तात्पर्य यह है कि करुण रस ही प्रधान रस है तथा दूसरे रस इसी भेद के निमित्त आते हैं। आचार्यप्रवर कविराज विश्वनाथ का विचार है कि रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं[1] । अतः काव्य में रस की स्थिति अनिवार्य है । महाकाव्य रामायण का अंगी (प्रधान) रस करुण है ध्वन्यालोककार ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है- "रामायणे हि करुणो रसः ।" एक समय जब महर्षि वाल्मीकि क्रौंचयुगल से एक को व्याध के द्वारा मारे जाने पर [illegible] को विलाप करते देखते हैं तो उनके हृदय से कारुणिक भाव सहसा ही इस प्रकार निकल पड़ते हैं -

"मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।"

- -

1- वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद ।

अर्थात् रे व्याध । तू कदापि प्रतिष्ठा न प्राप्त कर, क्योंकि तूने क्रौञ्चयुग्म में से काममोहित एक को मार दिया है ।

महर्षि वाल्मीकि का यही शोक श्लोक के रूप में परिणत हो जाता है-

"शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ।"

और वे विचार करने लगते हैं -

पादबद्धोऽक्षरसमः तन्त्रीलयसमन्वितः ।

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ।।

अर्थात् चार चरणों से युक्त, समान अक्षरों वाला, तन्त्रीलय से समन्वित मुझ शोकार्त के द्वारा कथित ये वाक्य श्लोक (काव्य) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

यह करुण रस ही रामायण की आत्मा है। कवि के आदिकाव्य रामायण के इस करुण रस को हम आदिरस कह सकते हैं, क्योंकि लौकिक संस्कृत-साहित्य में सर्वप्रथम इसी रस को प्रधानता प्राप्त हुई है । ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन तो करुण रस की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखते हैं[1]। यथा -

"काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।

क्रौञ्चद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।"

विश्रामसागर के 'इतिहासायन खण्ड' में सुवर्ती कथा में पिता के मरने पर सुवर्ती विविध प्रकार से विलाप करती है। यथा -

मोको अकिंचित को गयो, जहाँ पिता परवीन ।

दयावन्त सब भाँति तुम, मैं कन्या अतिदीन ।।[2]

यहाँ पर पिता की मृत्यु पर पुत्री के शोक की मार्मिक व्यंजना हुई है । दिवंगत पिता "आलंबन" कन्या "आश्रय" और स्मृति संचारी की व्यंजना उत्कृष्ट है ।

1- संस्कृत साहित्य का इतिहास- प्रो० शिवबालक द्विवेदी पृ० -7

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 13, पृ० 117

अब हत रक्षक कौन हमारा । मात पिता भ्राती नहिं प्यारा ।

हाय हाय मैं का कृम कीन्हा । ऐसा दुःख दैव मोहिं दीन्हा ।।

पिता ही कन्या का वास्तविक आश्रय होता है । "पिता रक्षति कौमारे" यह उक्ति प्रमाण है । निराश्रित की करुणव्यथा का यह चित्रण अपने में महत्वपूर्ण लगता है ।

जरौं अग्नि कौ जल मैं बहिहौं । की चढ़ि गिरि गिरि महि मरि रहौं ।

पटकै दोउ कर सिर भुवि माहीं । बिन पितु मा मम जीवन नाहीं ।।

सुनि कन्या का रोदन भारी । उठि दौरि भूप कुल नारी ।।[1]

असहाय होने पर "आत्महत्या" की भी प्रेरणा मिलती है । करुणा का वेग निराशा की तीव्रता मे उद्दामगति को प्राप्त कर लेता है । यहाँ पर भी यही स्थिति अवलोकनीय है । चिन्ता, निर्वेद, ग्लानि, त्रास, जड़तादि संचारी दर्शनीय है ।

रामायण खण्ड पुत्रियों की विदाई में सभी सखियाँ राजकुमारियों को करुण उपदेश दे रही हैं यथा -

सासु श्वसुर गुरुदेव, प्रभुर सखा अनन्य हित ।

करेहु सुमति की सेव, अस कहि लिहिनि लगाई उर ।।[2]

पुत्री की विदा के समय करुणा विमण्डित मातायें पुत्रियों को जो उपदेश देती हैं, उनके शब्दों में जो वेदना का तीव्र ज्वार उमड़ता है, उसके दर्शन इस प्रसंग में कराकर कवि ने "कालिदास" के "अभिज्ञानशाकुन्तल" में वर्णित उपदेश का स्मरण करा दिया है । महर्षि कण्व से भी अधिक इनकी करुणा में आर्द्रता है ।[3]

- -

1- विश्रामसागर, हरिहरायन खण्ड, अध्याय- 13 पृ0 118

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 13 पृ0 820

3- अभिज्ञान शाकुन्तल, 4 अंक (कालिदास)

सुनि धुनि इहाँ दासपान्चिन की को करै बखाना ।
सुआ कहै मेरी महतारी । लीजै सुधि लखि दीन हमारी ।।
सुनि महि मातु गिरी मुरझाई । दौरि जनि टेकिनि समुझाई ।
शुक सारिक के पिंजर भीरा । हाय सिया कहि तजैं शरीरा ।।[1]

सीता की विदा के समय माताओं और पक्षियों की इस करुणा में "भवभूति" की छाया की प्रतीति होती है -

अपि रोदिति ग्रावा दलत्यपि वज्रस्यहृदयम् ।। (उत्तररा०)

मानव जीवन का पशुपक्षियों के साथ जो पारिवारिक स्नेह हो जाता है, वह अत्यन्त प्रगाढ़ करुणा का उद्रेक करता है । "मानस" में सीता की विदाई का दृश्य ऐसा ही करुण है ।

जनकहि देखि मिलनी लपटाई । है अधीर धरि धीर छुड़ाई ।
मन्मिन दिव्य विमान सजाए । मनहु महिप गृह अपर सुहाए ।।

पिता का हृदय पुत्री की विदाई में फूट - फूट पड़ता है । जनक जैसे पिता का भी विह्वल हो जाना पुत्री के प्रेम की पराकाष्ठा है, पुन: उन्हें धैर्य धारण करना उनके ज्ञान की भी मर्यादा की सुरक्षा करना है ।

रामायण खण्ड में दशरथ का निधन में रानियाँ , दास, दासियाँ और पुरजन का विलाप दृष्टव्य है -

लखि लागीं रोदन करन, गुण बल तेज बखानि ।।
विलपहिं दासी दास सब, पुरजन परिजन जानि ।।[2]

यहाँ "दशरथ" आलम्बन, दासी दास पुरजन रानियाँ " आश्रय" है । इनका रुदन "अनुभाव" और दशरथ का मृत शरीर उद्दीपन है । इस प्रकार यहाँ "करुण" रस का सम्यक परिपाक हुआ है ।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय-11 पृ0 821

2- वही, वही, " - 14, पृ0 865

इसी प्रकार भरत का विलाप अवलोकनीय है -

हा पितु स्वर्ग लागि प्रिय तोही । रामहिं सौंपि गयउ किन मोही ।
हा सिय राम लखन मम पाछे । सहिहैं दुख वन मुनिपट काछे ।।[1]

यहाँ पर "भरत" आश्रय है, "दशरथ का मृत शरीर " आलम्बन है । भरत के विलाप वचन "अनुभाव" हैं, निर्वेद, ग्लानि, जड़ता, दैन्यादि संचारी भाव हैं। "शोक" की तीव्र व्यंजना करने में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । भरत जैसे धर्मात्मा पुत्र का पिता की मृत्यु पर इतना गहरा दुःख प्रकट करना उचित ही है।

भूप रूप गुन शील बखानी । रोवहिं सकल विकल नृपरानी ।
रामहिं देखि अधिक उरदाहा । हाय राम विधि कीन्हें काहा ।
सुर नर मुनि सब भये दुखारी । नृप विदेह की दशा निहारी ।।[2]

चित्रकूट में भरत के साथ सभी मातायें भी आती है, राम को देखते ही उनकी करुणा का वेग और अधिक बढ़ जाता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है । 'विदेह' जैसे ज्ञानी भी करुणा के सागर को पार नहीं कर पाते । इस प्रकार समस्त सभा में करुणा का यह उद्गम व्याप्त हो जाता है । सीता-हरण में सीता का विलाप दृष्टव्य है -

गगन जात रथ विलपति सीता । हा रघुपति हा नाथ पुनीता ।
हा करुणाकर हा रणधीरा । आरत हरण हरहु मम पीरा ।
हा अतिसिन्धु लखन सुखदाई । यही तात गोमट कट गाई ।।
कहे वचन कटु रेख मेटाई । सो दंड हिय करि स्वहिं लेहु छनाई ।।[3]

यहाँ पर "सीता" आश्रय है, "राम" आलम्बन हैं, सीता का विलाप अनुभाव है राम के करुण स्वभाव का स्मरण लक्ष्मण की बल शालिता उद्दीपन है । ग्लानि,

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 14, पृ0 868
2- वही, वही, " - 16, पृ0 893
3- वही, वही, " - 18, पृ0 929

निर्वेद,,शंका, जड़ता, दैन्य आदि संचारीभाव है । इस प्रकार "करुण रस" की सफल व्यंजना हुई है । आत्मग्लानि और पश्चात्ताप के योग से इस प्रसंग में और अधिक प्रभविष्णुता आ गई है ।

लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार -

अब मेघनाद द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार किया जाता है, तब राम का करुण-विलाप चित्रित करता हुआ कवि कहता है -

हा ईश जगत नदीश में इक पोत तैं विरचा रहै ।
पट भक्ति भायप मित्र गुननि बहाय अब बोरा चहै ।।

यहाँ पर श्री राम अपने बन्धु लक्ष्मण की बन्धुता, भक्ति भावना मैत्री आदि की विशेषताओं का स्मरण करके रुदन करते हैं । "राम" आश्रय, लक्ष्मण "आलम्बन" रामद्वारा विलाप करना अनुभाव और संज्ञा हीनलक्ष्मण का शरीर उद्दीपन है ।

हा तात तजि पितु मातु वन मम विपति आय बटायहु ।
तिन साथ हौं सुरलोक लौं हँसि प्राण नहिं पठायहु ।
किम कर्म मित्र करतूति से तुम तात सब सुकृति जये ।
मैं राखि तुम बिन देह दीरघ लादि शिर अपजश लये ।।

यहाँ पर "राम" अपने विपत्ति के साथी लक्ष्मण के त्याग पर रुदन करते हैं । उन्हें आत्मग्लानि है कि मैं ऐसी विपत्ति में जीवित हूँ । वे उनके सत्कर्मों की प्रशंसा करते हैं । यहाँ पर भी "राम" आश्रय है, लक्ष्मण "आलम्बन", है । राम की ग्लानि, निर्वेद,लज्जा , चिन्तादि संचारी भाव है और लक्ष्मण का मूक शरीर तथा भविष्य की चिन्ता "उद्दीपन" है ।

अस समुझि कठोरता मम हृदय से कुलिशी भई ।
जो समुझि आप सनेह तुरते दरकि दरक न ह्वै गई ।
पितु मरण भामिनि हरण खग वध रविन भुजा गँवायहु ।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 26, पृ0 1028

सब भाँति अपने वंश शुचि में कालिमा मैं लायउँ[1] ।।

यहाँ राम अपनी कठोरता पर आत्मग्लानि का तीव्र अनुभव करते है । विपत्ति पर विपत्ति आयी हैं । पिता की मृत्यु, सीता का अपहरण, जटायु का मरण और लक्ष्मण का वक्ष प्रहार, ऐसी विषम परिस्थिति में सीता हीन होना, ये सभी उत्तरोत्तर हृदय विदारक दुःख हैं, फिर भी राम का हृदय वज्र से भी कठोर है, अतः ग्लानि और व्यथा का भाव होना स्वाभाविक है । इन सबसे करुण रस की तीव्र व्यंजना करने में कवि को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

सुख का आनन्द -रूप में भासित होना कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है । इसी लिए जितने सुखात्मक स्थायीभाव है उनकी रसरूपता सहज सिद्ध है, किन्तु जो शोकात्मक या दुखात्मक स्थायीभाव है, उनकी रस रूप में उपलब्धि साहित्य जगत् में निश्चय ही महान् उपलब्धि है । दुखात्मक स्थायीभावों में 'शोक' का स्थायी भाव सबसे महान माना जाता है । इसीलिए करुण रस को सर्वश्रेष्ठ रस माना जाता है । अन्य रस इसकी अपेक्षा हेय ही समझे जाते हैं ।

जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी रूप में करुण का विवर्त न हो । जीवन का सबसे मधुर पक्ष 'रति' माना जाता है, किन्तु तीव्र रति भी किस प्रकार जीवन में करुण का कारण बनती है । भवभूति अपने नाटक में यह बात अच्छी तरह से सिद्ध कर चुके हैं । इसी प्रकार हास्य भी करुणा का ही विवर्त है । प्रत्येक हास्य के मूल में कोई न कोई विडम्बना, व्यतिक्रम या अव्यवस्था रहती है । यह विडम्बना व्यतिक्रम या अव्यवस्था करुणाजन्य होती है । अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि हास्य भी करुणा का ही विवर्त है । इसी प्रकार अन्य सभी रस करुणा का ही विवर्त सिद्ध किए जा सकते हैं । तभी तो भवभूति ने निर्भीकता से घोषणा की थी - एकोरसः करुण एव[2] ।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 26, पृ0 1029

2- नवीन साहित्यिक निबन्ध - डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत, पृ0 155

रौद्र रस-

शत्रु द्वारा अपने अपमान, गुरु- निन्दा अथवा देश निन्दा आदि से उत्पन्न क्रोध पुष्ट होकर रौद्र रस की व्यञ्जना करता है । "रौद्र" शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -

रुद्रस्य भावः रौद्रम् । "रुद्र" शंकर जी का एक नाम है । पौराणिक मतानुसार विष्णु, सत्वगुण के, ब्रह्मा, रजोगुण, के और महेश, तमोगुण के देवता हैं[1] । "तमोगुण" में क्रोध का प्राधान्य होता है, अतः रौद्र रस का स्थायी भाव "क्रोध" कहलाता है । नीतिज्ञों ने काम, क्रोध और लोभ को अनियन्त्रक माना है[2] । इसी हेतु काम और लोभ के द्वारा निष्पन्न होने पर "श्रृंगार" रसराज कहलाया और "क्रोध" से निष्पन्न होने पर "रौद्र" एक प्रबल रस माना गया । उक्त भावों में "रौद्र" की उग्रता तो लोक सिद्ध है ही, परन्तु काव्य में वह भी आनन्दात्मक हो जाता है । साधारणीकरण होने पर उसका सत्वभाव रह जाता है और उग्रता दोष की समाप्ति हो जाती है । इसे इस प्रकार समझना चाहिए कि जैसे मिट्टी का तेल शुद्ध कर लेने पर अपनी दुर्गन्ध का परित्याग कर देता है और "स्प्रिट" के रूप में वह रूप और गुण में बिल्कुल भिन्न हो जाता है, वैसे ही "रौद्र" भाव भी रस दशा में लौकिक "रौद्र" से बिल्कुल भिन्न होकर अलौकिक आनन्द का विधायक बन जाता है ।

इस रस के अंग इस प्रकार होते हैं :-

विभाव - मत्सर अथवा वैरी के द्वारा किये गए अपकार आदि कारण ।

स्थायी भाव - क्रोध

- -

1- रजोजुषे जननि सत्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे ।
अजाय सर्ग स्थिति नाश हेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।। [कादम्बरी भूमिका]

2- काम क्रोध अरु लोभ की जबलौं मन में खान ।
तब लगि पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान ।। [तुलसी]

अनुभाव- शस्त्र को बार बार चमकाना, बड़ी डींगे मारना , भूमि पर चोट करना , प्रतिज्ञा आदि । संचारी - अमर्ष, मद, स्मृति,चपलता, असूया, उग्रता वेगादि ।

क्रोधो मत्सर वैरि वैकृत मयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः ।
क्षोभः स्वाधर दंश कम्प भ्रुकुटि स्वेदास्य रागैर्युतः ।
शस्त्रोल्लास विकत्थनांसधरणीघात प्रतिज्ञाग्रहै -
रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलताऽसूयौग्र्यवेगादयः ।।

दीपक, 4 उल्लास
श्लोक- 74

अर्थात् मत्सर, वैरी के द्वारा किये गए अपकार आदि कारणों (विभावों) से क्रोध उत्पन्न होता है । इसी क्रोध स्थायी भाव का परिपोष रौद्र रस है, जिसका साथी "क्षोभ" है । शस्त्र को बारबार चमकाना, बड़ी डींगे मारना, ज़मीन पर चोट मारना, प्रतिज्ञा करना आदि इसके अनुभाव है । रौद्र रस में अमर्ष मद, स्मृति, चपलता, असूया, उग्रता , वेग आदि संचारी भाव पाये जाते हैं । कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं यथा -

नाथ जनक अति अनुचित भाखी । काहु की कछु कानि न राखी ।
त्यहिके जो तव आयसु पावौं । तो उनको वीरता देखावौं ।।

यहाँ पर "लक्ष्मण" द्वारा जनक की कटुवाणी पर क्रुद्ध होना " रौद्र" रस का उदाहरण है । लक्ष्मण आश्रय है, जनक " आलम्बन, जनक के वचन "उद्दीपन" लक्ष्मण की तीव्रता "अनुभाव और अमर्ष, वेग तथा उग्रता संचारी भाव है ।

रे बालक मतिमन्द मोहि तू मान सिखावत ।
तव अनुचित की सरिस शम्भु कोदण्ड कतावत ।।
सहित राम सिय तोरि कैदि बन माहि जुरैहौं ।
नृप दशरथै मारि सकल पुरजनहिं रोवैहौं ।।

यहाँ "परशुराम" आश्रय, लक्ष्मण" आलम्बन" लक्ष्मण के कटुवचन "उद्दीपन" परशुराम की उत्तेजना "अनुभाव और वेग,उग्रता , अमर्ष आदि संचारी भाव है । चित्रकूट में जब भरत राम को मनाने आते हैं, तब लक्ष्मण शंकित तथा उन्हें मारक समझकर कहते हैं -

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 7 पृ0 777

भरतहिं आयु लखन्हु प्रचारी । नाथ समय रण अरिहौं मारी ।
अति अपमान रजहिं नहिं सोहैं । हम नृपतनय करायुध सोहैं ।।[1]

यहाँ "लक्ष्मण" आश्रय, सखन्हुभरत "आलम्बन" लक्ष्मण की कटुवाणी "अनुभाव" और भरत का आश्रम के समीप पहुँचना, राम और लक्ष्मण का वन में एकाकी और असहाय होना उद्दीपन है । स्वाभिमान जन्य मद, उग्रता, वेगादि संचारी भाव है । इनसे परिपुष्ट "रौद्र" रस की सफल व्यंजना हुई है ।

वीर रस -

धनंजय[2] ने "वीर" तीन प्रकार के माने हैं, पर अन्य आचार्यों की मान्यता इस प्रकार है - उत्साह नामक स्थायी भाव पुष्ट और परिपक्व होकर वीर रस की अभिव्यक्ति करता है और, जैसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है - जिन कर्मों में किसी प्रकार का कष्ट या हानि सहने का साहस अपेक्षित होता है, उन सबके प्रति उत्कण्ठा - पूर्ण आनन्द उत्साह के अन्तर्गत लिया जाता है ।" यह उत्साह, युद्ध, दान धर्म और दया किसी भी क्षेत्र के अन्तर्गत हो सकता है । इसी आधार पर वीर के चार मुख्य भेद किये गए हैं -

1- युद्धवीर 2- दानवीर 3- धर्मवीर 4- दयावीर ।

वीर रस की अभिव्यंजना के उपकरण इस प्रकार हैं - क- स्थायी भाव - उत्साह
आलम्बन विभाव - शत्रु , दीन दुखी, याचक, तीर्थ स्थान, धर्म निष्ठा आदि
उद्दीपन विभाव - शत्रु की शक्ति प्रभाव और अहंकार , सेना का कोलाहल, रण, वाद्य आदि ।
अनुभाव - अपनी वीरता का कथन, बाँह फड़कना, प्रहार करना, कम्प, रोमांच, कार्य की सिद्धि के लिए सतत प्रयास, मुस्कुराहट, धर्मानुकूल आचरण आदि ।
संचारी भाव -
आवेग, मति, उग्रता, गर्व, अमर्ष, धृति, हर्ष आदि । यद्यपि

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 75, पृ0 885
2- वीर-प्रताप विनयाध्यवसाय सत्त्व मोहा विषाद नय विस्मय विक्रमाद्यैः।
उत्साहभूः स च दयारण दान योगात्त्रेधा किलात्र मति गर्वधृति प्रहर्षाः।।
धनंजय[दशरूपक,4 प्रकाश, श्लोक,72]

विश्रामसागर एक भक्ति प्रधान ग्रन्थ है तथापि प्रसंगों के अनुसार रामायण खण्ड एवं 'कृष्णायन' खण्ड में वीररस के अनेकों उदाहरण हैं। कुछ कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है यथा -

> भुजगर धुन भुशुण्ड सुहाई । पुनि कृपाण से मची लराई ।
>
> कोटिन मुण्ड धरणि पर गिरहीं । धक धक करि कबन्ध बहु फिरहीं ॥[1]

यहाँ पर "रुक्मिणी हरण" के प्रसंग में युद्ध का सजीव वर्णन किया गया है। यहाँ कृष्ण की युद्ध वीरता का उल्लेख हुआ है, जिसके प्रसार से रण भूमि का उक्त भयं कर दृश्य उपस्थित हो गया।

> आगे बढ़ि कृष्णहि ललकारा । जात कहाँ करि विघ्न हमारा ।
>
> रहुगौ अहिंकि कदरन के बीचा । जानहु आयु आपनी नीचा ॥[2]

यहाँ पर "रुक्मि" आश्रय, कृष्ण "आलम्बन" रुक्मि द्वारा कृष्ण को ललकारना "अनुभाव और कृष्ण द्वारा उसकी भगिनी रुक्मिणी को लेकर स्वयंवर में विघ्न कर देना "उद्दीपन" गर्व, धृति, प्रहर्ष संचारी भाव है, जिनसे वीर रस की पुष्टि हुई है।

> धावा विपुल से नीच कीचहि राम बिन फर शर हयो ।
>
> शत योजनाग्र विदारि कारज पार सागर के गयो ।
>
> पुनि अग्नि अस्त्र सुबाहु जारयो लषण सब सेना हनी ।
>
> हरषे सकल सुर सन्त वरषि प्रसून कहि रघुकुल मनी ॥[3]

यहाँ पर "राम और मारीच" के मध्य हुए युद्ध के प्रसंग में "वीर रस" की व्यंजना हुई है। राम "आश्रय" हैं, मारीच, सुबाहु आलम्बन है, राम द्वारा वाण प्रहार करना "अनुभाव है, सुबाहु द्वारा सेना लेकर युद्ध करना उद्दीपन

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 12, पृ0 649

2- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 12, पृ0 650

3- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 7, पृ0 756

है गर्व, धृति , प्रहर्ष संचारीभाव हैं, इनसे वीर रस के स्थायी भाव "उत्साह" की पुष्टि हुई है और "वीररस" अपने उत्कृष्टत्व में अभिव्यक्त हुआ है ।

अति पीन परम विशाल कर गिरि विटप धृत पंकज मनौं ।
मुख विकट लोचन पिंग जिन्हें विलोकि भय कालहु लहैं ।
इक मारत भुजा उखारत अरिदल हाँकि सागर तोपई ।
तेहि दीप देखत तातिह जो तेहि हेत तनको कोपई ।।[1]

यहाँ पर हनुमान के भीषण रूप के साथ ही उनके युद्ध का मार्मिक चित्रण किया गया है । "उत्साह" स्थायी भाव के सहयोगी धृति , प्रहर्ष आदि संचारी भाव है । यहाँ हनुमान "आश्रय" अरिदल "आलम्बन" शत्रु संहार "उद्दीपन" हैं । वस्तुतः यहाँ कवि ने हनुमान जी की वीरता दिखाने में बड़ी सतर्कता और बुद्धि मत्ता से काम लिया है ।

इसी प्रकार "परशुराम प्रकरण" के प्रारम्भ में जहाँ जनक से प्रश्न किया जाता है और राम उत्तर देते हैं, उस स्थल पर भी "वीररस " है, किन्तु लक्ष्मण से सम्वाद होने पर "रौद्र" का प्रवेश हो गया है ।

रे मर्कट मम चरित, कहै को दुष्ट अनारी ।
सो कहु को तव पिता, बालि कपिनाथ बिचारी ।
रहा रहा कपि रहा, भले कहु है सो नीके ।
कछु दिन में तहँ जात कुशल पूछत्यो निज प्रीके ।
राम विमुख कर कौन फल, होत सो सब नीके पढ़ी ।
जानि बूझि बातैं गढ़त, रहत मौत तव शिर चढ़ी ।।[2]

यहाँ रावण अंगद सम्वाद में "रावण" आश्रय "अंगद" आलम्बन, रावण की दर्प पूर्ण उक्ति "अनुभाव" एवं अंगद का प्रत्युत्तर "उद्दीपन" विभाव है । ग्लानि, अमर्ष, गर्व आदि संचारीभाव हैं, जिनसे वीर रस का सफल परिपाक हुआ है ।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 23, पृ0 990
2- वही, वही, अध्याय-25 , पृ0 1014

इस प्रकार "विश्रामसागर" शान्त रस का ग्रन्थ होने पर भी वीर रस के प्रयोगों से सम्बलित है । इसमें धर्मवीर "हरिश्चन्द्र" का भी उदाहरण उपस्थित है । वास्तविक बात यह है कि शान्ति रस का कवि "वीर रस " जैसे उत्तेजक विषय में कहाँ तक रुचि ले सकता है, फिर भी जहाँ तक उसके आराध्य की वीरता का सम्बन्ध है, वहाँ तक उसने इस क्षेत्र में पर्याप्त लिखने की चेष्टा की है ।

भयानक रस -

भय प्रद या अनिष्टकारी वस्तु अथवा व्यक्ति को देखने , सुनने या स्मरण रखने से चित्त में जो व्याकुलता उत्पन्न होती है उसे भय कहते हैं । यह 'भय' भाव पुष्ट होकर भयानक रस की निष्पत्ति करता है। इसके संयोजन में निम्नलिखित उपकरण माने जाते हैं - स्थायी भाव - भय । आलम्बन विभाव अनिष्टकारी व्यक्ति, भय प्रद व्यक्ति जीव जन्तु अथवा दृश्य, भूत,प्रेत, चोर डाकू आदि । उद्दीपन विभाव - अन्धकार , सुनसान स्थान, आदि अनुभाव कम्प, रोमांच आदि संचारी भाव - शंका, आवेग, दैन्य, आदि । धनंजय का मत भी ऐसा है[1] । भयानक रस के "विश्रामसागर" के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

गाढ़ गढ़ाढ़ाख्यो उम्भ फाट्यो बरराय,
निकस्यो नरनाहर को रूप अति भयानो है ।
कटट कटकटावे दाढ़ै दशन लपलपावे जीभ ।
अधर फरफरावे मोछ क्रोध व्याप्यो मानो है ।
भभरि भभराने लोग उचरि उर परानै धाम,
थहरि थरथराने अंग चित्ते चाहत आनो है ।
कहत रघुनाथ कोपि गर्जे नरसिंह जबे ।
प्रलय को पयोधि मानो तड़पि तड़ाड़ानो है[2]।।

1- विकृतस्वर सत्वादे र्भयभावो भयानकः ।
सर्वांग वेपथुस्वेदशोष वैचित्र्य लक्षणः ।।
दैन्य सम्भ्रम सम्मोह त्रासादिस्तत् सहोदरः।। } दशरूपक,4/80 धनंजय

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 26, पृ0 248

यहाँ पर नृसिंह भगवान् के कोप करने पर "भयानक रस का सुन्दर परिपाक हुआ है । नृसिंह आलम्बन, लोग" आश्रय" नृसिंह का दाँत कटकटाना आदि क्रिया-कलाप "उद्दीपन" लोगों का डर कर भागना, काँपना आदि "अनुभाव" और शंका, जड़ता त्रास आदि संचारी भाव है । रसोपयुक्त शब्दावली भी अत्यन्त सराहनीय है ।

दिग्गज गिरत भिरत नभ लागे । सुर विमान रवि चलत न आगे ।
धरिणी भीड़ भगि सकल भुआरा । जनक हृदय सुख भयो अपारा ।।

यहाँ पर लक्ष्मण द्वारा कोप करने पर संसार भर में "भय" के संचार का उल्लेख किया गया है । अतः लक्ष्मण "आलम्बन" दिग्गज , सुर आदि "आश्रय" दिग्गजों का आपस में भिड़ जाना देवों के विमानों और रवि के रथ का रुक जाना आदि अनुभाव, लक्ष्मण के क्रोध युक्त वचन उद्दीपन, त्रास सम्मोह आदि संचारी भाव है, अतः "भयानक रस" की व्यंजना हुई है ।

अनेक बाल बाल की पुकारत मात बोलहीं ।
बचाय लीजिए हमें सबै समान डोलहीं ।
अनेक नारि मारि रिस रिभ काढ़ि लावहीं ।।
अनेक हारि हारि वस्तु वारि लेन धावहीं ।।[2]

यहाँ पर "लंका दहन" के प्रसंग में लंका के बालक और स्त्रियों में "भयानक रस" का संचार दिखलाया गया है, अतः वे ही आश्रय हैं और "हनुमान" आलम्बन है । बालकों और स्त्रियों का प्राण बचाने के लिए रोना चिल्लाना "अनुभाव" त्रास, आवेग, दैन्य, आदि संचारी भाव हैं । प्राणान्तक स्थिति में "भयानक-रस का यह वर्णन अत्यन्त रोमांचक लगता है ।

भय विकल सब दिक्पाल चौदह भवन के वासी डरे ।
दशमौलि सभय विहाल पुरजन गर्भ तिनके गिरि परे ।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 8 पृ0 780
2- वही, वही, अध्याय- 22, पृ0 977

कपि भालु ठोंकहि ताल अति विकराल रद कटकट करें ।
बदि बाद कूदहिं नाद करि हरि सप्त उपरोपर परें ।।[1]

रावण के पुर में राम के सैनिकों के उपद्रव के कारण "भय" व्याप्त है । कवि ने इसकी व्यंजना करने के लिए दिग्पालों चौदह भुवनों, लंकावासियों तथा रावण को "आश्रय" कपि भालु - प्रकृति राम के सैनिकों को "आलम्बन" सैनिकों का ताल ठोंकना , कूदना, नाद करना आदि क्रियाओं को उद्दीपन" तथा त्रास, शंका, दैन्यादि को संचारी के रूप में प्रस्तुत किया है ।

हास्य रस -
=======

'विनोद' मानव - जीवन का बड़ा महत्वपूर्ण अंग है । जीवन इतना जटिल इतना विषम और इतना संघर्षपूर्ण है कि उसमें कभी कभी इतना अधिक मन ऊब उठता है कि सहिष्णु से सहिष्णु व्यक्ति उससे पलायन करना चाहता है । अथवा यों कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन का भार ग्रहण करने के लिए कुछ पाथेय चाहता है । वह पाथेय वास्तव में विनोद ही है । उसी के सहारे मानव अपनी जीवन यात्रा सरलता से पूर्ण कर पाता है । विनोद के अभाव में जीवन जीवन न रह कर जंजाल बन जाता है[2] ।

जीवन और साहित्य में हास्य के उपयोग और महत्व को अनेक स्वदेशी और विदेशी लेखकों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है डॉ० गुलाबराय ने एक स्थान पर लिखा है - जो मनुष्य अपने जीवन में कभी नहीं हँसा, उसके लिए रंभा शुक -संवाद की शब्दावली में कहना पड़ेगा - वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् । "वह मनुष्य नहीं । पुच्छविषाण-हीन द्विपद पशु है, क्यों कि हँसना मनुष्य का विशेषाधिकार है ।

हास्य के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेक उपयोगी गुणों का विकास होता है। श्री केलकर के शब्दों में - "जिस समय मनुष्य नहीं हँसता, उस समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया सीधी और शांत रीति से होती है और हँसने के समय

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 23 पृ० 990

2- नवीन साहित्यिक निबन्ध, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० 249

उसमें एकदम व्यत्यय हो जाता है । परन्तु उस व्यत्यय का परिणाम श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियाँ और शरीर के रक्त प्रवाह पर अच्छा होता है[1] । " डॉ० चतुर्वेदी ने स्पष्ट रूप में घोषित किया है कि यदि संसार के लोगों को यह बात अच्छी तरह से मालूम हो जाए कि हास्य का हमारे स्वास्थ्य पर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है , तो फिर अधिक से अधिक डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों आदि के लिए मक्खियाँ मारने को छिवा और कोई काम ही न रह जाए । हास्य वास्तव में प्रकृति की सबसे बड़ी पुष्टई है । हास्य से बढ़कर बल - वर्द्धक और उत्साह वर्द्धक और कोई चीज हो ही नहीं सकती । हास्य से ही हमारे शरीर में नवीन जीवन और नवीन बल का संचार होता है और हमारे आरोग्य की वृद्धि होती है[2] ।

हास्य प्रिय व्यक्तियों के स्वभाव में एक ओर कोमलता और सरलता आती है तो दूसरी ओर उनमें कष्ट - सहन की क्षमता का भी विकास होता है । कार्लाइल ने एक स्थान पर लिखा है - " No man who has once wholly and heartily laughed, can be altogether irreclaimably bad. In cheer--ful there is no evil. "

अर्थात जिस व्यक्ति ने एक बार सच्चे हृदय से खुलकर हँस लिया , वह कदापि अत्यन्त बुरा नहीं हो सकता । प्रसन्न चित्त व्यक्तियों के हृदय में कोई बुराई नहीं रह सकती ।

शृंगार के रस - राजत्व से आकर्षित होकर विभिन्न विद्वानों ने भी अपने अपने प्रिय रसों को इस पद का अधिकारी सिद्ध किया है,जब कि हास्य को रस राज सिद्ध करने का प्रयास बाल शिशु को सम्राट पद पर प्रतिष्ठित करने के तुल्य है । क्यों कि हास्य का संचार केवल मनुष्यों तक सीमित है, इसे तो हास्य रस के समर्थकों ने भी स्वीकार किया है । डॉ० बरसाने लाल का यह तर्क "शृंगार रस का आनन्द लेनेवाली इन्द्रियाँ पशुओं में भी पाई जाती है, लेकिन हास्य

- -

1- हिन्दी साहित्य में हास्य रस- डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त पृ० 60।

2- हिन्दी साहित्य में हास्य रस- पृ० 13

का सम्बन्ध मन से तथा बुद्धि से है।" इसके क्षेत्र की संकुचितता को सिद्ध करता है। हास्य के संचारी भावों की संख्या भी बहुत सीमित है तथा हास्य में केवल विषय वस्तु या आलम्बन से सम्बन्धित बातें ही रस संचार की क्षमता रखती हैं, शृंगार की भाँति आश्रय की नहीं।

मैं अब हास्य रस के विस्तृत विवेचन पर न जाकर मैं अपने प्रतिपाद्य विषय पर आती हूँ। विश्रामसागर एक भक्ति परक ग्रन्थ है जिसमें कि हास्य का होना नितान्त आवश्यक नहीं है, फिर भी यत्र-तत्र हास्य के कुछ पुट कवि ने अवश्य दिए हैं। कुछ कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं। यथा -

परशुराम लक्ष्मण संवाद में -

सब धनु एक समान कौन यामें अधिकाई।
छुवते टूट पुरान श्रम आरत रहे थाई॥
जो नहि प्रिय यह नाम तो लीजै अपर धराइ मुनि।
विप्रन की कछु कमी नहिं मुनि बोले भृगुनाथ मुनि॥[1]

यहाँ पर "लक्ष्मण" द्वारा परशुरामकी हँसी उड़ाने का वर्णन है। अतः "लक्ष्मण" आश्रय "परशुराम" आलम्बन, लक्ष्मण द्वारा परशुराम के लिए यह कथन कि आप अपना दूसरा नाम धरा लें "अनुभाव" है। यहाँ पर लक्ष्मण के व्यंग्य वचनोंमें चमत्कार के कारण हास्य की व्यंजना हुई है।

हँसि बोले पुनि लखन सुनहु मुनि सुभा तुम्हारा।
तुम्हें अहत को कहे अहै बस को सरतारा।
जो न एकमुख कछु करो दश शीश भँवुरा॥
ज्यहिते सब मुनि लेहि स्वादि बुलावे पूरा॥[2]

लक्ष्मण परशुराम सम्वाद में यहाँ लक्ष्मण आश्रय, परशुराम "आलम्बन" लक्ष्मण की मुस्कान भरी कटूक्तियाँ अनुभाव और ग्लानि, संचारी भाव हैं।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 8 पृ० 787

2- वही, वही, -"- 8 पृ० 788

बने पिता जो आपके, गुरु श्री विश्वामित्र ।
तौ यदपि विधि रघुनाथ तुम, कारज करौ पवित्र ।।
जनक सुता के जनक को, जनक कहत सब आहु ।
कौन कौन के जनक पै, याको करहु निबाहु ।।[1]

यहाँ पर "रामकलेवा" में जनकपुरी की स्त्रियों द्वारा राम के साथ हास -परिहास का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है, राम "आलम्बन" स्त्रियाँ" आश्रय" उनके मर्म वचन अनुभाव है ।

एक सखी बोली सुख भाई । यदपि चित्त सुत जनमे रुचि आई ।
कहौ राम कस बुका लेहु । निकट नरेश परीक्षा देहु ।
अपर वसन करद्यो निज औरा । मिले चोर तुम सब चित चोरा ।।[2]

यहाँ पर भी स्त्रियों के व्यंग्य वचनों के कारण और राम द्वारा वैसा ही उत्तर दिये जाने के कारण हास - परिहास का शिष्ट रूप प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार एकबार राम "आश्रय" तो दूसरी बार "स्त्रियाँ" आश्रय सिद्ध की गई है ।

हम नरेश सुत जनक योगीशा भयो ब्याह भावीवश दीशा ।
कहौ राजकुमार कहाये । पायो बृथे बृथे उपजाये ।।[3]

यहाँ पर राम पक्ष से हास्य की सृष्टि की गई है, अतः "राम" आश्रय, जनकपुर की स्त्रियाँ आलम्बन और राम पक्ष के गूढ़ वचन "अनुभाव की श्रेणी में आते हैं।

कहेउ शत्रुहन सत्य पर, तुमहुँ कुमारी आहु ।
तुम कहँ पायो आन यह, को कोउ करि उछाहु ।।[4]

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 10 पृ० 810
2- वही, वही, अध्याय- 10 पृ० 812
3- वही, वही, अध्याय- 10 पृ० 813
4- वही वही, अध्याय- 10 पृ० 814

यहाँ पर " शत्रुघ्न" आश्रय और जनकपुरी की कुमारियाँ आलम्बन हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि "विश्रामसागर" में हास्य रस की अधिक गुंजाइश नहीं। चूंकि यह एक भक्ति प्रधान ग्रन्थ है, अतः इसमें हास्य रस यत्र-तत्र बहुत ही अल्प मात्रा में पाया जाता है ।

अद्भुत रस -
=======

किसी असाधारण अथवा विचित्र वस्तु को देखकर उत्पन्न हुआ विस्मय का भाव परिपक्व होकर अद्भुत रस की व्यञ्जना करता है । महाकवि देव ने अद्भुत रस का लक्षण इस प्रकार कहा है - आश्चर्य देखे सुने , विस्मय बाढ़त चित्त ।
अद्भुत रस विस्मय बढ़े, अचल सचकित निमित्त ।।[1]

-- शब्दरसायन ।

'अद्भुत रस' की अभिव्यञ्जना के विभिन्न उपकरण इस भाँति है - स्थायी भाव- विस्मय अथवा कौतूहल पूर्ण आश्चर्य । आलम्बन विभाव - अलौकिक वस्तु अथवा कार्य, विचित्र दृश्य, असाधारण व्यक्ति आदि । उद्दीपन विभाव - आश्रय को देखना या उसके विषय में सुनना आदि अनुभाव - दाँतों तले अँगुली दबाना, आँखे फाड़कर देखना आदि संचारी भाव - औत्सुक्य, आवेग, जड़ता हर्ष आदि । विश्रामसागर में कवि ने कई स्थलों पर अद्भुत रस का चित्रण किया है यथा -

शशि मुख छविसीवा विम्बुकग्रीवा अधर अरुण शुक नासा ।
नव अम्बुज लोचन रिपु मद मोचन रद कपोल छवि हासा ।
भूषण मणिमाला उर बनमाला भाल तिलक उर भारी ।
श्रुति कुंडल लोला मुकुट अमोला भृकुटी धनु अनुहारी ।।[2]

यहाँ पर भगवान के अद्भुत रूप का दृश्य अंकित किया गया है, अतः "हरि" आलम्बन दर्शक आश्रय हरि की अंग- प्रत्यंग की सुन्दरता" उद्दीपन" हर्ष ,औत्सुक्य

- -

1- शब्द शक्ति, रस एवं अलंकार डॉ0 ताराचन्द्र शर्मा, पृ0 47

2- विश्रामसागर, अतिहासायन अंक, अध्याय- 27, पृ0 260

आदि संचारी भाव है । भगवान के अलौकिक रूप का वैचित्र्य ही "अद्भुत" रस का मूल चित्रित किया गया है ।

पद पताल शिर ब्रह्मधाम, अपर लोक है अंग नाम ।
नयन दिवाकर दिशा कान, अश्विनी कुमार नासा सुजान ।
घन केश अम्बुपति जीह जानु , निशि दिन निमेष आनन कृशानु ।
दिगपाल बाहु हैं पवन श्वास, रोमावलि विटप लघु है दीर्घ वास ।।[1]

यहाँ पर भी "राम" को निर्गुण ब्रह्म के अलौकिक महत्व के साथ संयुक्त किया गया है और "विस्मय" को चरम सीमा तक पहुँचाकर "अद्भुत" का परिपाक किया गया है ।

तहँ रहत हैं हरिराय । ऐश्वर्य कछु कहौं गाय ।
जेहि राज सब ब्रह्माण्ड । चौदह भुवन नवखण्ड ।
वैकुंठ मधु साजीत । चाकर सकल सुरमीत ।
चौरचि जासु देवान । है फौजदार ईशान ।
मातंग यसु दिगपाल । पानी भी धनमाल ।
कोतवाल हैं यमराज । नक्षत्र मानहुँ बाज ।
मुस्तौफि चित्रगुप्त । लाम्बोदर मुंशी मित्र ।
पुरदेव कानीगोह । बोजीर अक्किल गोह ।।[2]

इस प्रसंग में कवि ने वैकुण्ठ के वैचित्र्य का चित्रण किया है । सम्पूर्ण देवों का भृत्य के रूप में उपस्थित रहना, ब्रह्मा का दीवान के रूप में , शंकर का सेनापति के रूप में ,दिक्पालों को दिग्गजों के रूप में, घनों को जलभरक के रूप में, यमराज को कोतवाल के रूप में इसी प्रकार नक्षत्रों , चित्रगुप्तों, गणेश आदि कों को भी भिन्न - भिन्न भृत्यों के रूप में अंकित किया गया है अतः अद्भुत" रस का परिपाक प्रशंसनीय है ।

बिम्बाधर वर वदन रदन दमकैं घने ।
भृकुटी कुटिल कपोल गोल गह्वर बने ।

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 23, पृ0 207
2- वही, वही, अध्याय- 15, पृ0 139

कम्बु कंठ कल वचन विशाल को सुभ लसे ।
उर मोतिन की माल मनहुँ घन में बसे ।।[1]

यहाँ पर भी भगवान के अलौकिक रूप की व्यंजना करने के लिए उनके विभिन्न अंगों का आलंकारिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है । अत: "विस्मय" स्थायी-भाव , भगवान "आलम्बन" दर्शक" आश्रय" के अंगों की सुन्दरता "उद्दीपन" दर्शकों का मुग्ध होना अनुभाव और हर्ष, संचारी भाव है । इस प्रकार "अद्भुत" रस की सफल व्यंजना हुई है । इसी प्रकार निम्नलिखित छंद में भी "विराट" के अद्भुत रूप का चित्रण किया गया है अत: अद्भुत रस की व्यंजना करने में कवि की सफलता असंदिग्ध है ।

साढ़े तीन कोटि अनु बारा । कच कच प्रति ब्रह्माण्ड निहारा ।
अण्ड अण्ड प्रति आन विधाता । अपर विष्णु शिव सुर दिशि भ्राता ।[2]

वस्तु, "विस्मय" एक ऐसा भाव है, जो भक्त कवियों के लिए ईश्वर पर ही केन्द्रित रहता है ।अलौकिक वस्तुओं में उन्हें विस्मय नहीं हुआ करता, फलत: "विश्रामसागर" के कवि ने "राम" "कृष्ण" विष्णु, वैकुण्ठ आदि के वर्णन में अथवा उनसे सम्बद्ध पात्रों के वर्णन में ही "अद्भुत रस" का परिपाक प्रस्तुत किया है । लोक के चमत्कारों की ओर उनकी दृष्टि नहीं थी ।

वीभत्स रस -

अत्यन्त अरुचिकर और ग्लानि उत्पन्न करने वाली वस्तुओं, जैसे माँस, रुधिर, मल,पीव आदि को देखकर या उनके विषय में सुनकर हृदय में , घृणा या जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होता है, वही पुष्ट होकर वीभत्स रस की अभिव्यंजना करता है । महाकवि देव ने वीभत्स रस का लक्षण इस प्रकार दिया

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 3, पृ0 700
2- वही, वही, अध्याय- 4, पृ0 714

है -

वस्तु घिनौनी देखि सुनि, घिन उपजै जिय माँहि ।[1]
घिन बाढ़ैं वीभत्स रस, चित की रुचि मिटि जाहि ॥ -शब्दरसायन,

वीभत्स से वैराग्य का भाव उत्पन्न होता है, इसीलिए यह कभी कभी शांत रस का सहायक हो जाता है । इस रस के अन्तर्गत केवल आलम्बन का वर्णन होता है, आम तौर से आश्रय की भावाभिव्यंजक चेष्टाओं का चित्रण नहीं होता ।

विश्रामसागर के वीभत्स रस के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं यथा -

कोउ परे कहरत घायवश कोउ शीश बिन जहँ तहँ फिरैं ।
कोउ भाक मारु पुकार कोउ एक बाण लागत महि गिरैं ॥[2]

यहाँ पर युद्ध वर्णन में वीरों की घाव की पीड़ा, उनका कराहना, कबन्धों का इधर - उधर चलना, मारकाट की ध्वनि की उक्ति, वीरों का कटकर गिरना ये सभी दृश्य "वीभत्स" के द्योतक हैं ।

गृध्र गीध गोमायु कलोलैं । डाकिनि भूत कपाली डोलैं ।
हनि दल दलि प्रभु मथुरहि आए । मागध सूत विजय गुण गाए ॥[3]

यहाँ श्री कृष्ण द्वारा भीषण मार काट के पश्चात् विजय प्राप्त करना, संग्राम भूमि में गिद्धों तथा शृगालों का क्रीड़ा करना, हाथियों के सूंड कटने पर, उनका इधर उधर भागना आदि दृश्य "वीभत्स" की सफल व्यंजना करते हैं । अतः कृष्ण "आलम्बन" और "आश्रय" गृद्धों शृगालों का बोलना" उद्दीपन" और ग्लानि, आवेग, शंकादि संचारी भाव हैं ।

भूत प्रेत जोगिनी कराला । मुदित भये अरु श्वान शृगाला ।

1- शब्द शक्ति, रस अलंकार- डॉ० ताराचन्द्र शर्मा, पृ० 46
2- विश्रामसागर, हरिवंशायन, खण्ड अध्याय- 33, पृ० 324
3- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 10, पृ० 634

पंचि विपिन मैन भुवन की नारी । शंक शब्द कीन्हों अकरांसी ।[1] ।

इस स्थल में भी युद्ध की विभीषिका "वीभत्स" की श्रेणी तक पहुँचा दी गई है । मुण्डों, योगिनियों, गृद्ध श्वान शृगालों आदि का चमत्कार" घृणा" नामक स्थायी भाव का पोषक है ।

इस प्रकार "विश्रामसागर" में केवल युद्ध वर्णनों के पश्चात् ही वीभत्स का चित्रण किया गया है । इस रस के मूल में "घृणा" होती है, अतः भक्त कवि को ऐसे भाव से रमने का उत्साह नहीं रहा, फलतः कतिपय उद्धरणों में ही "वीभत्स" का अस्तित्व प्रस्तुत किया गया है । विकृत वेष , भाषा आदि की घृणा सदृश स्थिति तक कवि ने इसका चित्रण नहीं किया । वीभत्स रस" का महत्व केवल इसलिए है कि विभत्स दृश्यों के देखने से चित्त में "निर्वेद" का जागृत होना स्वाभाविक है । इससे चित्त में "वीभत्स" दृश्यों को न देखने की प्रवृत्ति जागृत होती है । इस प्रकार इससे शान्त रस का पथ प्रशस्त होता दिखाई पड़ता है ।

शान्त रस -

शान्त रस का स्थायी भाव "निर्वेद" होता है किन्तु यह निर्वेद संचारी भाव वाले निर्वेद से भिन्न होता है। संचारी भाव का 'निर्वेद' क्षणिक वैराग्य की सीमा में आता है, किन्तु स्थायी भाव निर्वेद वास्तविक वैराग्य के लिए प्रयुक्त होता है । आचार्य मम्मट ने नाट्य के लिए शान्त रस को उपयुक्त नहीं समझा, क्यों कि अवस्थानुकृति नाट्यम् इस लक्षण के अनुसार सम्पूर्ण विषयों से विराग होने के कारण शान्त रस का नाट्य सम्भव नहीं, क्यों कि उसका गीत, वाद्य आदि से विरोध है जैसा कि कहा गया है - "न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ" न च काचिदिच्छा । रसः प्रशान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमप्रधानः, इति सारबोधिनी ।[2]

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन काण्ड, अध्याय- 12, पृ0 649

2- काव्य प्रकाश टीका भाग चतुर्थ उल्लास , पृ0 99,- रघुनाथ दामोदर संस्करण 1950

किन्तु काव्य के क्षेत्र में शान्त रस को भी महत्व दिया गया है यथा -
"निर्वेद स्थायी भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः"[1] इस प्रकार शान्त रस
की मान्यता स्पष्ट है ।

विश्रामसागर शान्त रस प्रधान ग्रन्थ है तथा इसमें शान्त रस के उदरणों
की भरमार है यहाँ पर कतिपय उदरण दिए जा रहे हैं -

तजि काम क्रोध विकराल लोभ मोह निवारिके ।
छल मद कुसंगति त्यागि मद दुर्वासना अन मारिके ।।
शुचि अंग गो मन जीति नासा निरत निज नामें रहे ।
है जाय सो नर राम जी को भव भय भंजन कहै[2] ।।

यहाँ पर कवि ने भव बन्धन काटने के लिए कामादि विकारों, छल, कुसंगति,
दुर्वासनादि का त्याग करने का उपदेश दिया है । इस प्रकार जितेन्द्रिय होकर
एकाग्र मन से राम का जप करने से संसृति के निवर्तन का कथन "शान्त" रस का
परिपोषक है । यहाँ कवि की वास्तविक निर्वेद से ओत प्रोत है ।

सुनि शिवि मन हरषित भयो, कह्यौ धन्य मम भाग ।
अवद अस्वच्छ शरीर यह , पर स्वारथ में लाग ।।
पर स्वारथ में लाग , धन्य जननी जिन जायो ।
दीन्हौं मास कराय, कहो केहि कामे आयो ।
हरि सुमिरण अरु कर्म शुभ, ताके पाय नर देवे मुनि ।
जीवन ताही को सफल, बोल्यो बहुरि सचान सुनि[3] ।।

यहाँ पर राजा "शिवि" और "सचान" का वृत्तान्त वर्णित है, जिसमें शरणागत
की रक्षा करते हुए राजा शिवि ने शरीर की सार्थकता परोपकार द्वारा ही
मानी है । यहाँ पर निर्वेद स्थायी भाव है, राजा शिवि" आश्रय" उनका कथन
"अनुभाव" है । आवेग, हर्ष, धृति आदि संचारी भाव है । सचान का प्रश्न ही

- -

1- काव्य प्रकाश टीका भाग चतुर्थ उल्लास, पृ0 49, सूत्र ।
2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 58
3- वही, वही, अध्याय- 18, पृ0 167

उद्दीपन का कार्य करता है । इस प्रकार कवि ने यहाँ शान्त रस का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत किया है, जिसमें 'परोपकारायणता' विभुत्व का स्वर व्यक्त किया गया है ।[1]

दुरजन के जन भुज भुज के जन जो जन है ।
तस्कर के जन रति धनिनि धन धाते छन है ।
भुख के जन मीन मानिनि के जन रोदन ।
क्रोध के जन जन वचन मदन के वाम विनोदन ।
शिव के श्रुति कवि जन वरण करि पर नर जन नहीं ।
तेहि प्रकार यदुनाथ तुम नाथ हमारे जन अहीं ।[2]

यहाँ पर भक्त अपने आराध्य की महिमा स्वीकार करता हुआ, उसी को सब कुछ समझता है, अत: भक्त "आश्रय" श्री कृष्ण "आलम्बन" भक्त की प्रार्थना "अनुभाव" दैन्य, हर्ष, धृति आदि संचारी भाव है । अत: "शान्त रस" का परिपाक प्रशंसनीय हो गया है ।

जयति गुण ज्ञान विज्ञान वैराग्य निधि नाम हनुमान उरधाम धारी।
साधु सुर रक्षणं असुर गण गंजनं दुष्टमुख भंजनं विपतिहारी ।
जयति कपि शिष्ट परमिष्ट पावक परम धर्म ध्रुव धाम हरि दर्पहन्ता ।
स्वर्ण शैलाभ जलदाभ विग्रह वदन विमल यश युक्त रघुनाथ सन्ता ।।[3]

यहाँ पर हनुमान जी की स्तुति की गई है, जो स्वयं एक महान् भक्त और गुण-ज्ञान के निधान हैं । अस्तु स्तुतिकर्ता "आश्रय" हनुमान् "आलम्बन, स्तुतिवाक्य

1- अष्टादश पुराणानां व्यासस्य वचन द्वयम् ।
परोपकार: पुण्याय पापाय परपीडनम् ।। (सुभाषित रत्न भाण्डागार)
परहित सरिस धरम नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।। (मानस)

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 23 पृ0 204

3- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 22 पृ0 980

अनुभाव, हनुमद् का व्यक्तित्व उद्दीपन और हर्ष, निर्वेद, धृति, स्मृति आदि संचारी भाव है । इनसे पुष्ट "निर्वेद" की शान्त रस के रूप में सुन्दर परिणति हुई है ।

इसी प्रकार अनेक उपदेश स्थलों में "शान्तरस" एवं "निर्वेद" का प्राविधान करके कवि ने विश्रामसागर को वस्तुतः विश्रामसागर बना दिया है । वास्तविक विश्रामतो शान्ति से ही मिलती है । भक्तों के अनेक कथानक भगवद् विषयक आस्था को दृढ़ करते हैं, विषम विकारों को शान्त करते हैं, जिनसे इन्द्रिय-जय और मनोनिग्रह में सहायता मिलती है । गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी शान्ति मार्ग का उपदेश इस प्रकार दिया है -

तब लगि कुशल न जीव कहँ , सपनेहु मन विश्राम ।

जब लगि भजत न राम कहँ , सोक धाम तजि काम ।। [मानस] तुलसी

यही कारण है कि इस कवि ने "शान्तरस" की व्यंजना में अपनी सारी शक्ति लगा दी है ।

<u>भक्ति रस -</u>

जिस प्रकार भरत मुनि के रस - सूत्र की व्याख्याओं के सम्बन्ध में विद्वानोंमें मत भेद रहा है, उसी प्रकार रसों की संख्या के सम्बन्ध में भी बहुत मत भेद है । नाट्य शास्त्र में केवल आठ ही रस प्रधान माने गए हैं, यथा- शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत । अन्त में शान्तोपि नवमो रसः कहकर शान्त रस का प्रतिपादन भी किया गया है । भरत मुनि ने भक्ति रस का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उनके विवेचनों से ऐसा प्रकट होता है कि वे "भक्ति" रस को शान्ति के अन्तर्गत मानते थे । नौ रसों के अतिरिक्त वे प्रेयान, उदात्त और उद्धत को भी रस मानते थे । भागवत की भूमिका में एक भागवत रस की चर्चा भी की गयी है । उसमें लिखा है - पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका: भुवि: भावुका: । आगे चलकर

इस भागवत रस को ही रूप गोस्वामी, मधुसूदन सरस्वती आदि ने स्वतन्त्र रस के रूप में निरूपित किया है और उसे भक्ति रस कहा है[1]।

भक्ति रस का स्थायी भाव और उसका स्वरूप -

भक्ति की जितनी व्याख्यायें दी गयी हैं, उन सब में सगुण ईश्वर विषयक प्रीति को ही उसका स्थायी भाव स्वीकृत किया गया है। नारद ने भक्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है -
"सात्वस्मिन् परम प्रेम रूपा" अर्थात् इस परमात्मा में परम प्रेम ही भक्ति है।
शाण्डिल्य ने अपने भक्ति सूत्र में लिखा है -
परानुरक्ति: ईश्वरे भक्ति: अर्थात् ईश्वर में ह परानुरक्ति को ही भक्ति कहते हैं। जयतीर्थ नामक आचार्य ने भी भक्त्यामृत सुधा नामक ग्रन्थ में लिखा है -
भक्ति नाम ---- अविच्छिन्नो निरन्तर प्रेम प्रवाह: " अर्थात् अपरिमित अनिर्वच कल्याण गुणों के ज्ञान से उत्पन्न हुए अपने समस्त सम्बन्धी जन, पदार्थों तथा प्राणों से भी कई गुना अधिक हजारों विघ्न आने पर भी न टूटने वाले शुद्ध गंगा प्रवाह को भक्ति कहा है।

भक्ति की जो परिभाषायें यहाँ दी गयी हैं, उन सब में भगवान के प्रति अनन्य प्रेम को ही भक्ति कहा है। यह अनन्य ईश्वरासक्ति अथवा ईश्वर में परानुरक्ति ही भक्ति रस का स्थायी भाव है। इसी को "भगवद् रति" के नाम से अभिहित किया गया है[2]।

भक्ति रस का प्रतिपादन जीव गोस्वामी व रूप सनातन आदि आचार्यों ने बड़े विस्तार से किया है। मधुसूदन सरस्वती ने रूप गोस्वामी के हरि भक्ति रसामृत ग्रन्थ से प्रेरणा पाकर "भक्त रसायन" नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें भक्ति

- -

1- नवीन साहित्यिक निबन्ध- डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० 157

2- भक्ति रसामृत सिन्धु, पृ० 15 सं० डॉ० नगेन्द्र।

रस का प्रतिपादन किया गया है । शृंगार रस के समान भक्ति रस के भी दो भेद माने गए हैं यथा - चिन्ता और तृष्णा ।

"विश्रामसागर" में कवि ने भक्ति के पंच तत्वों का उल्लेख किया है यथा -

सख्य दास अरु शिष्यता, पुनि वात्सल्य शृंगार ।
सब महि मह भक्त नाम सु, ये भक्ति पंचरस सार ।।1।।

ये एक प्रकार से भक्ति के पांच भेद हैं - [1] सख्य भक्ति [2] दास्य भक्ति [3] शिष्य भक्ति [4] वात्सल्य भक्ति [5] शृंगार भक्ति । इन सब में प्रेम तत्व ही प्रमुख है और प्रेम की पराकाष्ठा तो "दाम्पत्य भक्ति" में ही होती है, किन्तु इस कवि की दास्य भक्ति ही थी ।

इसी प्रकार कवि ने भक्ति के पांच बाधक तत्वों का भी वर्णन किया है यथा -

विद्या जाति महन्त , यौवन को मद रूप मद ।
तजैं यतन करि सन्त , पांच काटि ये भक्ति के[2] ।।

वास्तव में भक्ति में विद्या, जाति महत्ता, यौवनमद, और रूपमद ये पांचों बाधक हैं[3] क्यों कि इनसे "अहंभावना" में वृद्धि होती है और जब तक "अहं रहता है, तब तक वह नहीं मिलता ।

विद्या धन कुल रूप मद, प्रभुता यौवन नारि ।
ये बाधक हरि भक्ति के, कह बुध वेद विचारि[4] ।।

"विश्रामसागर" के कवि ने भक्ति के क्षेत्र में शूद्र को भी अधिकार दिया है, क्यों

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 47, पृ0 484

2- वही, वही, अध्याय- 23, पृ0 215

3- तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूं ।
बारी फेरी बलि गई, जित देखूं तित तू ।। कबीरवानी [साखी]

4- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 25, पृ0 233

कि यह कवि "रामानुजाचार्य" की शिष्यपरम्परा में दीक्षित थे और विशिष्ट द्वैत उनका सिद्धान्त था । वे हरि का भजै तो हरि का होय । जाति पाति पूछै न कोय, इस मत के पोषक थे -

कह महीप विप्रहु सुनो, श्रुप है हरिदास ।
ताहि बतावे नीच जो, बसै निरय की वास ।।[1]

तुलसी ने भी "मानस" में भगवद् भजन को वरीयता प्रदान की है -

वारि मथे बरु होय घृत सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भवतरिय, यह सिद्धान्त अपेल ।।[मानस, उत्तर0]

यहाँ पर भी भगवद्भक्ति के बिना जीव का कल्याण नहीं होता, यह बात कही गई है ।

सोई सोई जगत है, जहँ तक जग जग जीव ।
राम कृष्ण सुमिरे बिना, लहैं न कोय पीव ।।[2]

यहाँ पर राम भक्ति और कृष्ण भक्ति का महत्व बतलाया गया है और "सोवई" के सिद्धान्त का तिरस्कार किया गया है । आध्यात्मिक "रति" ही यहाँ पर मुख्य प्रतिपाद्य है । कवि ने "वैधीभक्ति के साथ ही "मधुराभक्ति" को भी स्थान दिया है । यही कारण है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्रों की प्रधानता रखने पर भी उसने श्री कृष्ण के लीला पुरुषोत्तम रूप की झाँकी भी उतारने की चेष्टा की है । यदि माधुर्य की ओर झुकाव न होता तो वह "रामसेवा" में शृंगारी हास- परिहास को स्थान न देता । भक्ति रस के उदाहरण -

तब विरंचि कर जोरिके, बोले सन्मुख बैन ।
जय रघुनाथ अनाथपति, प्रणतपाल सुखैन ।।
प्रणतपाल सुखैन, मैन छवि कोटि विराजे ।
धन्य भाग्य बड़ तासु, सदा जिन याहि समावे ।।

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 42 पृ0 420

2- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9, पृ0 620

तथा लगावे चातु मोहि, दान देहु निज भक्ति अब ।
सुनि तथास्तु बैठे पुर, आये मुदित महेश तब[1] ।।

यहाँ पर ब्रह्मा द्वारा "रघुनाथ की स्तुति करते हुए भक्ति प्राप्ति का वरदान माँगना भक्ति रस का ही उदाहरण है, जिसमें दास की दीनता, विनम्रता, शरणागति, ईश- सामर्थ्य आदि भक्ति के अंगों का उल्लेख किया गया है ।

जय भगवन्त अनन्त अज, अनघ अनामय एक ।
करुणासिंधु सर्वज्ञ शिव, सुखद नाम अनेक ।
सुखद नाम अनेक, करम सब पावन कारी ।
काम क्रोध मद मोह लोभ गज सिंह खरारी ।
भव दधि तारन पोत दृढ़ कहत सुजन हरि सेत भय ।
बसहु सदा मम उर अयन सीता लखन समेत जय[2] ।।

यहाँ पर सनकादिकों द्वारा सिंहासनारूढ़ राम लक्ष्मण - सीता की वन्दना में भक्ति रस का परिपाक हुआ है । इस प्रकार यह वैधी भक्ति का सुन्दर उदाहरण है । इसी प्रकार ब्रह्मा द्वारा की गई कृष्ण स्तुति में भक्ति रस देखिये -

तुम मम नाथ दास मैं तोरा । क्षमहु देव अब अवगुन मोरा ।
दया योग्य मैं अही तुम्हारी । ईशन के तुम ईश खरारी ।।

यहाँ पर "दास्य भक्ति" स्पष्ट है, जिसमें विनम्रता और अहंनिवृत्ति के भाव दर्शनीय है ।

वात्सल्य रस -

फ्राबेल ने कहा था "सफर लिटिल चिल्ड्रेन टू कम अन्टू मी फॉर देयर्स इज दी किंगडम ऑफ हैवेना ।" ठीक इसी तरह मनु ने भी पुत्रात्मा के लिए कहा था - बाल वत्सु स्वापि पुत्रवत्स नहीं खेदु ।" ईश्वरोपासना

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 30 पृ0 1076

2- वही, वही, अध्याय- 30 पृ0 1077।

के लिए बाल - भाव अपनी निरीहता और निश्छलता के लिए प्रशस्त माना जाता है[1]। इसी हेतु बाबा रघुनाथदास जी ने शायद अपनी भक्ति भावना के लिए भगवान कृष्ण एवं भगवान राम के बाल स्वरूप को लिया होगा, ऐसा प्रतीत होता है। इसमें [बालरति] स्थायी भाव होता है। बालक की स्वाभाविक चेष्टायें एवं क्रीड़ायें आलम्बन की होती हैं, अतः वे उद्दीपन और " बालक" आलम्बन होता है। इसी प्रकार "बालरति" जिस पात्र में होती है, वह आश्रय कहलाते हैं। विश्रामसागर में बालक कृष्ण की लीलायें और बालक राम की लीलायें "वात्सल्य रस" के लिए अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुई है। प्रस्तुत प्रकरण में बालक राम की बाल लीला का एक उदाहरण दृष्टव्य हैं :-

> जानुपानि किलकत तहँ डोलैं। कलकल वचन मधुर हँसि बोलैं।
> कहँ मातु कछु आरित मैया। हमें जुठैहैं कहि कहि भैया॥[2]

यहाँ मातायें "आश्रय" बालकृष्ण "आलम्बन" कृष्ण के मधुर वचन और किलकारी करते हुए घुटनों के बल चलना "उद्दीपन" तथा माताओं की कामनायें "अनुभाव" है। यहाँ हर्ष, आवेग आदि संचारी भाव है, इनसे परिपुष्ट रति भाव की सफल व्यंजना हुई है। इसी प्रकार राम की वात्सल्य लीला का ही अगला उदाहरण दृष्टव्य है -

> कबहुँक कहै नींद किन आवै। किलकर मेरो लाल झुलावै।
> कबहुँक करि सब तन शृंगारा। पठवै जहाँ भूप दरबारा॥[3]

यहाँ माताओं के बाल प्रेम का स्वाभाविक चित्रण सुन्दर बन पड़ा है। इसमें सूर के वात्सल्य प्रभाव देखा जा सकता है - मेरे लाल को आव निंदरिया [सूर] पुत्र बालक और शिष्यादि के प्रति रति का भाव वात्सल्य कहा जाता है। संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने वात्सल्य का विवेचन स्वतन्त्र रस के रूप में

- -

1- प्राचीन प्रमुख हिन्दी कवियों का मूल्यांकन- प्रो० विमल पृ० 171

2- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 4 पृ० 713

3- वही, वही, अध्याय- 4 पृ० 715

न करके उसे शृंगार के अन्तर्गत माना है । इसका कारण यह है कि 'रति' शृंगार का स्थायी भाव है और रति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण उसमें स्त्री पुरुष के प्रणय - भाव के अतिरिक्त पुत्र देवादि विषयक रति का भी समावेश हो जाता है ।

परन्तु शृंगार की व्युत्पत्ति 'शृंग' धातु से हुई है और शृंग का अर्थ है - कामदेव । यही कारण है कि वात्सल्य रस को शृंगार के अन्तर्गत ग्रहण करने में थोड़ी बाधा उपस्थित होती है[1] । सम्भवत: इन्हीं कारणों से रुद्रट ने "प्रेयस् रस" की परिकल्पना की और "स्नेह" को स्थायी भाव माना । विश्वनाथ ने इसे स्पष्टत: वात्सल्य रस कहकर, इसे दशम् रस के रूप में माना । महाराजा भोज और अभिनवगुप्त आदि आचार्यों ने भी वात्सल्य को एक स्वतन्त्र रूप में स्थान दिया है ।

भाव -
=====

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि स्थायी भाव ही विभावादि के द्वारा पुष्ट होने पर रस के रूप में परिणत हो जाता है किन्तु अनेक स्थल ऐसे होते हैं कि जहाँ पर भाव रस के रूप में नहीं पहुँच पाता उदाहरण के लिए देवादि विषयक रति को भाव की श्रेणी में ही स्थान दिया जाता है रति देवादि विषया भाव: (मम्मट) इसी प्रकार मुनि, गुरु नृप और पुत्र विषयक रति को भी भाव की श्रेणी में स्थान दिया जाता है । विश्रामसागर में भाव के अनेक उदाहरण विद्यमान है यथा -

> जपति देवऋषि जानि रमापति इच्छा ठाने ।
> जप सनकादिक ब्रह्मनिरत गुण मुनि मुख माने ।।
> जप हरि मोहिनि वपुष धर्यो निज भक्तन हेता ।
> औरो होत अमाप मापि को पावे सेता[2] ।।

- -

1- शब्द शक्ति, रस और अलंकार, डॉ0 ताराचन्द्र शर्मा पृ0 51

2- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड अध्याय- 4 पृ0 548

यहाँ स्पष्ट रूप से भक्त की भगवान् विषयक "रति" है । अतः उसे आध्यात्मिक "रति" कहेंगे "रस" नहीं । यह बात दूसरी है कि अर्वाचीन आलोचक इसे भक्ति रस मानेंगे ।

पीत वसन वनमाल उर, कर मुरली मुख पान ।
परिकर सहित मधुर छवि, सोहत श्री भगवान ।।[1]

यहाँ पर भी भगवान् विषयक रति है, जो आध्यात्मिक रतिभाव कहा जायगा । सीता जी द्वारा पार्वती की निम्नलिखित स्तुति भी "भाव" ही है :-

जय जगतविलोचनि रतिमदमोचनि परहितसोचनि कष्टविथे ।
भवविभव प्रकाशिनि कलिमल नाशिनि स्वपद विलासिनि नीतिविधा ।
अति अमित प्रभावा वेदन गावा तदपि न पावत पार कुतें ।[2]
शिवहीय पडानन मम मति मानन कृषि सिधि शासन नेमयुते ।।

यहाँ पर देव विषयक रति होने के कारण से रति भाव ही माना जायगा रस नहीं जैसा कि मम्मट ने स्पष्ट किया है - रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः भाव प्रवक्तः[3] ।
इसी प्रकार जहाँ पर किसी व्यभिचारी भाव को प्रधान रूप से वर्णित किया जाए उसे भी भाव की श्रेणी में ही स्थान दिया जाता है ।

<u>भावाभास रसाभास -</u>

भाव के अतिरिक्त भावाभास और रसाभास भी ऐसे स्थलों पर होते हैं जहाँ पर अनौचित्य के कारण भाव अपनी सीमा से हट जाता है । और रस भी अनौचित्य के कारण आभासित मात्र होता है पुष्ट नहीं होता ।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 5 पृ0 734

2- वही, वही, अध्याय- 7 पृ0 769
आचार्य भरत ने भाव की परिभाषा देते हुए कहा है -
"कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते ।"

3- काव्य प्रकाश चतुर्थ उल्लास 48 सूत्र ।

इन्हीं को भावाभास और रसाभास कहते हैं । मम्मट के शब्दों में -
"तदाभास अनौचित्य प्रवर्तित: ।" विश्रामसागर में इनके भी कुछ स्थल प्राप्त
हैं यथा -

पुर के लोग बहुत बस तेरे । जो तुम कहो करैं वहि मेरे ।[1]
सुन्दर रूप नयन सुखदाई । जेहि चितवे तेहि लेह लोभाई ।।

यहाँ पर एक स्त्री द्वारा अनेक की "रति" दिखाई गई है , अत: यहाँ अनौचित्य
के कारण श्रृंगार रस न होकर "श्रृंगार भास" ही है ।

यहाँ पर भावाभास और रसाभास स्पष्ट है । इनके अतिरिक्त भाव शान्ति
भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता का सम्बन्ध भी भाव पक्ष से होता है ।

भाव शान्ति -

जहाँ पर कोई एक भाव किसी दूसरे भाव के प्रकट हो जाने पर शान्त
हो जाता है । उसे भाव शान्ति कहते हैं यथा -

यहि प्रभुता प्रभु वंश की अभय होय तुम ते डरै ।
मृदुगिरा सुनि राम की भयो ज्ञान परशा धरै ।।
तब बोले हे राम धनुष श्रीपति कर येहु ।[2]
आकर्षहु गहि पाणि मिटै जेहि मम संदेहु ।।

यहाँ पर "परशुराम" का क्रोध ज्ञान होने पर शान्त हो जाता है और वे
विनम्र होकर वैष्णव धनुष देते हैं, जिसके चढ़ाने से उन्हें विश्वास हो जायगा
कि राम "विष्णु" हैं ।

भावोदय -

जहाँ पर एक भाव के पश्चात् दूसरा भाव प्रबल होकर उदित
होता हो वहाँ पर भावोदय कहलाता है यथा -

हे मुनि कहो विचारि कहाँ जनि अब अधिकाई ।
जो हम भिदरव विप्र अवर को शीश न नाई ।।
परशत टूट पिनाक करब हम मद यदपि हेता ।[3]
स्वामिहि सेवक समट कहो कस हेत निकेता ।।

- -

1- विश्रामसागर, पृ0 119
2- वही, रामायण खण्ड,अध्याय-8,पृ0 792, 3- वही, वही, -8,पृ0792

यहाँ क्रोधी परशुराम के प्रति शान्त राम की पुरुष उक्ति का प्रसंग है, राम में भी क्रोध के उदित होने पर परशुराम का क्रोध महत्वहीन हो जाता है, अतः भावोदय का स्थल है ।

भाव सन्धि –
============

इसी प्रकार भाव सन्धि उस स्थल को कहते हैं जहाँ पर एक भाव के साथ ही दूसरा भाव आकर मिल जाता है।इस प्रकार दो भावों के मिलन की सन्धि को भाव सन्धि कहते हैं यथा –

पुनि हठिनात भरत हरि आई । बहुत काम धनि भई लराई ।
निकस जानि सुर रमानिवासु । उरधरि उदर विदारेउतासु ।।
लखि सुर हर्षि सुमन बरसायो । जय जय कहि दुंदुभी बजायो । [पृ0249]

यहाँ पर "उत्साह" भय,घृणा और निर्वेद भावों की सन्धि है ।

भाव शबलता –

जहाँ पर प्रथम भाव की तुलना में उदित हुआ दूसरा भाव प्रबल होकर उसे दबा देता है वहाँ पर भाव शबलता का प्रकरण होता है । "भावस्य शान्तिरुदया सन्धिः शबलता तथा ।"[1] भाव शबलता का उदाहरण दृष्टव्य है यथा –

सुनहु राम सोइ दास सदा जो सेवा ठाने ।
करै शत्रु कर काम ताहि को दास बखाने ।
त्यहिते हर कोदण्ड बाज जेहि खण्डा सोऊ ।
सहसबाहु सम समुझि तासु गति करिहौं सोऊ[2] ।।

यहाँ पर शान्त भाव से उत्तर दाता "राम" के प्रति परशुराम का "क्रोध" भाव प्रबल हो गया है, परन्तु पुष्ट न होने के कारण "रस" की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सका ।

इस प्रकार कवि ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में समस्त रसों के होने

- -

1– काव्य प्रकाश चतुर्थ उल्लास 90 सूत्र ।

2– विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय– 8 पृ0 785

का जो संकेत किया था उसकी पुष्टि उपर्युक्त उद्धरणों से हो जाती है । इतना अवश्य है कि कवि का मुख्य लक्ष्य भक्ति प्रधान है, अतः निष्कर्ष रूप में यह मानना पड़ता है कि इस ग्रन्थ का मुख्य रस "शान्त रस" है । और भक्ति रस उसका ही एक सबल अंग है । शेष रस सहायक रूप में उपलब्ध होते हैं । उनका इतना प्राधान्य नहीं है कि ग्रन्थ को लौकिक कहा जा सके । अतः यह सिद्ध होता है कि विश्राम सागर शान्त रस प्रधान ग्रन्थ है, जिसमें राम, कृष्ण और विष्णु भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित है । यदि भक्त जन इसे भक्ति रस का ग्रन्थ कहें तब यह कोई अतिशयोक्ति न होगी, क्यों कि भक्ति का लक्ष्य मानसिक शान्ति की प्राप्ति है, अतः मेरे विचार से इस ग्रन्थ को शान्त रस प्रधान कहना ही उचित है ।

अध्याय - ५

विश्रामसागर में अलंकार योजना

भारतीय-काव्य-सम्प्रदायों में रस के अतिरिक्त शेष सम्प्रदायों में सबसे पुराना अलंकार-सम्प्रदाय ही है। वैसे तो स्वयं भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में चार अलंकारों – उपमा, दीपक, रूपक तथा यमक – की विवेचना की है, किन्तु उन्होंने इन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया। अतः नाट्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरत के समय से अलंकारों का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित हो चुका था। इसके पूर्व वैदिक काल में भी अलंकारों का प्रयोग होता था किन्तु पाँचवीं शताब्दी में आचार्य भामह द्वारा 'अलंकार-सम्प्रदाय' के रूप में अलंकारों की मान्यता स्थिर हो गयी। वैसे भरत और भामह के बीच भी राम शर्मा, मेधाविन, राजमित्र आदि विद्वान हो चुके थे, जिन्होंने अलंकारों की चर्चा की थी, किन्तु उनके ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। इन विद्वानों के नाम केवल भामह के ही "काव्यालंकार" में आये हैं। ऐसी स्थिति में अलंकार-सम्प्रदाय के प्रवर्तक "भामह" ही माने जाते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि अलंकार काव्य-उक्ति के अविच्छिन्न अंग हैं या ऊपर से थोपी हुई चीजें। अगर वे उक्ति के अविभाज्य अंग हैं तो उन्हें अलंकार क्यों कहा जाए? क्योंकि वे काव्य के स्वयं सौन्दर्य हैं, सौन्दर्य बढ़ाने वाले साधन नहीं हैं। इसीलिए कुन्तक और क्रोचे ने अलंकारों को अलंकार मानने से इनकार किया, क्योंकि ऊपर से थोपे जाने पर या तो वे अनावश्यक हैं और यदि वे उक्ति के लिए आवश्यक हैं तो उन्हें अलंकार नहीं माना जाना चाहिए।[1]

उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि अलंकार के विषय में यह निश्चित नहीं है कि काव्य में इनका बाह्य स्थान है या आन्तरिक। अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकारों को ही काव्य का सर्वस्व माना, किन्तु मम्मट जैसे आचार्यों ने अलंकाररहित काव्य को भी काव्य माना है – "सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।"[2]

1- साहित्यिक निबन्ध- रचना प्रक्रिया और अलंकार योजना, पृ0 394

2- काव्य प्रकाश उल्लास – 1 मम्मट

प्रश्न यह है कि काव्य में अलंकारों का क्या स्थान है ? वस्तुतः अलंकार
न तो काव्य के अन्तरंग तत्त्व हैं और न केवल बहिरंग, वे काव्य के अखण्ड
सौन्दर्य में सम्मिलित रहते हैं।आरोपित नहीं, अतः उन्हें ब्राह्य कैसे कहा जा
सकता है । यही कारण है कि भोजराज ने अलंकारों को ब्राह्य , आभ्यान्तर
और ब्राह्याभ्यान्तर इन तीनों वर्गों में विभाजित किया है। जिस रूप में
अलंकार भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं, वहाँ उन्हें
बहिरंग नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार अलंकार को काव्य के ब्राह्य एवं आन्तरिक
दोनों पक्षों से सम्बद्ध माना जा सकता है ।

अलंकार मूलतः उक्ति का अभिभाज्य अंग है, उसके बिना कवि
अपनी भावना और अनुभूति को न तो निश्चित आकार दे पाता है और
न प्रेषणीय ही बना पता है[1]।

इस प्रकार काव्य लघु हो या वृहद् उसमें अलंकार स्वाभाविक रूप से शोभा
पाते हैं और उनका आ जाना भी स्वाभाविक है, क्यों कि इनके द्वारा काव्य
में चमत्कार उत्पन्न होता है । भाषा में शब्द और अर्थ दो ही होते हैं
अतः भाषा में सम्मिलित अलंकारों में भी शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों
के प्रयोग होते हैं । प्रस्तुत प्रसंग में विश्रामसागर में आये हुए अलंकारों पर
विचार किया जा रहा है । ग्रन्थकार ने अपने ग्रंथ में अनुप्रास, अनन्वय, यमक
आदि अलंकारों का संकेत किया है ।

उक्ति युक्ति औरेब धुन, अर्थ भावना फेर ।
अनुप्रास अन्वय जमक, अमर अपर और[2] ।।

इससे प्रतीत होता है कि कवि की प्रवृत्ति अनुप्रास, अन्वय,
यमक, उपमा जैसे अलंकारों में अधिक रही है । विवेचन करने पर भी यह ज्ञात
होता है कि उक्त कथन सार्थक है यहाँ पर क्रमागत शब्दालंकारों का विवेचन

1- काव्य शास्त्र (भारतीय एवं पाश्चात्य) पृ0 107 - डॉ0 कृष्ण दत्त अवस्थी

2- साहित्यिक निबन्ध - रचना प्रक्रिया और अलंकार योजना पृ0395, डॉ0 कुसुम सिंह

3- विश्रामसागर, हरिनारायण खण्ड, अध्याय-2, पृ0 15

प्रस्तुत है -

क- शब्दालंकार -

शब्दालंकार शब्द में चमत्कार उत्पन्न करते हैं, परन्तु भावानुभूति को तीव्र करने में असमर्थ रहते हैं । शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष अतिशयोक्ति एवं वीप्सा अलंकारों का प्रयोग इस कवि ने किया है किन्तु अनुप्रास और यमक में इसकी प्रवृत्ति अधिक रमी है ।

1- अनुप्रास -

अनुप्रास के भेदों में कवि ने वृत्यनुप्रास को सर्वाधिक महत्व दिया है तत्पश्चात् छेकानुप्रास को । कुशल कवि अनुप्रास का प्रयोग बड़ी सफलता से भाव की व्यंजकता को तीव्रतर बनाने के लिए करते हैं । यहाँ पर वृत्यानुप्रास का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

दो0 -जाते कृष्ण कृपाल के , कहौं चरित चित चोर[1] ।

x x x

हरष हरष करि जसुमति धावें, किलकि किलकि लखि गोद उठावें[2] ।।

बाजहिं बाजन बोलि बन्दिजन ते कह्यो[3] ।

x x x

भुजग भोग भुजदण्ड कण्ठ धनुबान लिये[4] ।

उपर्युक्त उद्धरण में रेखांकित अंश "वृत्यानुप्रास" के सुन्दर उदाहरण हैं ।

2- यमक-

अनुप्रास से भी कहीं अधिक पुराना अलंकार यमक है शायद इसीलिए भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में अनुप्रास का नाम तक नहीं लिया , पर यमक को

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन काण्ड, अध्याय-1, पृ0 502

2- वही वही, अध्याय-2, पृ0 529

3- वही, रामायण बाल,काण्ड, अध्याय- 3 पृ0 700

4- वही, रामायण काण्ड, अध्याय- 3 पृ0 701

गणना चार अलंकारों में की है । यमक अलंकार सुनने में अधिक सुखद और चमत्कार पूर्ण होता है। सभंग पद यमक और अभंग पद यमक, इसके दो भेद होते हैं । कवि ने पर्याप्त मात्रा में इन दोनों के प्रयोग किए हैं । यहाँ केवल तीन उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं -

जनमन-सारंग सारंग हरिसै । जगदधि कुल कमलाकर सरिसै ॥[1]

x x x

यमक अलंकार का चमत्कार दृष्टव्य है -

बेदन सुख रघुनाथ सुनि, करो निवेदन देह ।
बेदन मन छेदन करौं, जो बेदन सौं भेद ॥[2]

x x x

घनो घनो जाको घनो, लगत घनो दधि केरि ।
घनौ घनौ जाको घनौ, कृष्ण घनौ ब्रजु हेरि ॥[3]

कवि की इस भाँति पुरानी कविता में सहज रूप में प्रयुक्त यमक बहुत मिलता है वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में इसकी अनुपम छटा संगीतात्मक वातावरण की सृष्टि में योग देता है ।

3- श्लेष -

इस अलंकार के माध्यम से कवि एक ही शब्द के द्वारा श्लिष्ट-रूप में दो भिन्न अनुभूतियों को वाणी देने का प्रयास करता है यद्यपि श्लेष के शब्द-श्लेष और अर्थश्लेष ये दो भेद होते हैं, किन्तु कवि ने इस अलंकार का प्रयोग अधिक नहीं किया है जहाँ कहीं किया भी है तो उसने अपने ग्रन्थ में शब्दश्लेष को ही चुना है । श्लेष में अर्थ काठिन्य आ ही जाता है, अतः कवि ने इस अलंकार का प्रयोग अधिक नहीं किया, क्यों कि वह सरल काव्य का पक्षपाती था । श्लेष का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

सारंग दृग मुख पाणि पद, सारंग कटि बपुधार ।

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2, पृ0 11
2- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 8 पृ0 779
3- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 9 पृ0 805

सारंग रघुनाथ छवि, सारंग मोहनहार[1] ।।

x x x

यहाँ पर "सारंग" शब्द के क्रमशः मृग, कमल, सिंह बादल और काम अर्थ प्रकाशित हुए हैं जिनसे चमत्कार आ गया है और छवि चित्र भी उतर आया है। 'सूर' आदि प्राचीन कवियों ने भी "सारंग" के चमत्कार की प्रवृत्ति अपनाई थी, किन्तु आधुनिक युग में यह अप्रयुक्त है।

4- वीप्सा -

संस्कृत में यह अलंकार नहीं होता किन्तु हिन्दी में यह स्वीकृत है। विश्रामसागर में वीप्सा का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया गया है। यथा-

पिता पुत्र नारी पुरुष, गुरु शिष्य पति भाय।
पाप पुण्य जो कछु करै, अर्द्ध - अर्द्ध बँटि जाय[2] ।।

x x x

तनु झूठा झूठा करत, झूठा सब संसार।
तनु सच्चा सच्चा जगत, सच्चा कर्म विकार[3] ।।

यहाँ रेखांकित अंशों में "वीप्सा" के कारण ही चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

अर्थालंकार -

अर्थालंकारों में "उपमा" अलंकारों की जननी मानी जाती है। इससे अर्थ गाम्भीर्य भी आता है और काव्य में सरसता उत्पन्न हो जाती है, अतः कवि ने इसका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है। यथा -

5- उपमा-

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अलंकार है कुछ आचार्यों ने तो केवल इसे ही

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड अध्याय-7 पृ0 768

2- वही, चरितरामायन, अध्याय- 3 पृ0 25

3- वही, वही, अध्याय- 38 पृ0 387

अलंकार माना है , शेष सबको उपमा के ही भेदों में गिना है । उपमा में वर्ण्य वस्तु का सादृश्य किसी अन्य वस्तु से बताया जाता है । उपमा अलंकार के विश्रामसागर से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

बन्दौं हरिजन पदकमल, अमल तत्वप्रद रेनु ।
जिनके संग प्रभु मिलत इमि जिमि बछरा संग धेनु[1] ।।

: : :

परकाशक सब जगत का, परमात्मा सो एक ।
जैसे बहु जल कुम्भ में, रवि शशि परत अनेक[2] ।।

एक और नवीन उपमा का उदाहरण दृष्टव्य है -

सत्य कहत श्रुति धर्म बिन, भौंगे छूटत नाहिं ।
राम रटनिसो मिटत जिमि, छुना परि निशि माहिं[3] ।।

यहाँ रेखांकित अंशों में " उपमा" का सौन्दर्य दर्शनीय है ।

6- मालोपमा -

उपमा अलंकार के भेदों में मालोपमा अलंकार अधिक चमत्कार पूर्ण होता है कवि ने इसका भी उचित प्रयोग किया है यथा -

भगवन्तन में राम यथा शक्तिन में सीता ।
नदिन में जिमि गंग कूप पाठन में गीता ।।
कामधेनु गौ माहिं अहिंसा धर्मन मा जिमि ।
वृक्षन में सुरवृक्ष खगन में वैनतेय तिमि[4] ।।

: : :

यहाँ पर एक ही "उपमेय" के लिए अनेक उपमायें देकर उपमाओं की माला सी बना दी गई है, जिससे उपमेय के गौरव में असाधारण वृद्धि हुई है । इसी कवि

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 1 पृ0 - 7

2- वही, वही, अध्याय- 38, पृ0- 391

3- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 14 पृ0- 864

4 - वही, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 95

की भावुकता एवं चिन्तन कला पर भी प्रकाश पड़ा है ।

7- उत्प्रेक्षा -

यह अलंकार कल्पनापरक होता है भक्त कवि कल्पना के अलक्ष्य लोक में अधिक नहीं रम सकता अतः उसने इस अलंकार का प्रयोग अधिक नहीं किया किन्तु जो उत्प्रेक्षायें की हैं वो बड़ी ही सुन्दर हैं यथा -

लागे करन निरत पुनि कान्हा । हरषे सकल मिले जनु प्राना ।।[1]

: : :

हरि बिन लेख भयानक लागे । कारागार सहित गृह जागे ।।

शीतल मन्द सुगन्धित बाई । लागत मनहुँ अग्नि लै आई ।।[2]

: : :

दिन दिन तेज बढ़त तन जाई । मनहुँ उगे विधु मन्दिर आई ।।[3]

यहाँ रेखांकित अंशों में उत्प्रेक्षा का स्वाभाविक रूप दर्शनीय है ।

8- रूपक-

अर्थालंकारों में यह अलंकार कवि को विशेष प्रिय रहा है । सामान्य रूपों की तुलना में कवि के सांगरूपक अत्यन्त उत्कृष्ट हैं । यहाँ पर कवि द्वारा प्रयुक्त रूपकों के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

सो० बन्दौं सन्त समाज , शीश नाय कर जोरि करि ।
जहँ हरि नाम जहाज, अमित पतित चढ़ि भवतरहिं ।।[4]

: : :

जगदधि कुल कलपतरु सरिसे ।[5]

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 5 पृ० 561

2- वही, वही, अध्याय- 9 पृ० 612

3- वही, ~~वही~~, रामायण खण्ड, अध्याय- 3 पृ० 699

4- वही, इतिहासायन खण्ड अध्याय- 1 , पृ० 7

5- वही, वही, अध्याय- 2 पृ०- 11

अब कुछ सांगरूपक के उदाहरण दृष्टव्य हैं -

धर्म दिनपवर बोध प्रकाशक, मंगल करन शोक सब नाशक ।
मानस रोग अनेक प्रकारा, भेषज नाम विनाशन हारा ।।[1]

x x x

ब्रह्म जीव जग वृक्ष है, सतसंगति जलधार ।
बरषा अंकुरन भरो, बीजहु तासु विकार ।।[2]

x x x

भट्ठी मोह कृशानु रवि, धमनि श्वास मद दार ।
निशि दिन धन देखो , वरन कुम कूट काल लोहार ।।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों से कवि की रूपक अलंकार पर विशेष रुचि प्रतीत होती है ।

9- वक्रोक्ति -

यह अलंकार वक्रता प्रधान होता है। जब कि संत कवि वक्रता से दूर ही रहते हैं, फिर भी कवि ने इसका जो सीमित प्रयोग किया है उसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

बोला निज मुख देखो नारा । भूप वसन तुम जाति अहीरा ।।
सुनि अस प्रभु निरखन करि डारा । परिहरि निज पट सब निज अनुहारा ।।[4]

x x x

जो न एक मुख कै करी दश शीश मुँहरा ।
ज्यहिते सब सुनि लेई स्वादि है जावै पूरा ।।
पूछ न वरणत पूरता कादर करत कलाप यह ।
समुझि परत ज्यहि कछुक दिन कौन लरहँगो आप वर ।।[5]

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2, पृ0 11
2- वही, वही, अध्याय- 35, पृ0 358
3- वही, वही, अध्याय- 36, पृ0 362
4- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 7, पृ0 593
5- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 8 , पृ0 788

इन अंशों में वक्रोक्ति की कुशलता वक्ता की कुशलता और कवि की योग्यता का प्रमाण है ।

10- विरोधाभास -

यह अलंकार भी चमत्कार विधायक है।इसके कुछ प्रयोग दृष्टव्य हैं -

उत्तर दिशि सरयू बहि जाई । अमल अपार आप सो छाई ।
आप अधोगति सुचि तव जानै । औरहि देत ऊर्ध्व पद ठानै ।।[1]

* * *

सुनिश्चित अज के सुत दशस्यंदन । आस्यंदन के भे अज नंदन ।[2]
यह अचरज परो कपिहि भाँती । समुझि परत अस सकल बराती ।।

* * *

कहिके कहत न गहत गहि , देके देत न काहु ।[3]
चहिके चहत न तजत तजि, औरहि भजत तव नाहु ।।

11- व्यतिरेक -

प्राय: श्रृंगार आदि के चित्रण में इस अलंकार का प्रयोग होता है।विश्रामसागर में इसके प्रयोग कम मिलते हैं, किन्तु जो हैं वो बड़े महत्वपूर्ण हैं -

कोटि भानु ते अधिक है प्रकाश जामें विमल ।
रह्यो चराचर पूरि परब्रह्म ताको कहत ।।[4]

* * *

चैत्र मास सित पक्ष सुभाकर वार जू ।
नौमी दिन श्रीराम लीन्ह अवतार जू ।।
नील जलद तन स्याम काम छवि कोटि जू ।
अरुण कमल सित सुमन धरे जन ओटि जू ।।[5]

* * *

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 6, पृ० 749

2- वही, वही, अध्याय- 10, पृ० 810

3- वही, वही, अध्याय- 21, पृ० 968

4- वही, चरितनारायण खण्ड, अध्याय- 6, पृ० 51

5- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 3 , पृ० 699

बढ़त बढ़त नित बढ़त नभ, दिन मलीन रिपु राहु ।[1]
निष्कलुष तन किमि होय शशि, दीन दुखद तव काहु ।।

इन अंशों में" उपमेय" की असाधारण वृद्धि चमत्कार विधायिका प्रतीत होता है ।

12- संसृष्टि -

इस अलंकार में तिल तण्डुल की भांति दो या दो से अधिक अलंकार एक साथ मिले होने पर भी स्पष्ट रहते हैं । इसका प्रयोग बहुत कम मिलता है यथा -

तड़ित विनिन्दक पीतपट, नील जलद तन श्याम ।
इन्दु वदन वारिज नयन, कर आयुध अभिराम ।।[2]

यहाँ व्यतिरेक"और "रूपक " बिल्कुल स्पष्ट है, दोनों के मिश्रण होने पर भी दोनों अलंकार्य अपनी- अपनी छवि बिखेर रहा है ।

13- निदर्शना -

यह अलंकार साम्य मूलक है जिससे अर्थ सौन्दर्य में वृद्धि होती है। अतः कवि ने इसके अनेक प्रयोग किए हैं यथा -

दुर्जन देखे दोष पर देखे नहिं गुण शील ।
लखे सुअर के मलन में , ओछा चिह्न पिपील ।।[3]

: : :

कर्म योग तब तक करौ, जब तक प्रेम न होय ।
प्रेम पाठ पढ़ि क्यों पढ़ै , ककहरा किसको लोय ।।[4]

यहाँ पर लौकिक निदर्शनों द्वारा वास्तविक तथ्य का ज्ञान कराया गया है ।

14- दीपक -

यह बड़ा ही चमत्कारपूर्ण अलंकार है क्रिया दीपक और कारक

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 7 पृ0 771
2- वही, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 24 पृ0 218
3- वही, वही, अध्याय- 47, पृ0 500
4- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9 , पृ0 620

दीपक उन दो भेदों में एक वस्त्र में विद्यमान है । यथा -

क्रियादीपक-दो० कामदार कामी कृपण , कन्या मांगन लोय ।
ये परपीर न पेखहीं, दीनो होय तो होय[1] ।।

बहु कृत अंगीकार केहि, प्रतिपालत गहि तारहि ।
जहिं गहि विघ वधि अगिनि, तजतन दुःख जहिं[2] ।।

यहाँ प्रथम उदाहरण में "पर पीर न देखना " एक क्रिया है, जो क्रमशः कामदार कामी, कृपण और कन्यार्थी, इन सभी कारकों को दीपक की भाँति प्रकाशित करती है, अतः चमत्कार उत्पन्न हो गया है । इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण में भी "यथा लक्ष्य" के साथ ही उक्त अलंकार भी माना जा सकता है ।

15- विनोक्ति -

"बिना" शब्द के द्वारा जहाँ चमत्कार उत्पन्न किया जाता है ऐसे स्थल सुनने में बहुत सुन्दर लगते हैं कवि ने इसका प्रयोग बहुत ही उचित मात्रा में किया है -

शास्त्र बिना नहिं ज्ञान भय, ज्ञान बिना नहिं भक्ति ।
भक्ति बिना नहिं सत्य सुख , ताते सुनिय सुभक्ति[3] ।।

: : :

तप बिन होइ कि राज साज बिन होइ कि कारज ।
गुण कि होइ बिन टहल बिना गुण होइ कि धारज ।।
धन बिन मित्र कि होइ मित्र बिन होइ कि सदगुण ।
सिद्धि कि बिन विश्वास दास बिन मिटे कि आदुख ।।
जप बिन होत कि आत्मशुद्धता कि होइ बिन दान के ।
होत भक्ति पुनि मुक्ति कहुँ बिना भी भगवान के[4] ।।

उक्त उदाहरणों में "बिना" शब्द के प्रयोग के कारण ही चमत्कार आया है ।

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 7, पृ0 590

2- वही, चरितरामायन खण्ड, अध्याय - पृ0 611

3- वही, वही, अध्याय- 2, पृ0 20

4- वही, वही, अध्याय- 23, पृ0 206

उदात्त अलंकार -

पढ़े न क्यों विधि विनय, सीखु कत दरसा न देवे ।
जोव करे कत शोर, धर्म क्यों बरण न ले वे ।।
रहे न दूरि दिनेश, देव ऋषि स्वर ले गावे ।
बरुण सहित कुबेर , बेर कहि क्यों निकट आवे।।
बेद न बोले मंद मति, मातलि सभा न पद अहे ।
बैठि जासु ये बैठि सब, तब रावण कपि से कहे[1] ।।

17- अर्थान्तरन्यास -

इसके अनेक भेदों में से सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन दिखाकर कवि ने प्रायः इसके दो ही भेदों का प्रदर्शन प्रस्तुत किया है यथा -

जो सोवत रहें मणि धर्म, पुरुष बल के माहिं ।
ते पैहें सुख सातओ, विधि जु वाम क्यहि नाहिं[2] ।।

यहाँ विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन प्रस्तुत किया गया है ।

अरु कृतवीर्य दश गति जाई। सुता में नहिं सिन्धु समाई ।।
भरत साधु बहु रहे स्याने । लेउ राज्यपद पाय भुलाने ।।
विपिन जाको समुझि सुहाये । करन अकंटक राज्य सिधाये[3] ।।

x x x

रघुवीर प्रिय पुनि बंधु त्यहि बहु मोहि माया विपिन लौं ।
जे बहें सनमुख राम के तेउ तासु तन नाहीं लौं[4] ।।

18- अनन्वय -

इस अलंकार में असाधारण व्यक्तित्व को नापने का प्रयास किया जाता है कवि के आराध्य राम या कृष्ण ऐसे ही थे । अतः स्वल्प भाषा में

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड - अध्याय- 25 पृ0- 1012

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 13 पृ0 851

3- वही, वही अध्याय- 15, पृ0 884

4- वही, वही, अध्याय- 16, पृ0 902

कवि ने इसका भी प्रयोग किया है । उदाहरण यथा -

उपमा नाम कि नाम न जाना । गुहा भेद गुरु करहु बखाना ।।[1]

* * *

उन बाहु में करेउ न रोषा । गुण गवि कुसन छिपाये दोषा ।।

हरि को बात हरी ले बनाई । औरेहि में जरि उठो मनाई ।।[2]

इसमें अन्वय द्वारा कवि ने अपने आराध्य को ही सर्व श्रेष्ठ माना है ।

19- दृष्टान्त -

इस अलंकार में दुओं वस्तु के प्रतिबिम्ब दिखाने का प्रयास किया जाता है अतः इसमें चमत्कार निहित होता है । इसके कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं -

विद्याविद्या हरण चित, पहुत होत मन टूट ।

छूयो निकासन मीन को, छूटि जायो गुर ऊंट ।।[3]

* * *

कुटिल कुलछनाकुलो , राम तत्व जनि गाय ।

अन्धकार होरा परो, देई दुरि जाय ।।[4]

* * *

केहि सुख सम्पति लागि अब, राखौं सरल शरीर ।

सुरतरु त्यागि सेंध बबुर, को अस शठ रघुवीर ।।[5]

उक्त उदाहरणों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का सुन्दर प्रदर्शन किया गया है ।

20- उल्लेख -

एक ही व्यक्ति वस्तु या स्थान अलग- अलग दृष्टिकोणों से

- -

1- विश्रामसागर, हरिहरायन खण्ड, अध्याय- 6, पृ० 52

2- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9 पृ० 610

3- वही, हरिहरायन खण्ड, अध्याय- 32, पृ० 315

4- वही, वही, अध्याय- 47, पृ० 495

5- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 19 , पृ० 946

देखने पर इस अलंकार का प्रयोग होता कवि ने विशिष्ट स्थलों में इसके प्रयोग किए हैं। यथा -

पितुन सिद्धु कोविदन विराटा । भौजराज नृपु कालहि आटा ।।
योगिन तत्व वैष्णवन इष्टा । यामें कहो भावना निष्टा ।।[1]

x x x

यौगिन तत्व गुनन गुरु चेष्टा । बुध विराट भक्तन निज इष्टा ।।
सुरन नाथ असुरनु यमकाला । मित्रन सुहृद मनसिजवपु बाला ।।[2]

यहाँ एक ही राम को अनेक रूपों में देखने का वर्णन उल्लेख अलंकार को स्पष्ट करता है ।

21- विशेषोक्ति -

हेतु रहने पर भी जहाँ कार्य नहीं होता, वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है। यथा -

निरमल नीर भरा तब भै । भरत पियासन तेहि दिन रै ।।
तजि कुसंग एकान्त पलाये । द्वादश संयम नियम करो जै ।।[3]

x x x

जासु शक्ति ते चराचर, चलत बात हरियात ।
तासु पाणि गहि आँगुरी, अजिर चलावत मात ।।[4]

22- परिकरांकुर -

जहाँ पर साभिप्राय विशेष्य होता है वहाँ यह अलंकार होता है। इसके बहुत कम उदाहरण इन काव्य में मिलते हैं। यथा -

हो बकत बन्ध कुबत ताते हलधार समर्थ हू ।
सुनि जात वेदल नाम याते भये वेद स्वदर्थ हू ।

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 8, पृ० 598
2- वही, रामायण खण्ड अध्याय- 7, पृ० 773
3- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9 पृ० 614
4- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 4, पृ० 713

हरि चित्रभानु सुरेश अनल हिरण्यरेता राम हु ।
हो स्वर्ग के तुम द्वारदाता ज्वलन शिखि सुधाम हु[1] ।।

23- संदेह-

विश्रामसागर में इस अलंकार का प्रयोग न्यून मात्रा में हुआ है। यथा -
बकत न कर धर दहत तनु कटु कुठार कुठित भयो ।
किधौं क्रतो करुणा हिये को स्वभाव सो फिरि गयो[2] ।।

की पावन वसु वानि नवोला । प्रभु रिझावन को अबोलो ।
की शैशव को तरुण अवस्था । की अवनी को अम्ब विलस्था[3] ।।

x x x

किधौं विराट के मुरारि राजरोग वानि हु ।
निमित्त तासु वैद्य ज्यौं जयौ मृगांक ठानि हु ।।
मर्दित मंद राज को मनोज फागु खेलई ।
विराग धूल्य बोध को विनोद बांधु ठेलई[4] ।।

उक्त उदाहरणों में "किधौं" द्वारा संदेहालंकार की पुष्टि की गई है ।

24- प्रतीप -

इसके अनेक भेद होते हैं। सामान्यतया विपरीत उपमा होने पर 'प्रतीप' अलंकार का प्रयोग इस कवि ने किया है यथा -
रघुपति चरण निरखि वरनारी । हरषत भये सकल नर नारी ।
भरत भाव भणि सकत न शेषा । अपर कविहि अति अगम विशेषा[5] ।।
यहाँ उल्टी उपमा के कारण प्रतीपालंकार है ।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 3 ,पृ0 697
2- वही, वही, अध्याय- 8 , पृ0 791
3- वही, वही, अध्याय-19, पृ0 949
4- वही, वही, अध्याय- 22, पृ0 978
5- वही, वही, अध्याय- पृ0 881

25- पुनरुक्ति प्रकाश -

जहाँ एक ही शब्द दो बार आता है और अर्थ भी एक ही होता है किन्तु दोनों का अन्वय पृथक्- पृथक् वाक्यों में होता है, वहाँ यह अलंकार होता है ।

यथा - सुत सुत को सुता दीन्हीं । मात पिता की सेवा कीन्हीं ।[1]

राम अनन्त अनन्त गुन । कहहु होय जो सेष ।।[2]

उपर्युक्त अलंकारों से यह ज्ञात होता है कि कवि ने वृत्यनुप्रास, यमक, वीप्सा, रूपक, उपमा, अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त अलंकार का विशिष्ट प्रयोग किया है और इनमें भी सांगरूपकों की विशेषता सर्वाधिक उल्लेखनीय है ।

(ग) सांगरूपकों का विशिष्ट प्रयोग - प्रेरणा, उद्देश्य एवं प्रयोज्य स्थल -

उपमेय में उपमान का भेद रहित आरोप रूपक अलंकार कहलाता है वैसे तो इस ग्रन्थ में रूपक के पचीसों उदाहरण विद्यमान हैं और सामान्य सांगरूपक भी अनेक हैं किन्तु विशिष्ट सांगरूपक केवल तीन स्थलों में प्रयुक्त हुए हैं । प्रथम सांगरूपक का उदाहरण दृष्टव्य है -

[illegible] भरि तरनि सतसंगा । अर्थ गहिर अध्याय तरंगा ।।
कमल कलित सोरठा दोहा । भक्ति सुवास कीं अलि सोहा ।।
छंद विविध भांति के मीना । सोय सकल चौपाई दीना ।
राम नाम मुक्ताफल भाई । जासु आब त्रिभुवन महं छाई ।।
सज्जन हंस सुखद हरषाहीं । दुष्ट काग बक की गति नाहीं ।
नाना विधि इतिहास पुराना । सोह यहि बीच रत्न की खानी ।।
मन गिरि बासुकि सुरति लगावै । यहि विधि मथि सोइ जन पावै ।।
क्षमा शील संतोष विचारा । सोइ शमन भक्त करि आरा ।।

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 8 पृ0 600

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 1 पृ0 639

दो० उकित युकित औरेब धुनि, अर्थ भावना केर ।

अनुप्रास अन्वय जमक, जलचर, अगर अमेर ।।

बसत तहाँ श्री युत भगवाना । यामें राम सिया कर थाना ।।[1]

'विश्रामसागर' का यह एक रूपक जिसमें कवि ने ग्रन्थ को ही सागर का रूपक दिया है और सागर की अनेक विशेषताओं को इस ग्रन्थ में बताया है। यथा - यहाँ पर कवि ने अक्षरों को नीर, सत्संग को नौका, अर्थ को गहरे कुंड, अध्यायों को लहरें, कवित्त, सोरठा और दोहा को कमल, भक्त को सुगंध और संतों को भ्रमर के रूप में चित्रित किया है । इसमें छंदों को अनेक प्रकार की मछलियों के रूप में , चौपाईयों को सीपी के रूप में , रामनाम के मुक्ता के रूप में , सज्जनों को हंस के रूप में , दुष्टों को काग एवं बगुला के रूप में प्राचीन इतिहासों और पौराणिक कथाओं को रत्नों के रूप में माना है इसके रत्नों को निकालने के लिए मन को पर्वत, ध्यान को वासुकि सर्प को रज्जु बनाकर मन्थन करने का उपदेश दिया गया है । उस सागर में उसे कमाशाल, क्रोध तथा विवेक को मोह निद्रा भंग करने वाले प्रबाल बतलाया गया है । इसी प्रकार इस ग्रन्थ रूपी सागर में उचित , युक्ति औरेब ध्वनि, अर्थ, भावनायें, अनुप्रास, अन्वय, यमक आदि को जल जन्तु कहा गया है + और इस ग्रन्थ रूपी सागर में लक्ष्मी सहित भगवान का निवास माना गया है । इस प्रकार इतना बड़ा सांगरूपक प्रस्तुत करने में कवि ने जो मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है उसके लिए वह प्रशंसा का पात्र है । सांगरूपकों में कवि 'तुलसी' का अनुकरण प्रतीत होता है।"मानस " ने "मानस" को मानसरोवर का रूपक दिया गया है ।[2]

द्वितीय सांगरूपक-

सांगरूपक का दूसरा प्रयोग रामकथा रूपी चिन्तामणि का है जिसमें रामकथा में चिन्तामणि के समस्त गुणों का आरोप किया गया है -

धन्य धन्य तुम मुनि बड़भागी । पूछयो रामकथा अनुरागी ।।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2 पृ० 14- 15

2- रामचरित मानस, बालकाण्ड

रामकथा शुभ चिंता मनसी । दायक सकल पदारथ जननी ।।
मोह महातम अति करणीसी । अहंकार करि हरि हरणीसी[1] ।।
अभिमत फलप्रद देवधेनुसी । स्वच्छ करन गुरु चरण रेनुसी ।।

इसमें कवि ने रामकथा को सभी चिन्ताओं को नष्ट करने वाली तथा मोहरूपी अंधकार के नाश करने वाली एवं अहंकार रूपी हाथी के लिए सिंहनी के समान है कामधेनु के समान यह वांछित फलों को देने वाली है और हृदय को शुद्ध करने के लिए गुरु-पद-रज के समान है । "मानस" में भी रामकथा का रूपक "बालकाण्ड" में मिलता है, जो अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है ।

<u>तृतीय सांगरूपक-</u>

तृतीय सांगरूपक समर सरिता का है जिसमें सरिता की अनेक विशेषताओं को युद्ध में दिखाने की चेष्टा की है यथा -

ज्यहि ते बहुरि लयाये धायो शोणित की सरित अनायो ।।
रथ तुरंग भुज मीन समाना । सिर कच्छप गज ग्राह प्रमाना ।।
कच सेवार सम धनुष तरंगा । आयुध परे विटप जनु भंगा ।।
भंवर चर्म मणि कंकण भारी । प्रकटी सरि अस दृश्य निहारी ।।
दै दै ताल योगिनी नाची । प्रमथन की परवी सी माची[2] ।।

इसमें रथों को स्रोत, कवि को भुजाओं को मीन, सिरों को कच्छप-गज और ग्राह,केशों को सेवार, धनुषों को तरंग और अस्त्र - शस्त्र को कटे हुए वृक्षों के रूप में चित्रित किया गया है । ढाल, मणि और कंकड़ों को भंवर के समान अंकित किया गया है, जिसमें ताल देकर नाचने वाली योगिनियों को स्नान करने वाली तथा पर्वोत्सव मनाने वाली स्त्रियों एवं पुरुषों के रूप में चित्रित किया गया है । समरसरि का रूपक तुलसी की कवितावली लंकाकाण्ड में द्रष्टव्य है ।

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2 पृ0 21

2- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 10 पृ0 633

<u>चतुर्थ सांगरूपक-</u>

भक्तिलता रूपक भी अत्याधिक आकर्षक है इसमें कवि ने भक्ति रूपी लता के लिए सत्संग को जल, साधना को पल्लव , ज्ञान वैराग्य को बड़ी शाखायें और क्षमा आदि को छोटी शाखायें कहा है । हरि प्रेम का पुष्प आनन्द प्राप्ति को फल बतलाया है । जिसे माया रूपी अजा से बचाने की आवश्यकता बतलायी है यथा -

कुं0- भक्ति लता सतसंग जल, सनधा पल्लव पाय ।।
शाखा ज्ञान विराग गुरु, लघु क्षमादि समुदाय ।।
लघु क्षमादि समुदाय, प्रेम सो सुमन सुहावन ।।
हरि प्रापति फल मधुर, महा दुख दोष नशावन ।।
पुष्ट अजा ते रखिये, बड़े भये नहिं शक्ति ।
जीव रहै कर हमि कहै, कल्पलता हरि - भक्ति ।।[1]

इस तरह यह सांगरूपक अपने में बड़ा ही उत्कृष्ट है । "तुलसी" ने इस रूपक को नहीं अपनाया, अतः यह कवि की मौलिक कल्पना प्रतीत होती है ।

<u>प्रेरणा</u> - विश्रामसागर के रचयिता बाबा रघुनाथ दास रामसनेही के समक्ष "रामचरित मानस" राम भक्ति का एक आदर्श ग्रन्थ मुख्य रूप में रहा है।अतः समस्त ग्रन्थ में बीच-बीच में रामचरित मानस का प्रभाव व्याप्त है,जिसका विशेष विवरण इसी शोध- प्रबन्ध के दशम् अध्याय में किया जायेगा। अतः प्रतीत होता है कि मानस के वे सांगरूपक जो मानस साहित्य में विद्यमान है उदाहरणार्थ - ज्ञान दीपक, रामकथा सुरसरिता रूपक, उनसे इस कवि को भी सांगरूपकों के लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई है । सांगरूपक अभिनय के समीप होते हैं । जिस प्रकार तुलसी राम लीलाओं के भक्त थे उसी प्रकार रघुनाथ-दास जी राम लीलाओं के विशेष स्नेही थे । जैसा कि इनकी अयोध्या स्थित छावनी के महंतों एवं प्राचीन साधु पुरुषों से ज्ञात हुआ है[2] । अतः रामलीला

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय 38 पृ0 380

2- भेंटवार्ता, परमहंस श्री श्री 108 श्री रामशोभादास , अयोध्या ।

भी रूपक होने के कारण कवि के हृदय को प्रभावित करता रहा और काव्य के क्षेत्र में रूपकों की विशेषतः सांगरूपकों की रचना करने में उन्हें विशेष रुचि हो गयी ।

<u>उद्देश्य-</u>

सांगरूपकों की रचना करने में कवि का क्या उद्देश्य रहा है, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने विश्राम-सागर ग्रन्थ में सागर का जो आरोप किया है उसके माध्यम से उसने विश्राम सागर की विभिन्न विशेषताओं को दिखाने का प्रयास किया है। कवि यह दिखाना चाहता है कि इस ग्रन्थ में अनेक शंकाओं के लिए स्थान है, जिनका समाधान अपेक्षित है । दूसरी विशेषता यह है कि इस ग्रन्थ में सत्संग के महत्व को सविस्तार बतलाया गया है, जो मानव जीवन को [illegible] लगाता है । कवि यह भी कहना चाहता है कि इसमें अनेक अध्याय हैं और यत्र-तत्र अर्थगाम्भीर्य भी विद्यमान है । इसी प्रकार छंदों के विषय में संकेत करना चाहता है कि दोहा, सोरठा और कवित्त विशेष रुचिकर हैं । वह कहना चाहता है कि इसमें व्यापक रूप में भक्त की विशेषताएँ और संतों के अनेक भक्ति प्रसंगों का उल्लेख किया गया है । कवि ने अपने छंदों को विशेषतः चौपाइयों से अधिक सजाया है। और सर्वोपरि इस ग्रन्थ में व्याप्त होने वाले रामनाम के महत्व को अंकित किया है। इस ग्रन्थ में अनेक पौराणिक आख्यानों को भी विशेष महत्व दिया है । इसे समझने के लिए एकाग्र मन और साधना की आवश्यकता बतलायी है, जिससे क्षमा, शील आदि का उदय और मोह का विनाश सम्भव बताया है। वह अपने इस ग्रन्थ में उक्ति वैचित्र्य चिन्तन, वक्रोक्ति, ध्वनि, अर्थगाम्भीर्य भावुकता, अनुप्रास, अन्वय और यमक आदि अलंकारों के अस्तित्व को ही सिद्ध करना चाहता है । और अंत में इस रूपक का लक्ष्य यह बतलाता है कि यह रूपक लक्ष्मीनारायण या सीताराम का विश्राम स्थल है[1] ।

सारांश यह है कि इस सांगरूपक द्वारा कवि ने अपने काव्य

1- विश्रामसागर, , पृ0 15

ग्रन्थ विश्रामसागर की प्रमुख विशेषताओं को दिखाने का प्रयास किया है और वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल सिद्ध हुआ है ।

द्वितीय सांगरूपक "रामकथा" का है, जिसको कवि ने चिन्तामणि के रूप में स्थापित किया है । इसमें कवि का उद्देश्य निम्नलिखित प्रतीत होता है:-

कवि बतलाना चाहता है कि राम कथा से अनेक विपदाएँ नष्ट हो जाती हैं और सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति होती है। इससे मोह का नाश होता है, अहंकार का दमन होता है । समस्त अभिलषित फलों की प्राप्ति होती है और हृदय निर्मल हो जाता है ।

वास्तव में राम कथा ऐसी ही है तुलसी ने भी कहा है - रामकथा सुंदर कर तारी । संशय विहग उड़ावन हारी ।[1] इसके अतिरिक्त तुलसी ने भी राम कथा के विशिष्ट तत्वों का इसी प्रकार संकेत किया है ।

तृतीय सांगरूपक 'समर-सरिता' का है, जिसका उल्लेख रामचरित-मानस में भी किया गया है। वहीं से प्रेरणा लेकर कवि ने कृष्ण और जरासंध के युद्ध प्रसंग में इस सांगरूपक का प्रयोग किया है । इसके माध्यम से कवि बतलाना चाहता है कि कृष्ण और जरासन्ध के युद्ध में अनेक रथ, कटी हुई भुजाएं, छिन्न- भिन्न सिर, बिखरे हुए केश, टूटे हुए धनुष, अस्त्र- शस्त्र ढालें, मणियां, कंकण आदि बह रहे थे । सागर की भीषणता चित्रित करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है ।

चतुर्थ सांगरूपक भक्तिलता का है। इसमें कवि भक्ति के लिए सत्संग साधना, ज्ञान, वैराग्य , आत्मसंतोष, भगवत् प्रेम को भगवत् प्राप्ति का साधन मानता है; किन्तु इसको प्रारम्भिक रूप में माया की बाधाओं से सुरक्षित रखना चाहिए और जब वह भक्ति परिपुष्ट हो जाए तब माया उसे हानि नहीं पहुंचा सकती। वह एक अमर बेल के समान अकाट्य हो जाती है। अत: इस उद्देश्य को

- -

1- रामचरित मानस, बालकाण्ड, - तुलसी

प्राप्ति के लिए कवि का प्रयास विशेष सराहनीय है ।

प्रयोज्य स्तबक -

उपर्युक्त चारों नामिक्यकों के प्रयोज्य स्तबक दिखाए जा चुके हैं, जिनको यहाँ पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं है । ग्रन्थ के वैशिष्ट्य को बतलाने के संदर्भ में प्रथम स्तबक ग्रन्थ के सन्दर्भ में, द्वितीय स्तबक रामकथा के सन्दर्भ में, तृतीय स्तबक युद्ध के संदर्भ में और चतुर्थ स्तबक भक्ति के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है, जो अत्यन्त सार्थक है । इस प्रकार नामिक्यकों के प्रयोजन में भी कवि का वैराग्य-परक दृष्टिकोण उसके संत व्यक्तित्व के सर्वथा अनुकूल प्रतीत होता है और स्तबकों के माध्यम से प्रतिपाद्य विषयों में जो काव्यात्मक चमत्कार उत्पन्न हो गया है वह कवि की सहृदयता, बुद्धिमत्ता और भावुकता का प्रमाण है ।

(ख) अलंकारों के प्रयोग में कवि की मनोभूमि का अध्ययन -

भावोद्वेलन के अवसर पर हमारे मुख से जो शब्द निकलते हैं वे साधारण अवसरों पर कहे गए शब्दों से भिन्न होते हैं तथा उनके अर्थ में भी एक भिन्नता और रोमांचकता आ जाती है । शब्द और अर्थ की यही भिन्नता अलंकारों को जन्म देती है । इसलिए सिद्ध कवियों की रचना में भावावेग के अवसरों पर स्वतः ही अलंकार स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं और अपनी उपस्थिति से रचना के सौन्दर्य को बढ़ा देते हैं ।

अतः कवि को अलंकार शास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है । यदि उसे अलंकारों का ज्ञान तथा उनका प्रयोग करने का अभ्यास होगा तो वह काव्य रचना करते समय अपने ज्ञान तथा अभ्यास की सहायता से सुन्दर और संगत अलंकारों का अनायास ही प्रयोग करता चला जायेगा, और उसकी कृति सुन्दर और प्रभावशाली होती है[1]।

प्राचीन आचार्यों ने आवृत्ति, सादृश्य, वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति, क्रम आदि को ही अलंकारों का आधार माना था । ध्वनि की आवृत्ति प्रायः कर्ण-प्रिय होती है । अनुप्रास- अलंकार में यही ध्वनि की आवृत्ति चमत्कार

- -

1- भारतीय काव्य शास्त्र, पृ0 221, राजनाथ शर्मा

उत्पन्न कर देती है । शब्दालंकारों में प्राय: इसी आवृत्ति का ही सौन्दर्य रहता है । अर्थालंकारों में उपमा, रूपक आदि सादृश्य मूलक अलंकार हैं । इन अलंकारों में प्राय: किसी हीन या सामान्य वस्तु का उससे अधिक महत्वपूर्ण या विशिष्ट वस्तु से सादृश्य सिद्ध कर , उसके महत्व को बढ़ा, चमत्कार उत्पन्न कर दिया जाता है । प्राचीन आचार्यों ने इन्हीं तथ्यों को सम्मुख रखकर अलंकारों का विवेचन किया था । इसलिए इस विवेचन को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जासकता है ।

अब जनसाधारण की दृष्टि से भी अलंकारों के मनोवैज्ञानिक आधार पर विचार किया जा सकता है । भारतीय आचार्यों ने अलंकारों का निरूपण करते हुए मुख्यत: आवृत्ति, सादृश्य, अतिशयोक्ति, वक्रोक्तिक्रम आदि को ही आधार बनाया है । अनुप्रास, यमक,आदि शब्दालंकारों में आवृत्ति का ही सौन्दर्यबोध होता है । जो ध्वनि समान्यत: उपेक्षणीय होती है, वही बार-बार की आवृत्ति से सुन्दर एवं आकर्षक बन जाती है । उदाहरण के लिए घर्र- घर्र करने वाला खिलौना या"सी ई ई ई" सीईई" करने वाली सीटी के प्रति बच्चे इतने आकर्षित हो जाते है कि वे मीठी गोलियों को ठुकराकर भी इन्हें लेना पसन्द करेंगे । खिलौने या सीटी में आवृत्ति का जो सौन्दर्य है उसी का विकसित रूप अनुप्रासादि में मिलता है[1] ।

अलंकारों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्ता पर अत्यधिक विचार न करते हुए अब मैं अपने प्रतिपाद्य विषय का अध्ययन करूंगी कवि जो कुछ भी लिखता है उसमें जहाँ वह अपने वातावरण आनुवांशिकी आदि गुणों से प्रभावित होता है वहाँ उसका मानसिक स्तर भी अभिव्यक्ति का मुख्य कारण होता है । व्यक्ति को जन्म से कुछ मूल प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं । उसका प्रारम्भिक व्यवहार मूल-प्रवृत्यात्मक होता है । प्रत्येक मूल- प्रवृत्ति के साथ कोई न कोई संवेग जुड़ा रहता है । जब कई संवेग किसी एक वस्तु या विचार से सम्बद्ध हो जाते हैं तब एक संस्कार हमारे मन में उत्पन्न हो जाता है, संवेगों की सहायता से स्थायीभाव का निमार्ण होता है । स्थायीभाव को एक अर्जित मानसिक संगठन

- -

1- अलंकार सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त पृ0 51-डा0 गणपति चन्द्र गुप्त

या अर्जित संस्कार कहा गया है ।

उदाहरण स्वरूप एक सामान्य व्यक्ति को ही लीजिए जो व्यक्ति जिस विचारधारा का होगा प्रायः वह वैसी ही बातें करेगा और वैसे ही व्यक्तियों की संगति भी करेगा । इसी प्रकार यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किसी व्यक्ति से कहा जाए कि तुम स्वच्छन्द रूप से किसी भी प्रकार के सौ वाक्य लिखो । किन्तु उसे यह बात न बताई जाए कि इन वाक्यों द्वारा तेरी विचार धाराओं का और मानसिक चिन्तन का अध्ययन किया जाना है तो निश्चित रूप से वह ऐसे ही वाक्य बनायगा जो उसकी विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते होंगे । उसके मन में जो भाव विशेष रूप से जमे रहते होंगे उन्हीं उसके द्वारा निर्मित वाक्य अवश्य प्रभावित होंगे । इसी प्रकार यदि हम किसी पुस्तकालय में जाए तो यह देखेंगे कि जो मनुष्य जिस विचारधारा का है, अधिकांशतः अपने अध्ययन के लिए वह वैसी ही पुस्तकें लेता हुआ पाया जायगा, जिसमें उसकी विशेष रुचि होगी, उसकी मानसिक वृत्तियों को सन्तोष मिलेगा और चिन्तन को प्रौढ़ता मिलेगी ।

यही बात कवि के विषय में भी है । कवि उपमा उत्प्रेक्षाओं, रूपकों, साम्यमूलक और वैषम्यमूलक आदि विभिन्न अलंकारों के प्रयोग करने में जिस ढंग से अलंकारों का चयन करता है । इसके अध्ययन से उसकी विचार धाराओं का, मनोवृत्तियों का स्पष्ट पता चल जाता है ।
उदाहरणार्थ - जब हम बिहारी के ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं तब केवल उसके अलंकारों के द्वारा ही हम सहज में ही समझ लेते हैं यह श्रृंगारी कवि रहा होगा। इसी प्रकार तुलसी के अलंकारों का मानस माध्यम से अनुशीलन करने पर यह सहज में ही ज्ञान हो जाता है कि यह कवि जीवन मूल्यों से जुड़ता हुआ आदर्शों के प्रति जागरूक रहा है और राम भक्ति विषयक दृढ़ आस्था, इसके मानस में रहे हैं।

अस्तु उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यहाँ विश्रामसागर के कवि बाबा रघुनाथ दास रामसनेही के मानसिक धरातल का मूल्यांकन किया जा रहा

- -

1- शिक्षा मनोविज्ञान- स्वामी भाव, संकलयित, प्रिंटिंग, पृ0233-अंग्रेजी भारद्वाज

है जिससे यह निष्कर्ष निकल सके कि इस कवि का मानसिक धरातल कैसा था, चिन्तन पक्ष में वह किस प्रकार का था और उसकी भक्ति भावना सहज थी या आरोपित क्योंकि एक भक्त कवि के लिए उसके विचार, उसकी इच्छाएँ और समस्त मनोवृत्तियाँ उसी राग में रंगी हुई होनी चाहिए । कवि अपनी लोक भाषा को सर्वाधिक महत्त्व देता था । अनुवाद करने योग्य भाषा के विरुद्ध उसका कथन है :-

जो भाषा मानत नहीं , तो भाषा मति गाय ।
जो बोलै तो स्वानसम, उगिलि अन्न फिरि खांय ।।[1]

यहाँ पर "उपमा" द्वारा कवि इसी बात की व्यंजना करता है कि अपनी भाषा में ही रचना करनी चाहिए । जो लोग दूसरों की भाषा में लिखते हैं, उसमें अनुवाद करने की आवश्यकता होती है । अतः ऐसे लेखक श्वानवत् तिरस्करणीय होते हैं । इस प्रकार कवि देश भाषा का सच्चा भक्त प्रतीत होता है :-

भगवत चरित पियूषसर, नित नैवै जो कोइ ।
अन्त काल के समय में, तेहि उद्वेग न होइ ।।[2]

कवि सच्चा भक्त था, उसे भगवत् चरित्र अमृत के समान प्रिय था । इसी हेतु वह "उपमालंकार" द्वारा उसे सर्वाधिक महत्त्व देता है और मृत्युकाल में भी दुखाभाव को उसका फल समझता है । कवि भगवान् के सभी नामों का भक्त रहा है, किन्तु तुलसी की भाँति उसे राम नाम सर्वाधिक प्रिय था -

राका रजनी भक्ति तव, राम नाम सोइ सोम ।
अपर नाम उडुगन विमल, बसहु भगत उर ब्योम ।। (मानस,उ०)

तुलसी जू के इस सिद्धान्त को इस कवि ने भी इसी प्रकार चित्रित किया है -

सब नामन में रामनाम परकासक जिय जानु ।
जिमि नछत्र महँ चन्द्रमा, अरु ग्रहगन में भानु ।।[3]

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन काण्ड, अध्याय- 2, पृ० 18

2- वही, वही, अध्याय- 3 , पृ० 23

3- वही, वही, अध्याय- 6 , पृ० 55

यहाँ "उपमा" के माध्यम से कवि ईश्वर के सभी नामों में से "राम" नाम को अधिक महत्वपूर्ण एवं ज्ञान का प्रकाशक मानता है, जो एक सच्चे वैष्णव की मान्यता के अनुकूल ही है ।

काल सिंचानो सिर चढ़ो, तासि हो नहिं भेक ।
फूलो फिरै समुद्र में, करत कुकर्म अनेक ।।[1]

यह जीव इतना अज्ञान है कि उसे अपनी मृत्यु का बिल्कुल ध्यान नहीं है और अनेक कुकर्मों में व्यस्त हैं । कवि ने इस संसार को ही "सागर" माना है जिसमें डूब जाने का भय है और काल को "बाज" का रूपक दिया है । इस प्रकार रूपक-अलंकार द्वारा कवि ने काल का भय दिखाकर इस कुकर्मी जीव को सतर्क किया है । इस प्रकार कवि की मनोभूमि सुकर्म परक प्रतीत होती है ।

दारु नारि तन ममता डोरी । कर्म नचावत है बहु भौरी ।
दश इन्द्रीसुर निज निज ठौरा । बैठत यहाँ तहाँ बरजोरा ।।[2]

यहाँ पर शरीर को कठपुतली [illegible] बतलाकर इन्द्रिय देवताओं की शक्ति की प्रबल सिद्ध करते हुए उनसे सावधान रहने की व्यंजना की गई जो एक विरागी मन की प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल है ।

मुसत पाँच चोर कर दंगा । रहत सिद्ध है निशि दिन संगा ।।
जीव मुसत कैसे कहि जाई । जिमि पैसी बरवारे धाई ।।[3]

यहाँ पर काम, क्रोध,लोभ, मोह और मद को ही पंच चोर कहा गया है । यह कवि की दार्शनिक दृष्टि है ।

शोक समाज देखि सब परई । सुखी सो जो हरिपद मन भरई ।
दुख कर मूल मोह है रानी । सो तजि सपदि मानु मम बानी ।।

यहाँ पर दुखों का मूल "मोह" कहा गया है । काव्यलिंग के इस उपादान में भी कवि की मनोभूमि दार्शनिक ही रही है । मानस में भी "मोह" को सब

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-8 पृ0 115

2- वही, वही, अध्याय- 17, पृ0 158

ज्यों अपवित्र नीर मधु संगा । गंग मिलत पावन है गंगा ।
तिल संग फूल फुलेल कहायो । सौंधित भयो तेल जो आयो ।।
नीर छीर की संगति पाई । बनी मिटयो सोइ मोल बिकाई ।।
वृक्ष अनेक भाँति के होई । मलयागिरि संग चन्दन होई[1] ।।

यहाँ पर भी सत्संगति की महिमा कवि के मस्तिष्क में मुख्य रही है, जिसके लिए सुरा, फूल, नीर,वृक्ष, आदि में उदाहरण दिये गये है जो लोक जीवन में विशेष प्रसिद्ध है और अनेक कवियों द्वारा सत्संग की महिमावर्णन में प्रयुक्त होते आए है । "रामचरित मानस" में भी "सत्संगति महिमा नहिं गोई" आदि के रूप में सत्संगति के लिए ऐसे ही अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं ।

परत धार जिमि बधुर बनावै । होत युद्ध गढ़ नींव उठावै ।।
तथा तुम्हार मनोरथ कारन । अब कहि सों नहक मर्द हारन[2] ।।

यहाँ पर कवि का लक्ष्य यह है कि समय रहते सुकर्म कर लेना चाहिए, मृत्यु सन्निकट होने पर प्रयास करने से कोई लाभ नहीं होता । वर्षा के रोकने के लिए बधुल लगाना और युद्ध से रक्षा हेतु दुर्ग का बनवाना, ये दोनों उपमायें नवीन एवं मौलिक हैं । जो कवि के वैराग्य पूर्ण जीवन की अनुभूतियाँ हैं ।

भली वस्तु रघुनाथ सोइ, जो लागे हित श्याम ।
नतरु भई बादिहि गई, ज्यों पानी के दाम[3] ।

यह उपमा भी कवि के हृदय से निःसृत है । भगवत कार्य में जो वस्तु लग जाय, उसी की सार्थकता है, अन्यथा वह व्यर्थ है । यही तत्व इस कथन का मूल है । पानी के मूल्य जाना, उसका आशय भी व्यर्थ जाना है ।
रामविमुख सम्पति प्रभुताई । जाय रही पाई बिनु पाई (मानस)

- -

1- विश्रामसागर, रामायन खण्ड, अध्याय- 36, पृ0 390
2- विश्रामसागर, रामायन खण्ड, अध्याय- 43, पृ0 442
3- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 5, पृ0 571

जो नहिं जानत जासु गुन, तो वह निदरत नाहि ।
सब जग पूजहिं पतितहि जिमि, श्वान देखि धरि खाहि ।।[1]

यह उपमा भी कवि की अनुभूति-जन्य है । प्राय: कुत्ते महात्माओं को काटने दौड़ते है, उन्हें इतना ज्ञान कहाँ कि वे पूज्य हैं । यही बात खलों में भी लागू होती है ।

उठे मुनि सरसिज रवि देखी । जैसे सुजन सुजन कहं पेखी ।।
तिन पर मधुप करत गुंजारा । जनु तम लघु धरि शरण पुकारा ।।[2]

यहाँ साधु पुरुष साधु को देखकर प्रसन्न होता है, यह कवि के निजी-जीवन की भावना है और अज्ञान साधु का कुछ नहीं बिगाड़ सकता, यह भी उसकी अनुभूति है । उत्प्रेक्षा की नवीनता से लघुता या अज्ञान को भी शरणागत कराने की चेष्टा की है । इसी प्रकार खल भी साधु की शरण में आता है ।

अंकुर लता सोहत यहि भाँती । जिमि चातक चाहे जल स्वाती ।।
बन्दीगण बिरदावलि भाषैं । चातक टारि रहे अभिलाषैं ।।[3]

चातक और स्वाती का प्रेम प्रसिद्ध है । राम के सेवकों की निश्छल स्नेह वृत्ति कवि की मान्यता है । इसी भावना से प्रेरित होकर कवि ने लक्ष्मण-आदि बन्धुओं और विभीषण तथा सुग्रीव जैसे मित्रों के निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति करने के लिए उक्त उपमा दी है । राम भक्तों का स्नेह निश्छल होता है, यही कवि की वास्तविक मानसिकता है ।

अब शुभ नहिं बरात आइ गुन परखिये ।
पुनि नृप मुद धरा सबुरी सो कैसे वरषिये ।।
जिमि साधु के क्षेम छीन सब से लये ।।
है प्रसन्न तिन सहित ज्ञान कैसो दये ।।[4]

1- विश्रामसागर, कृष्णायन काण्ड, अध्याय- 10 पृ0 635
2- वही, रामायण काण्ड, अध्याय- 6, पृ0 740
3- वही, वही, अध्याय- 6 , पृ0 740
4- वही, रामायण काण्ड, अध्याय- 9, पृ0 796

यहाँ लोक जीवन की नवीन उपमा प्रशस्त है, जिसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि सामन्ती प्रथा से परिचित था, जहाँ शासक के प्रसाद एवं अप्रसाद पर जागीरें छीनी जाती अथवा प्रदान की जाती थीं। इसमें भी उधर राम लक्ष्मण विषयक वात्सल्य की भावना प्रखर रही है।

तिन संग सुन्दरि एक ऐसि, लखि लाजत जगीव ।
धारि सुमन धन धारि पशु विहंग धारि सुतिदेव ।।[1]

यहाँ व्यतिरेक द्वारा कवि ने कमल, कुन्द, कुमुद बन्धूक, अनार, बेल, कदली बिम्बफल मृग, गज, सिंह, कामधेनु, खंजन, कोकिल, कीर, हंस, चन्द्र, चपला, विद्यु मेघ, आदि शंकित सभी को निम्न बताकर सीता जी के अनुपम सौन्दर्य की कल्पना की है। "जगत जननि अतुलित छवि भारी, मानस का यही प्रभाव रहा है।

सुदिन सेक अमादि सुर, सो इक दिन मरि जात ।
गज श्रुति सम नर आयु यह, ताकी कौन बिसात ।।[2]

यहाँ पर जीवन की नश्वरता का सिद्धान्त कवि का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। गजश्रुति की उपमा नवीन है। सम्भव है महन्ती जीवन में कवि को हाथी पर सवार होने का अवसर अनेक बार मिला है, अतः हाथी की श्रवण चंचल की क्षणिकता का ज्ञान उसकी मनोभूमि के रूप में बना रहा है।

जैसे महदाकाश से, घटाकाश को भेद ।
तैसे मिटे उपाधि के, जीवन ब्रह्म निरभेद ।।[3]

जीव और ब्रह्म का औपाधिक भेद और वस्तुतः अभेद का सिद्धान्त "अद्वैत दर्शन" में स्वीकृत है। यही कवि का अध्ययन ही मनोभूमि का निर्माता है। वैरागी जीवन में दर्शन का यह प्रभाव बराबर बना रहा है वैष्णव होने के नाते कवि सच्चा दार्शनिक था। उनके जीवन का अध्ययन करने से भी पता चलता है कि वे सभी जीवों को समान मानते थे, समान्यता ही उक्त उपमा के सृजन में पृष्ठ भूमि बन गई है।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 13, पृ0 856
2- वही, वही, अध्याय- 14, पृ0 866
3- वही, वही, अध्याय- 17, पृ0 917

तेहि तर ताकयौ काल सम, अजगर छाँड़ी नाहिं ।
तब गहि दुवौ बारसन, लटकि रहा तेहि माहिं ।।[1]

कवि भक्त एवं दार्शनिक था । वह समझता था कि संसार एक विशाल वृक्ष है, जिसके नीचे काल एक अजगर के समान छिपा हुआ है, जो इस मानवरूपी-पक्षी को छोड़ नहीं सकता । अतः मृत्यु की अनिवार्यता को ध्यान में रखकर अभी से सचेत होना आवश्यक है । उपमालंकार द्वारा अपने इसी मन्तव्य को कवि ने व्यक्त करने की चेष्टा की है ।

प्रेमिहि मरन न लखि परे, को हरषि तनु अर्पै ।
जिमि गज कुरंग पतंग अलि, झष पिक परिवा सर्पै ।।[2]

यहाँ पर कवि ने प्रेम में प्राण न्योछावर करने वाले, गज, मृग, पतिंगा, भ्रमर मीन, कोकिल आदि के उदाहरण देकर ईश्वरीय प्रेम की सफलता पर बल दिया है । इसके मूल में कवि की ईश्वर विषयक "रति" ही प्रधान प्रतीत होती है ।

मित्रहि सेन न मित्र किय, वैसी करै बिगार ।
जिमि गृह जारे अग्नि पुनि, होत अग्नि सों प्यार ।।[3]

यहाँ पर अपकारी मित्र से भी मित्रता का त्याग न करना चाहिए, मैत्री के इस आदर्श को कवि ने पुष्ट किया है और कदाचित् अपकारी मित्रों का कटु अनुभव भी उसे अवश्य हुआ होगा ।

अवलोकि सुत वर अद्भुत आनन्दवश जननी भई ।
जिमि मूक पावै वाक्य पारस रंक अंधा जी भई ।
मिलि करैं लौकिक रीति सब कुल वधूगण मंगलावहीं ।
सुर पितर आदि पुजाइ माँगीं नीक सकल रहावहीं ।।[4]

यहाँ पर मूक को वाणी, रंक को पारस और अंधे को आँख की प्राप्ति का

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 23, पृ0 996
2- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9, पृ0 617
3- वही, वही, अध्याय- 9 पृ0 617
4- वही, रामायणखण्ड, अध्याय- 11, पृ0 824

निदर्शन लोक जीवन की अनुभूति से प्रेरित है ।

> कीन्हें याचक सकल सुखारी,
> यथा जलद दे जीवन वारी[1] ।।

बादलों द्वारा जल दिये जाने पर कृषक की प्रसन्नता भी लोक जीवन की प्रेरणा का प्रसाद है ।

<u>निष्कर्ष</u> -

इन अलंकारों के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव है कि कवि ने अधिकांश उपमाएं, उत्प्रेक्षाएं, रूपक एवं अन्य अलंकारों को भक्ति, ज्ञान दर्शन एवं विरक्ति के पथ से युक्त है, + जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का मानसिक स्तर पर्याप्त निर्मल और विशुद्ध रहा है।उसका चिन्तन भगवद्-भजन, लोकसेवा, परोपकार एवं व्यापक आदर्शों के प्रति समर्पित रहा है । वह एक निष्ठावान् एवं सद्विचार प्रधान व्यक्ति प्रतीत होता है जिसकी इच्छाएं शान्त हो चुकी हैं, विचारों में चराचर के प्रति साम्य स्थापित हो चुका है। वह परम् धार्मिक वैष्णव है, जो धर्म के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित है।न तो उसके मन में कोई अन्तर्द्वन्द्व है, न कोई ऐसी छटपटाहट है, न कोई आत्मग्लानि है । वह अपने भावों और विचारों द्वारा भक्ति भावना के सागर में आकंठ मग्न प्रतीत होता है । अपनी भावनाओं एवं विचारों के प्रति कवि जितना अधिक ईमानदार, विश्वसनीय एवं दृढ़ तथा स्थिर प्रतीत होता है , वह अपने में एक आदर्श है । यही इस अध्याय का अन्तिम निष्कर्ष है ।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 10, पृ० 81।

अध्याय - 5

चिदम्बरा में गुण, रीति, ध्वनि

किसी ग्रन्थ का काव्य शास्त्रीय विश्लेषण करने में रस का प्राधान्य तो रहता ही है, क्यों कि रस तो काव्यात्मा है। जिसको आचार्य भरत-मुनि से लेकर विश्वनाथ, पंडित राज जगन्नाथ और डॉ० नगेन्द्र ने भी स्वीकार किया है । किन्तु जिस प्रकार वीरता, उदारता, त्याग आदि गुणों से मनुष्य की आत्मा का उत्कर्ष प्रकट होता है उसी प्रकार माधुर्य, ओज आदि गुणों से काव्य की आत्मा अर्थात् रस का उत्कर्ष होता है। गुण रस के धर्म है । गुणों की स्थिति रस में रहती है इसलिए गुणों को काव्य का अन्तरंग कहा जाता है। गुण सरस काव्य में ही माने जाते हैं, नीरस में नहीं। गुण में युक्त काव्य सरस होगा ही । जिस प्रकार वीरता , दया आदि गुण चेतन आत्मा के गुण शरीर के नहीं उसी प्रकार गुण रस में रहते हैं वर्णों में नहीं। अलंकारों की स्थिति शब्द और अर्थ में होती है। इसलिए उन्हें काव्य का बाह्य माना जाता है। जो वस्तु रस के आन्तरिक भाव के उत्कर्ष को बढ़ाती है उसे गुण कहते हैं । काव्य के गुण क्या हैं ? उनकी क्या विशेषता होती है, इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है । आचार्य वामन के अनुसार काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को गुण कहा गया है[1] इस प्रकार गुण रस का उपकारक होता है उसको शोभा प्रदान करता है और उसका स्थायी धर्म है। आचार्य मम्मट ने भी गुणों को रस का धर्म बतलाते हुए लिखा है -

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥ 66[2]

अर्थात रस अंगी है जिस प्रकार शौर्य आदि आत्मा के गुण होते हैं उसी प्रकार काव्य में शृंगारादि रस के धर्म गुण कहलाते है। ये रस के उत्कर्ष के हेतु होते हैं । इस प्रकार गुण की यह परिभाषा हुई । जो रस के धर्म होते हुए

1- काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः " काव्यालंकार सूत्र ।

2- काव्य प्रकाश, अष्टम् उल्लास श्लोक- 66 पृ० 406

भी रस के उत्कर्ष विधायक होते हैं उन्हें गुण कहते हैं । उनकी अचल स्थिति होती है । वे रस के बिना स्थित नहीं रह सकते यद्यपि ये गुण रस के धर्म है किन्तु समुचित वर्णों के माध्यम से ही इनकी व्यञ्जना होती है । ये वर्ण मात्र के आश्रित नहीं होते । गुणों में और अलंकारों में यही अन्तर है कि गुण नित्य वृत्ति है और अलंकार संयोग वृत्ति से रस की सहायता करते हैं । यद्यपि प्राचीन-आचार्यों ने गुणों की संख्या दस मानी है,[1] किन्तु आचार्य मम्मट ने उक्त दस की संख्या का खंडन करते हुए माधुर्य, ओज और प्रसाद, इन तीन गुणों की ही मान्यता दी है और इन्हीं के अन्दर सभी गुणों का अन्तर्भाव किया है । गुणों की संख्या - भरत और वामन ने गुणों की संख्या दस मानी है परन्तु आचार्य-मम्मट ने इन्हें तीन गुणों के अन्तर्गत समाहित किया है - इनका सम्बन्ध चित्त-वृत्तियों से है[2] ।"

अब क्रमशः तीनों गुणों का उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत है -

1- माधुर्य गुण -

आचार्य मम्मट के अनुसार जिस गुण के कारण रचना में अन्तःकरण को आनन्द से द्रवित करने की क्षमता उत्पन्न होती है उसे माधुर्य गुण कहते हैं। यथा -

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्[3] ।। 68

यहाँ पर "आह्लादकत्व" का अर्थ आनन्द स्वरूप है, जिसकी संयोग शृंगार में महत्व मिलता है, क्यों कि शृंगार आह्लाद स्वरूप होता है । माधुर्य में सहृदय ही चित्त द्रवित हो जाता है और रोष आदि के काठिन्य का निवारण हो जाता है । करुण रस, विप्रलम्भ में और शान्त रस में चित्त की द्रवणशीलता अधिक होती है, अतः इन्हीं रसों में माधुर्य गुण होता है । किन्तु इसके व्यञ्जक वर्ण होते हैं। माधुर्य गुण में टवर्ग अर्थात ट,ठ,ड,ढ वर्जित हैं । प्रत्येक वर्ग के

- -

1- काव्यालंकार सूत्र

2- श्लेषःप्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता। अर्थव्यक्तिरुदारत्व मोजः कान्ति समाधयः: इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दश गुणा स्मृताः- मम्मट

3- काव्य प्रकाश- अष्टम् उल्लास- मम्मट श्लोक 68

पंचम वर्णों में संयोग से निर्मित शब्द भी न होना चाहिए । उसमें अल्प समासों का होना सम्भव होता है और मूर्धन्य वर्ण भी वर्जित है। रकार भी नहीं होने चाहिए । मम्मट के अनुसार माधुर्य का लक्षण इस प्रकार है -

मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ,
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा[1] ।। 74

विश्रामसागर में माधुर्य गुण के अनेक सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं, क्यों कि यह शान्त रस प्रधान ग्रन्थ है और बीच- बीच में शृंगार रस एवं करुण रस का भी अस्तित्व पाया जाता है । यहाँ पर इस ग्रन्थ के माधुर्य गुण प्रधान पाँच उदाहरण प्रस्तुत हैं -

अरुण अधर दाड़िम दशन, रसन चारु मृदु हास ।
है हरि कारु अवलोकिये सो, शशिकर सरिस प्रकाश[2] ।।

यहाँ पर माधुर्य व्यंजक पंचम वर्णों एवं कोमल दन्त्यवर्णों के प्रयोग से माधुर्य गुण परिपूर्ण मात्रा में विद्यमान है, जो भक्तिरस के सर्वथा अनुकूल है । इसी प्रकार कोमल रकार और णकार भी लघु हैं, जो माधुर्य के ही व्यंजक हैं । अर्थ की मधुरता के साथ रस के माधुर्य का योग इन्हें विषय को विशेष सरस बनाने में सक्षम सिद्ध हुआ है ।

छम छम्म छमकें कुरत चमकें फुरकि झमकें पग धूमें ।
भ्रातादि नवीने कुँवर छवीले धनु शरकीने चढ़ि घूमें ।।
गज रथ बहुतेरे अश्वन केरे पुष्प घनेरे अति सोहें ।
सुखमाल अपारा सुभग सवारा परे बहारा मन मोहें[3] ।।

यहाँ पर नाद सौन्दर्य वर्ण मैत्री का चमत्कार कोमल और मधुर वर्णों के सानुकूल प्रयोग से माधुर्यगुण की सफल व्यंजना हुई है । इस प्रकार वात्सल्य जैसे कोमल और

- -

1- काव्य प्रकाश , मम्मट, अष्टम उल्लास, श्लोक-74 पृष्ठ 99

2- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 22, पृ0 983

3- वही, वही, अध्याय- 9 पृ0 799

सुखद वातावरण के अनुकूल ही गुणात्मक चमत्कार भी है ।

मणि कंठ उर बनमाल वर सिर मोर मुकुट विराजहीं ।
पटपीत किंकिणि काछनी कटि काम कुंज छाजहीं ।।
अंग अंग प्रति बहुविधि विभूषण अमल अवतन लाजहीं ।।
पदकंज नूपुर वेणु कर मुख पान भर छवि छाजहीं[1] ।।

इस प्रसंग में भी कोमल और मधुर वर्णों के योग से माधुर्य गुण की सृष्टि की है । अनुस्वार वर्णों की मधुरता का कहना ही क्या है । श्रीकृष्ण के इस मधुर-रूप के वर्णन के उपयुक्त ही वर्ण हैं और वैसा ही माधुर्य गुण भी ।

त्रिभुवन शोभा सदन के सिंहासन श्रीराम ।
बैठे श्रीसीता सहित, मानो रतियुत काम ।।
मानो रतियुत काम, किधौं श्रीयुत भगवाना ।।
किधौं तड़ितयुत मेघ, किधौं गिरायुत बाना।
किधौं सिद्धियुत बुध रवि, कान्ति लतायुत सिन्धु ।
छवि शृंगारकुल कीर्ति सहित, बैद उचारैं सिद्ध[2] ।।

यहाँ पर भी राम और सीता के अद्भुत सौन्दर्य के वर्णन के लिए कवि ने कोमल मधुर नादात्मक वर्णों के प्रयोग से माधुर्यगुण का स्वाभाविक चमत्कार उत्पन्न किया है जो युगलछवि के सुन्दर रूप की व्यंजना करने में सफल सिद्ध हुआ है ।

कदलि जंघ युग पदक नूपुर अनमोल ।
पुरट पदुम के कलिन में जनु अलिगन बोल ।।
अरुण चरण सिर विद्युत युगपद जन आभ ।
श्याम रकत हरि ललनि जनु बैठे जलजाभ[3] ।।

यहाँ शृंगार रस के उपयुक्त कोमल मधुर और लघुवर्णों का प्रयोग "माधुर्यगुण" का संचारक है । वर्ण मैत्री भी माधुर्यगुण की अभिवृद्धि में योग दे रही है ।

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 6, पृ० 377
2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 30, पृ० 10,74,75,
3- वही, वही, अध्याय- 30, पृ० 1081

2- ओज गुण -

आचार्य मम्मट के अनुसार ओज गुण का लक्षण यह है कि चित्त के विस्तार रूप दीप्ति का जनक ओज गुण कहलाता है।[1] चित्त की यह दीप्ति उमंग और उत्साह के संचार से उत्पन्न होती है। टीकाकार ने प्रदीप टीका में लिखा है कि जिसके कारण मन प्रज्ज्वलित सा हो जाए उसे ओज कहते हैं।[2] किन्तु वीभत्स में जुगुप्सा विषय के अत्यन्त त्याग की इच्छा उत्पन्न होती है अतः इसमें चित्त की दीप्ति का अधिकार होता है और इससे भी अधिक रौद्र रस में। इसीलिए चित्त अधिक दीप्ति का अधिकृत होता है कि इसमें अपकार करने वाले के वध तक का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार वीर रस में 'तितिक्षा' रौद्र में 'जिघांसा' होती है। इनमें उत्तरोत्तर चित्त की दीप्ति अधिक होती है।

विश्रामसागर में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पर युद्धों के वर्णन है और भीषण मार - काट के कारण वीभत्स के भी चित्र उपस्थित किए गए हैं और वीरों के संहार में या अन्य क्रोध के प्रकरणों में रौद्र के चित्र भी मिलते है। अतः इस ग्रन्थ में ओज गुण के भी पर्याप्त उदाहरण प्राप्त हैं। ओजगुण के व्यञ्जक वर्णों के विषय में आचार्य मम्मट का कथन इस प्रकार है:-

योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ॥[3]

तात्पर्य यह है कि वर्गों के आदि वर्ण "क, च, ट, त, प," तृतीय वर्ण "ग, ज, ड, द, ब," सहित द्वितीय और चतुर्थ वर्ण का यथेच्छ सम्बन्ध तथा "र कार" के योग होने पर और तादृश किन्हीं दो के योग होने

- -

1- दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति- 69 काव्य प्रकाश

2- काव्य प्रकाश पृ० 476 मम्मट

3- काव्य प्रकाश मम्मट सूत्र -100 श्लोक- 75

पर जिनमें टकार आदि हों, शकार और षकार यह वर्ण हों, लम्बे समास हों और क्लिष्ट रचना हो उसे ओज गुण कहते हैं । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

लखि दनुज करिकै क्रुद्ध । लागी करन तहँ युद्ध ।
प्रकटी दशौ दिशि आगि । कित जाहिं दानव भागि ।।
धमि भौंर सब धरि धार । निकसी सुगन्ध अपार ।।
भा शकुन इन्द्रहि नीक । आये गुहा नजीक ।।
किधौं कन्दरा परवेश । सुर नारदादि गणेश ।
देखी सबै जगमात । बैठी प्रफुल्लित गात ।
बास ब ललित अनुराग । अस्तुति करन सब लाग ।।[1]

उक्त उद्धरण में वर्ग के प्रथम तथा तृतीय वर्णों का बाहुल्य है, चतुर्थ वर्ण, संयुक्तवर्ण रवर्गादि के कारण प्रसंगानुकूल "ओज" गुण की परिपुष्टि हुई है ।

रे नृप बालक मद देखु परशा की ओरा ।
ज्वालिके अधि बहु भूप छीनि छोनी अजोरा ।।
को जाने के बार सौंपि विप्रन कहँ दीन्हीं ।
तोको बालक समुझि ढील यतनी हम कीन्हीं ।।[2]

यहाँ पर टवर्ग, षकार, चतुर्थवर्ण जैसे उक्त वर्णों का प्रयोग ओज गुण का व्यंजक है, जो सम्वाद के अनुकूल ही है परशुराम की कोपपूर्ण उक्ति में रौद्र रस है, जिसका गुण "ओज" होता है, अतः गुण का विन्यास औचित्यपूर्ण है ।

जयति श्रीवातजात विख्यात बल विपुल घन बाल रवि गाल धर्ता ।
लोक लिपिकली श्रुति शास्त्र विशद निपुण निरखि संसार मतिभार हर्ता ।।
जयति भयदंग रणरंग अरि भीम कुल कर्म नहिं धर्म कुशल दास ।
सत्य सुग्रीव सुख हेतु वृषकेतु वपु वचन मन काय रघुनाथ दास ।।[3]

1- विश्रामसागर, हरितालायन खण्ड, अध्याय- 30 पृ0 291

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 8 पृ0 787

3- वही, वही, अध्याय- 22 पृ0 980

यद्यपि यहाँ हनुमान जी की स्तुति का प्रसंग है, किन्तु यह वीररस की व्यंजना है, जिसमें उनके वीर रूप की अभिव्यक्ति के लिए कठोर तथा ओज प्रधान पदावली ही उपयुक्त प्रतीत हुई है । इस प्रकार वीररस की व्यंजना के अनुकूल ओजगुण का प्रकटीकरण सर्वथा उचित प्रतीत होता है ।

तब अंगद करि कोप, पटक दोउ भुज महि दीन्हे ।
गिरत अधर मुख कूट, मुकुट कर मैं गहि लीन्हे ॥
फेरे प्रभु के पास, भये पवनज गहि आगे ।
भूरि भानु सम तेज, तरकि कपि देखन लागे ॥
राम विभीषण के निकट, भूमिका किए सँवार नित ।
देखि देव बोले विमल, जय वानरकपिपति प्रबल चित[1] ॥

यहाँ पर कोप के प्रसंग में रकार , णकार, टवर्ग, चतुर्थवर्ण आदि कठोर वर्णों के प्रयोग से "ओज"का सफल प्रदर्शन किया गया है जो सर्वथा उचित प्रतीत होता है ।

रनराज जोरिहिं करि कुमुद रनधुत संक अस उठती न्वयँ ।
फुटपाककरि सुरपतिहि देतो भये अस उठती सवयँ ॥
सुर नाग नर दिक्पाल सब जगजाल देखि करतल अहैं ॥
त्याहि शाखी करि राखि जीवन मरण दोनों ध्यान रहैं[2] ॥

यहाँ पर रकार, णकार, टकार, मकार, तथा संयुक्त वर्णों के कारण "ओज " गुण सफल है । अतः ओज का रसानुकूल प्रयोग उचित प्रतीत होता है ।

प्रसाद गुण -

जिस गुण के कारण किसी रचना का अर्थ तुरन्त स्पष्ट हो जाए उसे प्रसाद गुण कहते हैं इसका सम्बन्ध सभी रसों से होता है एक अन्य आचार्य के अनुसार सुनने मात्र से अर्थ का बोध कर देने वाले सुकुमार अथवा विकट वर्णादि प्रसाद गुण के व्यञ्जक होते हैं । आचार्य मम्मट ने भी यही बात कही है-

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 25, पृ0 1020

2- वही, वही, अध्याय- 22, पृ0 975

साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ॥[1]

आचार्य ने इस विषय में लिखा है कि जिस प्रकार अग्नि शुष्क ईंधन को प्राप्त करते ही शीघ्र ही फैल जाती है अथवा जैसे स्वच्छ जल, स्वच्छ वस्त्र को तुरन्त आत्मसात कर लेता है, उसी प्रकार जो गुण चित्त को सहसा ही व्याप्त कर लेता लेता है, उसे प्रसाद गुण कहते हैं। विशेषता यह है कि वीर रस, रौद्र रस और वीभत्स आदि में अग्नि का दृष्टान्त और शृंगार करुण आदि रसों में स्वच्छ जल का दृष्टान्त अधिक संगत होता है। जिस गुण के कारण रस सहसा ही चित्त को व्याप्त कर लेते हैं, उसे प्रसाद गुण कहते हैं। यह गुण सम्पूर्ण रसों में और सभी रचनाओं में हो सकता है।

जिस प्रकार पके हुए अंगूर का रस बाहर से झलकता है, उसी प्रकार प्रसाद गुणयुक्त कविता का भावार्थ शब्दों में झलकता है। उसके हृदयंगम होने में देर नहीं लगती। प्रसाद गुण सभी रसों में हो सकता है और इसकी अवस्थिति सभी रचनाओं की विशेषता हुआ करती है। 'विश्रामसागर' एक प्रसाद गुण सम्पन्न रचना है, अतः सर्वाधिक प्रसाद गुण के उदाहरण इसमें विद्यमान हैं। यथा -

यहि भाँति बराता सजिके साता चली समाता नाहिं मन में ।
सुनि सुनि नर धावहिं देखन आवहिं शीश नवावहिं नृप मन में ॥
जे सगुन अनंता हित भगवंता सुर मुनि संता तिन माहीं ।
गुरु सहित नरेशा मनहुँ सुरेशा लसत विशेषा लघु नाहीं ॥[2]

यहाँ बारात जैसे मांगलिक प्रसंग में कवि ने समास रहित, कोमल एवं सरल तथा स्पष्ट-शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे प्रसाद गुण की सफल व्यंजना हुई है ।

अति मुदित चली बरात बालक साजि बाल नचावहीं ।
मग लोग लखि रघुनाथ छवि निज जन्म को फल पावहीं ।
यहि भाँति करत निवास कछु दिन अवध पहुँचे आइकै ।
पुर [illegible] नारि नर सुनि सकल जहँ तहँ चले देखन धाइकै ॥[3]

1- काव्य प्रकाश, मम्मट, श्लोक- 76 सूत्र 101
2- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय-9, पृ० 800
3- वही, वही, अध्याय- 9, पृ० 823

यह प्रसंग भी बारात का है, जिसमें सरल शब्दावली अपने स्वाभाविकरूप में अर्थ व्यक्त करती प्रतीत होती है । यहाँ में न क्लिष्टता है, न कृत्रिमता। इस प्रकार "प्रसादगुण" स्पष्ट है ।

सुन समान कन्या मिले, तुम समान जामात ।
यह वर दीजे कृपा करि, और न चहिय तात [1] ।।

इस प्रसंग में भी सरलता से अर्थ की अभिव्यक्ति के कारण "प्रसाद गुण" स्पष्ट है ।

लखि रावण हिय हारि, आपु उठि कपिहि पुचारयो ।
परम कुशल तेहि देखि, वचन युवराज उचारयो ।
मम पद परे न ठीक, गहो किन हरि पद जाई ।
सुनि सिंहासन त्यागि, बैठ मन माहिं लजाई ।
कहेसि जनिमन ते डरे, यहाँ नाहिं डारत बाउ बर ।
हँसि कपि कुम्भकरण मिल, बहिके पाम्यो उडाइ अर [2] ।।

यद्यपि यहाँ ओज का प्रसंग है, परन्तु स्पष्टार्थ की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने सरल और सुव्यवस्थित पदावली का प्रयोग करके "प्रसाद गुण" की व्यंजना की है ।

सब विधि सबहि प्रसन्न करि, बोले मुनि से राम ।
विपति मांझ ये सखा सब, आये मेरे काम ।
आये मेरे काम, नाम जिन केर बतायो ।
तिन जो कीन पुरुषार्थ, तासु सह प्रीति सुनायो ।
भरतहु ते मोहिं अधिक प्रिय, देहुँ कहा अस कवनि निधि ।
लखन चरित कर कहऊँ जिन, सेवा कीन्हीं सकल विधि [3] ।

यहाँ राम के प्रसन्न भावों की प्रसादमयी झाँकी प्रस्तुत करने के लिए कवि ने सरल, सुन्दर, स्पष्ट और मधुर पदावली का प्रयोग करके "प्रसाद गुण" की मंजुल अभिव्यक्ति

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, पृ0 282, अध्याय- 27

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 25, पृ0 1021

3- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 30, पृ0 1079

की है, जो राम जैसे कृपालु पात्र के सर्वथा अनुकूल हैं । राम का सरल व्यक्तित्व उनका गुण है, उस गुण की व्यंजना ऐसी ही पदावली की अपेक्षा करती है ।

इस प्रकार गुणों की दृष्टि से विश्रामसागर में प्रसाद गुण का आधिक्य स्पष्ट है क्यों कि कवि एक साधु पुरुष था वह अपने काव्य विषय को सीधे - सादे सरल शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना चाहता था और सामान्य जनता के लिए भक्ति और ज्ञान का उपदेश देना चाहता था । इसलिए जानबूझ कर उसने प्रसाद गुण का प्रयोग अधिक-मात्रा में किया है । जहाँ तक माधुर्य गुण का प्रश्न है इसका क्रम प्रसाद के पश्चात् आता है, किन्तु भक्ति के सन्दर्भों में स्तुतियों और राम तथा कृष्ण के रूप सौन्दर्य आदि के चित्रण में कवि ने माधुर्य गुण का पर्याप्त प्रयोग किया है । अतः इस रचना में स्वभावतः मधुरिमा का अस्तित्व उपस्थित हो गया है । यत्र- तत्र जहाँ पर क्रोध युद्ध आदि के उत्तेजक अंश आये हैं वहाँ ओज गुण का भी प्रयोग किया गया है, किन्तु समस्त ग्रन्थ में ओज गुण का तृतीय स्थान ही सिद्ध होता है, क्यों कि भक्त कवि उत्तेजना के पृथक प्रवाह में बहना नहीं चाहता था । खल दलों के दमन के प्रसंग में स्वाभाविक उत्तेजना आ ही जाती है अतः अल्प मात्रा में ही ओज गुण का प्रयोग किया गया है ।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ का कवि प्रसंगानुकूल गुणों की योजना करने में सिद्धहस्त रहा है ।

(ख) गौड़ी रीति, पांचाली रीति, वैदर्भी रीति एवं प्रधान वृत्ति -

काव्य में शैली का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्यों कि वस्तु कितनी ही अच्छी क्यों न हो किन्तु यदि वक्ता की कथन शैली रुचिकर नहीं है तो उसकी बात श्रोताओं को अधिक देर अपनी ओर आकृष्ट नहीं रख सकती । अतः आकर्षक शैली की ओर कवियों और आचार्यों का ध्यान सदैव रहा है और रहना चाहिए शैली में लेखक का व्यक्तित्व सन्निहित रहता है ।

रीति के अर्थ पर विचार करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है - रीति शब्द रीङ् धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से बनता है अतः रीति का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है -गति, पन्था, वीथि, गति, प्रस्थान - इस रीति के ही

पर्यायवाची शब्द है ।" काव्य - शास्त्र के क्षेत्र में भी "रीति" का प्रयोग दो अर्थों में होता है - एक काव्य - रचना की सामान्य पद्धति, शैली आदि के अर्थ में तथा दूसरा संस्कृत के एक सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में ।

वामन ने अपने "काव्यालंकार -सूत्र" में रीति को इतना अधिक महत्व प्रदान किया कि उसे काव्य की आत्मा तक घोषित कर बैठे । रीति का लक्षण करते हुए उन्होंने बताया कि "विशिष्टपद- रचना रीतिः" अर्थात् विशेष प्रकार की शब्द रचना ही रीति है[1] ।

" Style is the man himself. " इस रूप में पाश्चात्य विद्वानों ने भी शैली को महत्व दिया है । हमारे साहित्य में शैली के लिए शब्द "रीति" मिलता है "रीति" स्थानीय विशेषता की द्योतक मानी जाती थी । प्रदेश - विशेष के लेखकों की शैली में एक निराली विशेषता पायी जाती थी, इसी कारण रीतियों का नाम उसी प्रदेश विशेष के नाम पर पड़ा , जैसे - वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी आदि[2] । डॉ० श्यामसुन्दर दास ने शैली के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "भाव, विचार और कल्पना तो उसमें प्राकृतिक रूप से वर्तमान रहते हैं, और साथ ही इन्हें व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी इसमें रहती है । अब यदि इस शक्ति को बढ़ाकर संस्कृत और उन्नत करके हम उसका उपयोग कर सकें तो उन भावों, विचारों और कल्पनाओं द्वारा हम संसार के ज्ञान भंडार की वृद्धि करके उसका कुछ उपकार कर सकते हैं । इसी शक्ति को साहित्य में शैली कहते हैं ।" रीति के चार भेद होते हैं - पांचाली, गौरी, वैदर्भी तथा लाटी । इनमें "पांचाली रीति" उपचारयुक्त कोमल एवं लघु समासों से समन्वित होती है । गौड़ी रीति में वर्णों की अधिकता और लंबे लंबे समासों की बहुलता होती है । वैदर्भी रीति उपचार रहित, सामान्यतः कोमल संदर्भों से युक्त एवं समास वर्जित होती है। लाटी रीति संदर्भ की स्पष्टता से युक्त होती है किन्तु इसमें समास स्पष्ट नहीं होते[3] ।

- -

1- रीति सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त पृ० 54 ,डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त

2- शैली और शैलीविज्ञान, पृ० 382, राजनाथ शर्मा

3- अग्निपुराण- तीन सौ चालीसवाँ अध्याय-रीति निरूपण पृ० 579

आचार्य वामन के अनुसार काव्य में तीन प्रकार की शैलियों का प्रयोग होता है - §1§ वैदर्भी रीति, §2§ गौड़ी रीति, §3§ पाँच्चाली रीति। साहित्य दर्पणकार ने "लाटिका" को चतुर्थ रीति माना है। यहाँ केवल तीन का ही विवरण प्रस्तुत है -

§1§ वैदर्भी रीति -

विदर्भ प्रान्त में प्रसाद गुण सम्पन्न काव्य शैली को विशेष-महत्व दिया जाता था जिसमें न तो शब्दों का आडम्बर होता था और न अर्थ के समझने में क्लिष्टता का अनुभव होता था। फलतः इस की काव्य शैली को विदर्भ रीति कहते हैं। जैसा कि साहित्य दर्पण कार आचार्य विश्वनाथ ने भी वैदर्भी रीति के विषय में लिखा है -

माधुर्य व्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते[1]॥

अर्थात् माधुर्य के व्यंजक वर्णों के द्वारा ललित रचना को वैदर्भी रीति कहते हैं, जिसमें समास न हो या स्वल्प है।

विश्रामसागर में अधिकांश वैदर्भी रीति के उदाहरण प्राप्त होते हैं निम्नलिखित पाँच उदाहरणों से यह सिद्ध किया जायगा कि कवि वैदर्भी रीति के प्रयोग में कितना कुशल था -

जाय देत से दान, जाय कुल विजहि सतावे।
जाय नीच सँग सुमति, जाय बुध भोजन धावे॥
जाय क्रोध से धर्म, जाय आदर नित माँगे।
जाय नीति बिन राज्य, जाय कूरापन भागे[2]॥

यहाँ पर नीति कथक के रूप में कवि उपदेशक बन गया है। उपदेश की भाषा सरल होती है, कवि ने इसी हेतु यहाँ प्रसाद गुण के लिए वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है।

1- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 9|2-3||

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 22 पृ0 199

नमो अलख अनूप नमो सुरभूप उजागर ।

नमो धीर रणधीर नमो तारण भवसागर ।।

नमो शरण दुख हरण करण तत्काल निहालं ।

नमो सुमेरु अनेक नमो कालहु के कालं ।।[1]

यहाँ पर भगवत् स्तुति प्रसंग में भी कवि ने कृत्रिम शब्दावली का प्रयोग न करते हुए स्पष्ट सरल शब्दावली का प्रयोग किया है, जिससे समासों का जाल दूर ही है । अतः यह स्थल भी वैदर्भी रीति का उत्तम उदाहरण है ।

तजि शोच हिये हरिनाम धरो जो सबै सुखदायक दुःख प्रहारी ।

जेहि ध्यावत शेष गणेश दिनेश सबी सनकादि उमा त्रिपुरारी ।

सुत बन्धु तथा तिय मातु पिता धन धाम सबै रवि की अववारी ।

ता बिच धावत है मन क्यों न भजै जग पावन सिंधु मुरारी ।।[2]

यहाँ पर "वैदर्भीरीति" का सफल निर्वाह किया गया है । स्पष्ट शब्दावली, समास रहित भाषा का स्वच्छन्द और स्वच्छ प्रवाह प्रशंसनीय है, अर्थ की अभिव्यक्ति भी प्रसाद गुण के कारण शीघ्र हो जाती है । इसी प्रकार दर्शन के क्षेत्रों में भी कवि ने इसी वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है । यथा –

तत्व ज्ञान जब होत तब, छूटि जात सब मान ।

यदपि हृदय अति शुद्धि तदपि, बरती बाल समान ।।

बरती बाल समान, ध्यान मेरो मन माहीं ।

क्षुधा तृषा सम शीत, तिन्हें कछु व्यापै नाहीं ।।

नाहिं मद माया मोह भय, निरंकार दृढ़तत्व ।

जीवत मृतक समान यह, परमहंस कर तत्व ।।[3]

यहाँ पर कवि ने "परमहंस" की क्या स्थिति होती है, दर्शन के इस गूढ़ रहस्य को सरलतम शब्दों में समझाने की चेष्टा की है । न तो क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग है,

---

1– विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय– 24, पृ0 219

2– वही, वही, अध्याय– 25, पृ0 241

3– वही, वही, अध्याय– 34, पृ0 344

न समासों का जमघट और न अलंकारों का आवरण । इस प्रकार "वैदर्भी रीति" को अपनाकर कवि ने दर्शन की गुत्थी सुलझा दी है ।

कोउ डारि कर नर श्याम को मुरली छिनाइ बजावती ।
कोउ ताम्बूलन कान्ह संग कोउ पकरि उर लपटावती ।।
हँसि लेत गोद उठाय मोहन हाथ अँगनि पै धरैं ।
लखि देव नभ पर सुमन बरषैं हरषि सब जै जै करैं ।।[1]

यहाँ पर वातावरण की सरसता को सरल शब्दों के माध्यम से प्रकट किया गया है। तत्समशब्दों का बाहुल्य जन साधारण के लिए दुरूह हो जाता है, अतः कवि ने तद्भव शब्दावली की प्रधानता रखी है । यथा - परसन, ताम्बूलन, संग, लखि, हरषि आदि । इनसे "वैदर्भी " रीति को बड़ा बल मिलता है ।

इन प्रयोगों से सिद्ध होता है कि "विश्रामसागर" का कवि "वैदर्भी रीति" के प्रयोग करने में सिद्धहस्त रहा है ।

(2) गौड़ी रीति -

जहाँ पर आडम्बर प्रधान शब्दावली का प्रयोग किया जाता है वहाँ गौड़ी रीति होती है साहित्य दर्पणकार ने भी कहा है - "गौडीडम्बरबद्धा स्यात्"[2] इस प्रकार आडम्बर प्रधान पदावली के प्रयोग से इस रीति का निर्माण होता है। यह आडम्बर शब्द और अर्थ दोनों में हो सकता है । विकट अक्षरों के प्रयोग से आडम्बर उत्पन्न होता है । विश्रामसागर में इस प्रकार की आडम्बर प्रधान शैली का प्रयोग कम मिलता है क्यों कि भक्त कवियों को आडम्बर से क्या प्रयोजन ? किन्तु कहीं - कहीं पर प्रसंगानुकूल इस शैली का प्रयोग भी वांछित था अतः गौड़ प्रदेश में प्रिय होने वाली इस शैली को भी कवि ने स्थान दिया है इसके कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं - प्रायः युद्धवर्णन और स्तोत्र स्थलों में कवि ने गौड़ी रीति के सफल प्रयोग

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 577

2- साहित्य दर्पण , आचार्य विश्वनाथ

किए हैं । यथा -

जय अनंग अरि संग उमा अरधंग विराजत ।
मुण्डमाल मृगछाल कण्ठ विष व्याल जो छाजत ।।
सीस गंग तारंग भस्म सर्वांग लगावत ।
तीन नयन मृदु वचन अयन सुख दुःख नशावत ।।
दीनदयाल कृपाल हर कर त्रिशूल धर गौर तन ।
रघुनाथदास वन्दन करत करौ कृपा मोहिं जानि जन ।।[1]

यहाँ पर शंकर जी के अर्द्धनारीश्वर रूप की वंदना करने में ही कवि ने अनंग, अरिसंग, अरधंग, कंठ, सर्वांग, कृपाल, त्रिशूल जैसे विकटाक्षर प्रधान शब्दों का प्रयोग किया है, अतः गौड़ी रीति का निर्वाह करने में कवि कौशल सराहनीय है ।

जय जय भव भामिनि त्रिभुवन स्वामिनि गुणमति गामिनि ज्ञाननिधे।
तड़ितांग अनूपं अद्भुत रूपं मुक्तिस्वरूपं पाप छिदे ।
भुज दण्ड विशालं धृत करवालं हृत जगजालं कामदुहे ।
सुरनरमुनि वन्दनि असुरनिकन्दनि भुवनानन्दनि सुखदुहे ।।[2]

इस प्रसंग में गिरिजा स्तवन में "भवभामिनि" तड़ितांग, दण्ड, छटा, भुवन नन्दिनि जैसे महाप्राण प्रधान शब्दों का ओजात्मक बन्धन "गौड़ी" रीति के अनुकूल सिद्ध हुआ है । यहाँ यह एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि स्तवन में गौड़ी रीति के प्रयोग से कवि क्या सिद्ध करना चाहता है । मेरे विचार से भक्त अपनी आराध्यदेवी या आराध्यदेव को ओज प्रधान रूप में देखना चाहता है, उसे उसकी सामर्थ्य पर गर्व होता है, अतः स्तवन में भी वह उद्धत पदावली का प्रयोग करता है , जैसे कि "शिव ताण्डव स्तोत्र" में रावण ने भी विकटाक्षर बन्ध प्रधान पदावली प्रयुक्त की है ।[3]

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 1 पृ0 - 2
2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 7, पृ0 769
3- धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्ट पावके। शिवताण्डव स्तोत्र।

मणि जटित पलंग बिछाइ पटु मृदु सुभ्र सौंधि सुगन्ध सों ।
पौढ़ाइ चारों भाइ बोली माइ करुणाकन्द सों ।
किमि तात मारेहु असुरगन किमि विप्र वनितहि तारेहु ।
किमि कठिन भंजेहु शम्भु धनु किमि परशु धरहिं नेवारेहु ।।

यद्यपि यहाँ पर कोमल प्रसंग है । मातायें रामादि से उनके पराक्रम का समाचार पूछती हैं, परन्तु पराक्रम की व्यंजना "गौड़ी " में ही सम्भव थी , अतः कवि ने टवर्ग और महाप्राण ध्वनि प्रधान पदावली से युक्त "गौड़ी रीति" का प्रयोग इस स्थल पर भी कर दिया है ।

अनुप श्याम सुन्दरं स्वरूप कोटि कामतो ।
धरंति भक्ति तासुर्ज पदार्थ स्वर्ग नांघ्रितो ।
स्वछंद सानुकूल जनसमूल भवात्पतर्म ।
भवांधि मध्य मैं सदा यतीति सुक्ति निर्भतं ।।[2]

यहाँ पर भक्ति , शील और सौन्दर्य के समन्वितात्म राम की स्तुति करने में ओज प्रधान, माधुर्य प्रधान और प्रसाद गुण प्रधान पदावलियों के समन्वित रूप का प्रयोग किया है किन्तु, भक्ति के प्राधान्य के कारण यहाँ "गौड़ी रीति" ही मुखर हो गई है ।

जयति जनकात्मजा शोध मोचन विपिन निधन निर्दल दशाग्रीव जाता ।
निपट निरशंक गढ़लंक दाहक काम क्रोध भय देवतानन्द दाता ।
जयति शिर अवम सुग देत करि उदर कर मूल निरमूल नाशिकट आर्य ।
पातु पूरब दक्षिन विदिशि पश्चित उत्तर अर्द्ध अध सर्वदा सर्वठार्म ।।[3]

यहाँ पर कवि ने हनुमान् जी की वीरमूर्ति के ओज प्रधान व्यक्तित्व की वन्दना की है । अशोक वाटिका का उजाड़ना, लंकादाह करना, कामादि पर विजय प्राप्त करना और भक्तों की रक्षा करना आदि सभी कार्य हनुमान जी के पराक्रम के प्रतीक हैं, अतः विकटाक्षर बन्ध से युक्त पदावली का प्रयोग सर्वथा उचित है । उनके

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 11, पृ0 825
2- वही, वही, अध्याय- 17, पृ0 907
3- वही, वही, अध्याय- 22, पृ0 981

शौर्य का स्तवन करने के लिए "गौड़ी रीति" ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई है ।

पाञ्चाली रीति -

जहाँ पर शब्द और अर्थ का समान गुम्फन हो वहाँ पाञ्चाली रीति होती है । "शब्दार्थौ समौगुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते" यह उसका शास्त्रीय लक्षण है, अर्थात् जहाँ पर शब्द सौन्दर्य और अर्थ सौन्दर्य दोनों ही समान मात्रा में चमत्कार हो, उसे पाञ्चाली रीति कहते हैं । पाञ्चाल प्रान्त में यह शैली विशेष लोकप्रिय रही है, अतः इसे पाञ्चाली रीति कहते हैं । यह रीति उच्च कोटि के कालिदास, भवभूति बाणभट्ट जैसे कवियों में विशेष रूप से पायी जाती है । विश्रामसागर के कवि ने अधिकांश स्थलों में पाञ्चाली रीति का प्रयोग किया है। उक्त ग्रन्थ से पाँच उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि की जा रही है -

कमल केर पितु सरितपति गरल सुधा अति भ्रात ।
मित्र भानु कुम्भज तनय विषधरा जेहि मात ।।
विषधरा जहि मात श्री रम्भा दोऊ भगिनी ।
बहनोई हरि इन्दु नाति शिव सुन्दर भगिनी ।।
अस परिवार सुसार जहु जारि दियो निधि धाम ।
विपति परे रघुनाथ बिन कोई न आयो काम ।।[1]

यहाँ पर कवि सांसारिक सम्बन्धों एवं व्यक्तियों को तुच्छ बतलाकर रामभक्ति को ही सर्वोपरि बतलाना चाहता है, अतः विषयानुकूल गाम्भीर्य के लिए शब्दगाम्भीर्य और अर्थगाम्भीर्य दोनों का समन्वयकरके "पाञ्चालीरीति" का बहुत ही सुन्दर ढंग से निर्वाह किया गया है ।

नमो मार्तंड प्रचंड तमारी । नमो कश्मलामय दुखातिहारी ।।
नमो भानु मैं पातु प्राच्यादि वासे । नमो पातु वेदस पश्चादि वासे ।।[2]

यहाँ पराक्रम और कल्याण के देव सूर्य की स्तुति में "पाञ्चालीरीति" द्रष्टव्य है ।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 16, पृ0 143

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 29 , पृ0 1061

के समान, रोमावलि शैवाल के समान और कटि सिंह के समान, जिसपर करधनी हंस पक्षी के समान सुशोभित थी इस प्रकार का अर्थ-गाम्भीर्य सुन्दर शब्दावली के साथ व्यक्त करके कवि ने पांचाली रीति का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

<u>प्रधानता</u> -

इन रीतियों में वैदर्भी रीति की प्रधानता स्पष्ट है । उपदेश-प्रधान-ग्रन्थों में इसी रीति का प्रयोग उचित ठहरता है ।

<u>वृत्ति</u> -

यद्यपि परुषा, कोमला, मधुरा ये तीन वृत्तियां भी आचार्यों द्वारा स्वीकृत हैं, किन्तु मेरे विचार में परुषा वृत्ति गौडी रीति में, मधुरा वृत्ति पांचाली रीति में और कोमला वृत्ति वैदर्भी रीति में अन्तर्भावित हो जाती हैं । जहाँ पर कठोर वर्णों का प्रयोग होता है, वहाँ परुषा वृत्ति मानी जाती है । जहाँ पर मधुर वर्णों का प्रयोग होता है, वहाँ मधुरा वृत्ति मानी जाती है । अतः इन वृत्तियों का उक्त रीतियों के साथ साम्य होने के कारण इनका पृथक् विवेचन नहीं किया जा रहा है, फिर भी सुविधा की दृष्टि से इनके दो - दो उदाहरण दिए जा रहे हैं -

परुषा वृत्ति का उदाहरण -

वन्दहुं त्वत्पद प्रभो, संसितारब्धि दृढ पोत ।
परिबर्हीपि ध्येयं सदा, तीर्थास्पद शुभ स्रोत ।
तीर्थास्पद शुभ स्रोत, नतं कमलन हरि ईशं ।
प्रणतपाल आभीष्ट, द्रोह शुत्पारत धीरं ।
बोलकृत अघ ओघ, तव्य श्री मुनिमानन्दे ।
भुजागार मैं प्राणु, शरण्निमयाहं वन्दे ।।

यहाँ पर भगवद् स्तुति में उनकी महत्ता का प्रतिपादन करने के लिए "परुषा" वृत्ति

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 30, पृ० 1076

कोमला वृत्ति के उदाहरण अवलोकनीय है -

देखि देखि रघुपति उर माला । सुर नर मुनि सब भये निहाला ।।
मुनि सिय कर गहि कंचन थारी । हर्ष सहित आरती उतारी ।।
सखिन कह्यौ पदिपद गहु बाला । छुवत न मुनि मुनितय कर डालों ।।[1]

यहाँ सीता जी द्वारा राम के गले में जयमाला डालने का कोमल प्रसंग है, जिसके लिए कवि ने कोमल वर्णों एवं संगीतात्मक पंचम वर्णों का प्रयोग करके "कोमला" वृत्ति का सफल निर्वाह किया है ।

सोचिय विप्र निज धर्म त्यागि जो रहे विषयरत ।।
सोचिय नृप नयरहित सहित तम तोष पोषरत ।।
सोचिय वणिक कदर्य पाय धन धर्म न ठानहिं ।
सोचिय तिय पियवचनि गुरु विप्रहिं अपमानहिं ।।
सोचिय यती विराग बिन तियन सोचि सब भाँति भल ।
सुरदुर्लभ तन पाय जिन भजहु न रामहिं छाँड़ि छल ।।[2]

यहाँ नीति कथन के प्रसंग में कवि ने "नैतिक भावना" जैसी कोमल भावना की सफल-अभिव्यक्ति के लिए सरल एवं कोमल पदों का प्रयोग करके "कोमलावृत्ति" का प्रसादगुण सम्पन्न निर्वाह करने में सफलता प्राप्त की है ।

निष्कर्ष रूप में विश्रामसागर में वैदर्भी रीति का प्राधान्य है इसमें न कोई आडम्बर है और न कोई कठिनता कवि ने सरल शब्दों में सरल ढंग से अपनी बात प्रस्तुत की है । किन्तु कवित्व में कवि साधारण नहीं था इसलिए अनेक रमणीक स्थलों में उसने शब्द लालित्य के साथ ही साथ अर्थ सहचारत्व का तालमेल बैठा कर पांचाली रीति का सफल प्रयोग किया है । वैदर्भी के पश्चात् अधिकांश पांचाली रीति के ही प्रयोग मिलते हैं और यत्र- तत्र जहाँ पर आवश्यक हुआ है वहाँ शब्दाडम्बर और अर्थाडम्बर का भी प्रयोग किया

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 8, पृ 78।
2- वही, वही, अध्याय- 14, पृ 87।

गया है । जिसके कारण गौड़ी रीति का भी निर्वाह हो गया है किन्तु रीति क्रम में इसका तृतीय स्थान है ।

(ब)

काव्य में नाद-सौन्दर्य का होना भी अनिवार्य गुण होना चाहिए, क्यों कि यह सुनने में श्रोताओं को आकृष्ट करता है, लालित्य की वृद्धि करता है और माधुर्य की व्यञ्जना करने में भी सहायक होता है। इसके अतिरिक्त जहाँ पर नाद किसी वस्तु विशेष की ध्वनि करता हुआ प्रतीत होता है वहाँ पर तो आधुनिक काव्य - शास्त्र के अनुसार ध्वन्यर्थ व्यञ्जना नामक नवीन अलंकार हो जाता है, + जिसे अंग्रेजी साहित्य में 'आटोमैटोपोयिया' अलंकार कहते हैं। इससे जाना जाता है कि नाद-सौन्दर्य काव्य सौन्दर्य की वृद्धि में कितना सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार नाद एक प्रकार की ध्वनि है, ध्वनि का प्रयोग दो अर्थों में होता है - पहला नाद के अर्थ में और दूसरा उत्तम काव्य के रूप में/जिसे ध्वनिकाव्य कहते हैं । जिसे आनन्दवर्धन आदि आचार्यों ने काव्य की आत्मा भी कहा है। काव्यस्यात्मा ध्वनिः। यहाँ पर विश्रामसागर में नाद और ध्वनि इन दोनों पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है - सर्व प्रथम नाद सौन्दर्य पर विचार प्रस्तुत है -

पकर पोइ पकौरी पालक पेठा मन रुचिकारीजी ।
अरई आँब अदरख अँवरा अमित अचारीजी ।।

यहाँ पर "पकार" की आवृत्ति रकार के साथ मिलकर एक विचित्र प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करती है इसमें वर्ण मैत्री और नाद सौन्दर्य के अनोखे संयोग ने वृत्त्यनुप्रास को सजीवता प्रदान की है ।

नाद सौन्दर्य में अनुस्वार युक्त पदावली का महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्यों कि वह एक विशेष प्रकार की झंकार उत्पन्न कर देती है । अगले उदाहरण में नाद सौन्दर्य का यह वैशिष्ट्य दृष्टव्य है :-

जय अनन्त सुखंत कंत भगवंत प्रभु ।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 5, पृ0 728

जन मन मानस हंस वंस विवर्त हू[1] ।।

यहाँ पर सात शब्द सानुस्वार प्रयुक्त हैं - अनंत, संत, कंत, भगवंत, हंस,वंस, विवर्त इनके द्वारा एक ऐसी संगीतात्मकता को जन्म मिला है जो अनुरणनात्मक चमत्कार उत्पन्न करते हैं जो अत्यन्त श्रुति सुखद लगता है ।

चपल चढत सब जहँ तहँ डोलैं । झन्न झन्न जनु झींगुर बोलैं[2] ।।

यहाँ पर कवि ने झींगुर की ध्वनि के झन्न - झन्न शब्द की आवृत्ति द्वारा व्यक्त करने की चेष्टा की है अतः यहाँ पर ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार का चमत्कार भी उपस्थित हो गया है । झींगुर का झनकार शब्द रूप श्रुति-सुखद एवं माधुर्य व्यंजक है । इसे कवि की चतुरता का ही चमत्कार कहेंगे । इससे जाना जाता है कि कवि नाद-सौन्दर्य का चतुर चितेरा रहा है ।

कटि किंकिणी कुधरि जग डोलैं । झुनझुन झुनझुन नूपुर बोलैं[3] ।।

यहाँ पर कवि नूपुर की झुन - झुन ध्वनि और किंकिणी की किण किण ध्वनि को इतनी चतुरता के साथ व्यक्त करता है यहाँ पर भी ध्वन्यर्थ-व्यंजना अलंकार उपस्थित हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर कवि रामचरित मानस की निम्नलिखित चौपाई के नाद सौन्दर्य से प्रभावित है -

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि[4] ।

तुलना करने पर प्रतीत होता है कि तुलसी ने कंकण और किंकिणी ध्वनि को तो शब्द रूप दिया है, किन्तु नूपुर की ध्वनि को ठीक तरह से चित्रित नहीं कर पाया, जब कि विश्रामसागर के कवि ने नूपुर की ध्वनि को भी व्यक्त

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 3, पृ0 700

2- वही, वही, अध्याय- 4, पृ0 706

3- वही, वही, अध्याय- 4, पृ0 712

4- रामचरित मानस, बालकाण्ड, पुष्प वाटिका प्रसंग

यहाँ पर कवि ने राम राज्याभिषेक के सन्दर्भ में नाद- सौन्दर्य का अद्भुत चमत्कार उत्पन्न किया है इसमें ट, ठ, ड, ढ, वर्णों के द्वारा अद्भुत नाद-सौन्दर्य उत्पन्न हुआ है जो दरबार की चमत्कृति के अनुरूप है ।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है कि कवि को भाषा का असाधारण ज्ञान था । शब्दों के सु समुचित प्रयोग की अपूर्व क्षमता उसमें विद्यमान थी । उसे नाद के विभिन्न रूपों का ज्ञान था, कोमल, मधुर एवं ओजस सभी प्रकार की ध्वनियाँ उनके मस्तिष्क पर गूँजती रहती थी और वे आवश्यकतानुसार समुचित प्रसंगों को देखकर उनका प्रयोग भी करते थे । उन्हें विभिन्न पशु - पक्षियों एवं जीव- जंतुओं की बोलियों का भी ज्ञान था। जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणों में कई अंशों में संकेत किया गया है । अस्तु, नाद-सौन्दर्य की दृष्टि से विश्रामसागर का कवि एक उत्कृष्ट नाद-वेत्ता सिद्ध होता है ।

ध्वनि -
=====

काव्य के क्षेत्र में अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना, इन शब्द शक्तियों की चर्चा की जाती है। व्यञ्जना के सन्दर्भ में काव्य प्रकाश कार "मम्मट ने लिखा है कि इसमें अधिक चमत्कार होता है। इसलिए व्यञ्जना प्रधान काव्य ही उत्तम काव्य कहलाता है, जिसे ध्वनि शास्त्री विद्वानों ने ध्वनि कहा है -

इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः ।[1]

ध्वनि किसे कहते है इसका लक्षण ध्वन्यालोक में इस प्रकार दिया हुआ है -

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।। 13 ।।

यत्रार्थो वाच्यविशेषः, वाच कवि शेष शब्दो व, तमर्थं व्यङ्क्तः, स काव्यविशेषो ध्वनिरिति,[2] जहाँ अर्थ अपने को और शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस प्रतीयमान [व्यंग्यार्थ] अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस विशेष काव्य को विद्वान लोग ध्वनि इस प्रकार से कहते हैं । "13"

- - - जहाँ अर्थ वाच्यविशेष या शब्द वाचक विशेष उस प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त -

1- काव्य प्रकाश- प्रथम उल्लास- मम्मट
2- ध्वन्यालोक- प्रथम उद्योतः कारिका 13 पृ0,63- आनन्दवर्धन, -व्याख्याकार- डॉ0 कृष्ण कुमार ।

करते हैं वह विशेष काव्य ध्वनि है। ध्वनि शब्द की शाब्दिक व्युत्पत्ति इस प्रकार है "ध्वन्यते" इति ध्वनिः अथवा "ध्वननं" ध्वनिः, तात्पर्य यह कि ध्वनित करना ध्वनि है। अथवा जिसकी ध्वनि की जाए वह ध्वनि है। ध्वनिवादी आचार्यों ने ध्वनि के अनेक भेद किए हैं, किन्तु मुख्य रूप में ध्वनि के तीन भेद होते हैं :-

1- वस्तु ध्वनि 2- अलंकार ध्वनि 3- रस ध्वनि ।

विश्रामसागर में ध्वनि का अधिक चमत्कार तो नहीं है, किन्तु कतिपय स्थल अवश्य हैं जहाँ पर ध्वनि के इन तीनों भेदों का निदर्शन प्राप्त हो जाता है। मैं तीनों के पाँच - पाँच उदाहरण प्रस्तुत कर रही हूँ जिनके आधार पर यह सिद्ध किया जा सकेगा कि यह कवि ध्वनि शास्त्र से भी अवगत था और ध्वनियों के प्रयोग में भी सिद्धहस्त था।

1- वस्तु ध्वनि -

जहाँ पर ध्वनि के द्वारा किसी वस्तु विशेष की व्यञ्जना की जाए वहाँ वस्तु ध्वनि होती है। "विश्रामसागर" के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं -

सारंग से दृग लाल, भाल सारंग को सोहत।
सारंग ज्यों तनु श्याम, बदन लखि सारंग मोहत।
सारंग सम कटि, हाथ माथ बिच सारंग राजत।
सारंग साजे अंग देखि छवि सारंग लाजत॥
सारंग भूषण पीत पट सारंग पद सारंगधर।
रघुनाथ दास वन्दन करत सीतापति रघुवंशवर।[1]

यहाँ पर "सारंग" शब्द के 10 प्रयोग पृथक- पृथक अर्थों में किए गए हैं, जिनसे नेत्र माला, शरीर, मुख कटि, कर मस्तक, धनुष, आभूषण, पीताम्बर, चरण आदि के सौन्दर्य की सफल व्यंजना करते हुए कवि ने "राम" को अलौकिक सौन्दर्य समन्वित ध्वनित किया है।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2 पृ0 9

हमरे कुल की रीति यह कालहु ते नाहीं डरें ।

सन्मुख युद्ध अनजान की संत सदा दाया करें ।

सुनि बोले भृगुनाथ राम रिस जायी कैसे ।

अबहूँ तक तव बन्धु विलोकत टक्कर जैसे ।[1]

यहाँ पर राम द्वारा रघुवंश की रीति का स्मरण कराये जाने का तात्पर्य यह है कि हम किसी को नहीं डरते, काल से भी लड़ सकते हैं । तुलसी ने स्पष्ट ही कहा है :-

जौरन हमैं प्रचारै कोऊ । लरैं सुखेन काल किन होऊ ।। (मानस, बाल0)

इस प्रकार यहाँ शौर्य, स्वाभिमान और निर्भयभाव की व्यंजना की गई है, जो वस्तु ध्वनि है ।

गये बहुत दिन बीति ब्याज बढ़िगा बहु भाई ।

लीजे ब्यौहर बोलि तुरत मैं देहुँ चुकाई ।

धरहिं सकल कटि अपर प्रभु अपरहि जो ह्वै करि दत्त धर ।

तासु अनुज पर परशुधर कैसे सके चलाय कर ।।[2]

यहाँ पर यह ध्वनि है कि हे परशुराम जी आप अपने गुरु शंकर जी को भी बुला लीजिये । मैं उन्हें भी संग्राम में पराजित कर दूँगा । दूसरी ध्वनि इस बात की भी है कि आप अभी तक गुरु ऋण नहीं चुका सके, अतः आप कैसे वीर हैं ?

वामी रूप अनूप वर वरण वाम ते वाम ।

कहीं वामविधि विधि करी, वाम देव धनु वाम ।।[3]

यहाँ पर कवि ने "वाम" शब्द के पाँच प्रयोगों द्वारा ध्वन्यात्मक चमत्कार उत्पन्न किया है ।

इनहीं के तप तेज बल, बधि निशिचर अघ राशि ।

रे हैं अस मंगल सहित, सबै विजय शिव राशि ।।[4]

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 88 पृ0 791

2- वही, वही, अध्याय- 8 पृ0 790

3- वही, वही, अध्याय- 7 पृ0 763

4- वही, वही, अध्याय- 6 पृ0 751

यहाँ पर विश्वामित्र जी के तप प्रभाव की तीव्र व्यंजना की गई है और "गणा" शब्दद्वारा कवि ने रामादि के विवाह की भी ध्वनि की है, क्योंकि "विवाह" एक मुख्य मांगलिक कार्य कहलाता है । शिव जी की साक्षी से वचन की सत्यता भी ध्वनित होती है ।

अलंकार ध्वनि -

जहाँ पर ध्वनि के द्वारा किसी अलंकार की व्यञ्जना की जाती है वहाँ पर अलंकार ध्वनि होती है कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

राममन्त्र मुखचन्द्र ते, जेहि उर करहि प्रवेश ।[1]
होत कुष्ठ सो सुरत भस्म, कहत सदाशिव शेष ।।

यहाँ पर "राममन्त्र" द्वारा कुष्ठ होने का कथन इस बात की ध्वनि करता है कि "राममन्त्र" अग्निवत् शोधक है । इस प्रकार यहाँ "उपमालंकार" स्पष्ट न होता हुआ भी ध्वनित होता है, अतः यहाँ अलंकार ध्वनि सिद्ध होती है ।

वै नगदा पग अंजन को तुम चलिबो आसे नकु को निवारेउ ।
वै जल थाह बतावत हैं तुम प्रेम अथाह के वारिद पारेउ ।
वै बरसात बताइ भजे तुम बात छोड़ाइ उबारि में डारेउ ।[2]
का कहिये हरि की बँसुरी तुम आपन बंश को नाम बिगारेउ ।।

यहाँ पर बाँस और बंशी की तुलनात्मक कार्य प्रणाली में वैपरीत्य का उल्लेख करके कवि ने बंशी पर कुलकलंक का दोष मढ़ते हुए "तुल्ययोगिता" की व्यंजना की है, जो स्पष्ट न होकर ध्वनिगम्य है ।

नाहिं जांघ ते धनुतीर देखि विदत वद गहर कियो ।
सुर नाग नर नृप असुर आये तुरत जो हम प्रण कियो ।
को कहै कर्बनि फेर काहु न अपनि अप्प छोड़ायहू ।[3]
यह विषय कौरति सुवीर पायनहार प्रमान जायहू ।।

1- विश्रामसागर, [illegible] खण्ड, अध्याय-45 पृ0 462
2- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 580
3- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 7 पृ0 776

पवन न भई हौ पताकहु अम्बर नाहीं ,

रथ के न भई अंग बैठी प्रभु सींचिये ।

धूरिहु न भई हरिपद लागि जाती अंग,

पगहू न भई पो उठाय दर्श लीजिए ।

आई बिलखात पिपि मारी मधु जात छोड़ि,

जियो नाहिं जात पै दरश आज दीजिए ।[1]

यहाँ पर कवि ने "वियोगश्रृंगार" की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति की है, जिसमें वियोगी हृदय की मानसिक व्यथा, असमर्थता, मिलन की तीव्र आकांक्षा, दर्शन की अपरिहार्य-कातरता, समर्पण की उत्कृष्ट अभिलाषा, तादात्म्य की परम लिप्सा और मरमर कर जीने की अभिलाषा की जो मार्मिक अभिव्यंजना की गई है, वह "रसध्वनि" का स्पष्ट प्रमाण है ।

जनकसुता के जनक को, जनक कहत सब आहु ।

कौन कौन के जनक थे , याको करहु निबाहु ।।[2]

यहाँ पर "हास्यरस" की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति की गई है । "जनक" शब्द पिता का वाचक है । रामकलेवा के प्रसंग में रामचन्द्र से यह बात हास- परिहास के प्रसंग में कही गई है । इस प्रकार यहाँ "रस ध्वनि" है ।

कह रावण को होतहि, रिस यहि विधि मन तैरे ।

तो मन करत्यो आय , फेराई पितु और भैरै ।।

बरत मातु संग भोग, सुरसुत सो सब जाने ।

मरत न शठ किम जाय , बात हम ते पढिठानै ।

मम बरनन की कौन गति, तीन लोक भिति जो पढ़ै ।

करौं समर सन्मुख तबौं, क्यौं न पग पीछे धरै ।।[3]

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 7 पृ0 590

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 10, पृ0 810

3- वही, वही, अध्याय- 25, पृ0 1019

अध्याय - 6

विश्रामसागर की भाषा का आलोचनात्मक अध्ययन

भाषा विचारों की वाहिका है । कलाकार के हृदयस्थ भावों को पाठक के समक्ष प्रकट कर उसे सम्प्रेषित करने का मूल साधन है । अनुभूति की तीव्रता अभिव्यक्ति के माध्यम से ही प्रकाशित की जा सकती है । कला को जीवित और गतिशील रखने के लिए कलाकार भाषा की शरण जाता है । उसे जन-जीवन का संदेश बनाने के हेतु भावों की सम्प्रेषणीयता उत्पन्न करना आवश्यक है और इसके लिए भाषा का सशक्त होना अनिवार्य है।

कवि विशेष की भाषा पर विचार करते समय पहले हमें यह देखना पड़ता है कि उसकी भाषा भावाभिव्यंजना में कहाँ तक समर्थ हुई है तथा कितनी सुन्दरता से उस भाव को प्रकट करने में कवि ने अपनी कला का परिचय दिया है यद्यपि अभिव्यंजना व्याकरण के अन्तर्गत है, जो शब्द-वाक्य के बाहरी कलेवर पर दृष्टि रखता है तथा कतिपय प्रयोगों को शुद्ध अशुद्ध बताकर अपने कार्य की समाप्ति करता है, परन्तु हृदय पक्ष में भाव कितनी सुंदरता से प्रकट किए गए हैं, यह देखने के लिए हमें भाषा का सम्बन्ध हृदय पक्ष से जोड़ना पड़ता है ।

अवधी भाषा का प्रथम रूप हमें कबीर आदि सन्तों की सधुक्कड़ी भाषा में मिलता है, जो काशी के आस-पास रहते थे । यह अवधी का असंस्कृत और अपरिमार्जित रूप था । आगे चलकर जायसी आदि प्रेमाख्यानक कवियों ने इसे अपने साहित्य का माध्यम बनाकर इसके रूप को कुछ परिमार्जित किया । अन्त में तुलसी ने उसे प्रौढ़ता प्रदान कर साहित्यिक आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया। प्रेमाख्यानक कवियों की अवधी, बोलचाल की भाषा थी । तुलसी ने उसे संस्कृत के योग से परिमार्जित और प्रांजल बनाकर साहित्यिक भाषा का रूप और गौरव

1- प्राचीन प्रमुख हिन्दी कवियों का मूल्यांकन- प्रो0 मिश्र- पृ0 274

प्रदान किया । अवधी में अधिकतर प्रबन्ध काव्य ही अधिक लिखे गये ।

विश्रामसागर 'राम चरित मानस' की भाषा-शैली पर आधारित एक भक्ति ग्रन्थ है जिसमें कवि ने वैष्णव होने के नाते विशेषतः अयोध्या-निवासी होने के नाते अवधी भाषा का प्रयोग किया है। हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि किस प्रकार शौर्य सेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी को जन्म मिला है। अधिकांश विद्वान अवधी का जन्म अर्ध-मागधी-अपभ्रंश से ही मानते हैं। दोहा,-चौपाई,-शैली के लिए अन्य भाषाओं की तुलना में अवधी भाषा ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। प्रस्तुत प्रकरण में जहाँ पर विश्रामसागर की भाषा का आलोचनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करना है, वहाँ सर्वप्रथम अवधी भाषा के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है, जिससे यह बात हो सके कि इस ग्रन्थ की रचना के पूर्व अवधी कहाँ तक विकसित हो चुकी थी और इस कवि ने अपने ग्रन्थ के माध्यम से अवधी भाषा के विस्तार में क्या योगदान दिया है -

(क) अवधी भाषा का उद्भव और विकास -

इसे कुछ विद्वान् "कोशली" एवं बैसवाड़ी बोली भी कहते हैं । यह प्राचीन अवध या कोशल जनपद की बोली बोली है । यह भाषा हरदोई जिले को छोड़कर सम्पूर्ण अवध क्षेत्र में प्रचलित है अर्थात् लखीमपुरखीरी, बहराइच, गोंडा, बाराबंकी, लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, फैजाबाद, सुल्तानपुर और रायबरेली के इलाकों में अवधी ही बोली जाती है । जौनपुर और मिर्जापुर के पश्चिमी भाग तथा फतेहपुर और इलाहाबाद में भी अवधी बोली जाती है । इस बोली के उत्तर में पहाड़ी भाषायें, दक्षिण में मराठी, पूर्व में भोजपुरी तथा पश्चिम में बुन्देली और कन्नौजी आती हैं । डा० बाबूराम सक्सेना के मत से अवधी के तीन रूप मिलते हैं - 1- पूर्वी 2- केन्द्रीय और 3- पश्चिमी । पूर्वी रूप गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर और मिर्जापुर में प्रचलित है।

- -

1- साहित्यिक निबन्ध - राजनाथ शर्मा पृ0 118

केन्द्रीय रूप, बहराइच, बाराबंकी तथा रायबरेली में मिलता है + और पश्चिमी-रूप खीरी, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव और फतेहपुर में विद्यमान है । इसके बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ है । अवधी में साहित्य विपुल मात्रा में मिलता है । हिन्दी साहित्य की प्रेममार्गी सूफी शाखा तथा राम भक्ति शाखा का सम्पूर्ण साहित्य अवधी में ही लिखा गया है । सूफी कवियों में से कुतबन, मंझन, जायसी शेखनबी, उसमान, नूर मुहम्मद आदि अवधी के श्रेष्ठ कवि हो गए हैं । रामभक्त कवियों में से गोस्वामी तुलसीदास इस भाषा के सर्वोत्कृष्ट कवि हुए है । जायसी कृत "पदमावत" और तुलसीकृत "रामचरितमानस" अवधी के दो अमर महाकाव्य हैं । आधुनिक कवियों में से श्रीधर रमई काका आदि भी अवधी के उच्चकोटि के कवि हैं । अवधी में ही आधुनिक प्रसिद्ध महाकाव्य "कृष्णायन" की रचना हुई है । अवधी में वैसे तो खड़ी बोली की सभी स्वर - ध्वनियाँ विद्यमान हैं ।

अवधी भाषा के उद्भव एवं विकास पर अब विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जा रहा है -

साहित्य के क्षेत्र में "अवधी शब्द का अर्थ है अवध प्रदेश के अन्तर्गत बोली जाने वाली बोली या विभाषा । अवध उत्तरी भारत का एक प्रमुख प्रदेश है । "रामचरितमानस" में गोस्वामी तुलसीदास ने 'अवध' शब्द का प्रयोग अयोध्या के लिए ही किया है । गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है -

"बन्दौं अवधपुरी अति पावन "

<u>अवधी की उत्पत्ति -</u>

अवधी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मत भेद है । डाक्टर ग्रियर्सन, डाक्टर बाबूराम सक्सेना, श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर, नामवरसिंह, एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने अवधी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रकट किए हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक स्थान पर लिखा है- "अपभ्रंश या प्राकृत - काल की काव्य भाषा के उदाहरणों में आजकल की भिन्न-भिन्न बोलियों के मुख्य - मुख्य रूपों के बीज या अंकुर दिखाई दिए गए हैं/इनमें

से ब्रज और अवधी के भेदों पर कुछ विचार करना आवश्यक है क्यों कि हिन्दी काव्य में इन्हीं दोनों का व्यवहार हुआ है[1] । "

आचार्य शुक्ल के अनुसार अवधी की उत्पत्ति नागर अपभ्रंश भाषा से हुई है ।

'ग्रियर्सन' के अनुसार अवधी का जन्म अर्द्ध मागधी से हुआ । परन्तु ग्रियर्सन महोदय ने अवधी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भौगोलिक दृष्टिकोण को सामने रखा है । श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' अवधी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी भाषा से मानते हैं, परन्तु आधुनिक भाषा विज्ञान के विद्वान इस विचार से सहमत नहीं है ।

डॉ० बाबूराम सक्सेना ने "इवोल्यूशन ऑफ अवधी" नामक पुस्तक में लिखा है - "अवधी, अर्द्ध-मागधी से भाषागत विभिन्नताओं के कारण पर्याप्त दूर है परन्तु पालि से उसका पर्याप्त साम्य और सैकट्य प्रतीत होता है । "

परन्तु विद्वानों के अनुसार डॉ० बाबूराम सक्सेना का मत भी अधिक स्पष्ट नहीं है ।

आधुनिक भाषा विज्ञान के विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत को ही सर्वाधिक प्रामाणिक मानते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भाषा और व्याकरण सम्बन्धी जो तर्क दिए हैं, उन्हें भाषा-विज्ञान के आधुनिक विद्वान् स्वीकार करते हैं ।

डॉ० रामकुमार वर्मा "चान्द अण्ड" को अवधी का सर्व प्रथम काव्य ग्रन्थ मानते हैं । अवधी-भाषा में पर्याप्त साहित्य मिलता है । कवि कुल शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपनी हृदयानुभूति जनता तक पहुँचाने के लिए इस भाषा को माध्यम बनाया । महाकवि 'जायसी' ने भी अवधी भाषा में पर्याप्त साहित्य की रचना की । अवधी भाषा को जनता तक पहुँचाने में भिन्न-भिन्न

- -

1- हिन्दी भाषा का परिचयात्मक ज्ञान- डॉ० हरिदत्त शास्त्री पृ० 38

कवियों ने योगदान दिया उनका उल्लेख पिछले पृष्ठों में हो चुका है । अवधी काव्य धारा आज भी साहित्य क्षेत्र में तीव्र गति से प्रवाहित हो रही है । अतः इस भाषा का क्षेत्र एवं साहित्य अत्याधिक व्यापक है ।

अवधी की भाषा में शास्त्रीय विशेषतायें -

प्रायः समस्त अवधी - भाषी प्रदेश में भाषा के स्वरूप में कोई विशेष अन्तर नहीं है । केवल थोड़ी सी स्थानीय विशेषतायें और विभिन्नतायें यत्र-तत्र मिलती हैं।अब अवधी की भाषा-शास्त्रीय विशेषताओं का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है -

(1) अवधी में पूर्व की ओर "अ" का उच्चारण अर्ध विवृत स्वर का सा होता है । जब कि पश्चिमी अवधी में यह विवृत के पास पहुंच जाता है । हिन्दी के "ड" "ढ" कभी कभी अवधी में "र" "रह" हो जाते हैं, जैसे तोरे आदि । अवधी में "ऐ" औ" का उच्चारण "अइ" "अउ" के समान होता है । हिन्दी के आकारान्त शब्द अवधी में लध्वंत या व्यंजनांत हो जाते हैं।जैसे - बड़े, बड़, भल, भल_आदि। वस्तुतः अवधी की प्रवृत्ति ही लध्वंत है । इसी प्रकार अवधी पदारम्भ में "य" "व" नहीं सहन करती और य् तथा व् क्रमशः इ(य) और उ (व) में परिवर्तित हो जाते हैं ।

(2) अवधी में संज्ञाओं के तीन रूप होते हैं -

घोड़, घोड़वा, घोड़ौना, नारी, नरिया, नरिवा आदि ।

इनके रूप इस प्रकार होते हैं -

	अकारान्त पु०		आकारान्त पु०		ईकारान्त स्त्री०	
वचन	कर्ता	विकारी	कर्ता	विकारी	कर्ता	विकारी
एकवचन	घर	घर, घरे, घरै, घरहि, घरने घरन,	घोड़वा	घोड़वा	नारी	नारी, नारिहि नारिन्ह
बहुवचन	घर	घरन	घोड़े, घोड़वे	घोड़वन	नारी	नारि

-"अवधी सर्वनामों के रूप"-

सर्वनाम शब्द	एकवचन कर्ता	एकवचन विकारी	एकवचन सम्बन्ध	बहुवचन कर्ता	बहुवचन विकारी	बहुवचन सम्बंध
मैं	मैं	मो	मोर	हम	हम, हमरे	हमारऊ हमरे
तू	तैं,तू	तो	तोर	तुम,तू	तुम, तुम्हरे	तुमार, तुमरे तोहार, तोहरे,
आप	आप,आपु	आप,आपु	आपकर, आपन	आप	आपु	आपकर,आपनु
यह	ई	ए,एह,एहि	एकर, एहिकर,	इनु,ए	इनु	इनकर, इनकेर,
वह	ऊ,वेऊ	वो,वोह, वोहि	वोकर, वोहिकर,	वो,उनु, वोनु	उनु, वोनु	वोनकर, वोकेर,
जो	जो,जे,जौन	जे,जेहि	जेकर, जेहिकर	जे	जिन	जिनकर, जिनकेर,
सो	सो,से,तौन	ते,तेहि	तेकर, तेहिकर	ते	तिन	तिनकर तिनकेर,
कौन	को,के,कौन	के,केहि	केकर,केकरे	को,के	किन	किनकर, किनकेर,

हिन्दी क्या के लिए अवधी में "का" (विकारी-कह, कवि, काहे) होता है हिन्दी कोई के लिए केह, केऊ, कोनो, कवनो (विकारी कोऊ,केहू) होते हैं।

अवधी की सहायक क्रियाएँ इस प्रकार हैं -

वर्ण समुदाय की "पद" संज्ञा होती है और "पदानां समूह वाक्यम्" अर्थात् पदों के समूह को वाक्य कहते हैं, परन्तु उनमें भी "आकांक्षा" योग्यता और "सन्निधि" का होना आवश्यक होता है, तभी वाक्यार्थ बोध होता है । वास्तव में पूर्ण वाक्य से ही अर्थ बोध होता है । "वाक्यपदीय" में "भर्तृहरि" ने कहा है कि वाक्य से बढ़कर पदों का कोई विशेष महत्व नहीं है । इसीलिए "वाक्य स्फोट" को ही वैयाकरणों ने मुख्य माना है यथा -

"वाक्य स्फोटो ऽति निष्कर्षे तिष्ठतीति मतिस्थितिः"[1] (वाक्यपदीय)

इस प्रकार यद्यपि अर्थ बोध में वास्तविक महत्व वाक्य का ही है, परन्तु सामान्य दृष्टि से आठ स्फोटों की गणना में वर्ण स्फोट और "पद स्फोट" का महत्व पूर्ण उल्लेख होने के कारण काव्य में वर्णों और पदों के विन्यास का भी औचित्य देखा जाता है । "विश्रामसागर" में कवि ने वर्ण विन्यास पर विशेष ध्यान दिया है । उसने लिखा है कि - क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ठ, न, य, श, स, इतने शुभ एवं सुखद वर्ण हैं[3] । अतः अधिकांश इन्हीं वर्णों के अधिकांश प्रयोग करने में उनकी प्रवृत्ति रही है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है -

क ख ग घ च छ ज ठ न य श स इतने सुखद अंक ।
शेष परैं जो कवित्त तौ, करैं राव ते रंक[2] ।।

यहाँ "पिंगलशास्त्र" के आधार पर कवि ने उपर्युक्त 12 वर्णों का प्रयोग काव्य के लिए उत्तम माना है । मेरे विचार से काव्य के प्रारम्भ में ही उक्त वर्णों के प्रयोग पर विचार किया गया है । नवीन अध्यायों के आरम्भ में भी यह सावधानी अपेक्षित है ।

करि – करि फेर कुँवर को, कहा लौ करि ध्यान ।

1- पदेन वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च ।
वाक्यात् पदानां अत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ।। वाक्यपदीय- भर्तृहरि

2- क ख ग घ च छ ज ठ न य श स इतने सुखद अंक ।
शेष परैं जो कवित्त तौ, करैं राव ते रंक।।1/4।। विश्रामसागर।।

3- विश्रामसागर, रघुनाथदास कृत, अध्याय- 1 पृ0 4

मुकत मारे जात हैं, यम के भान निदान[1] ।।

यहाँ पर कवर्ण का आठ बार प्रयोग अति सुखद लगता है । वृत्यनुप्रास के इस प्रकार के विधान में कवि की विशेषरुचि रही है । वर्ण मैत्री की ओर कवि का ध्यान इसलिए रहा है कि श्रोता उसे सुनकर अधिक आकृष्ट होते हैं ।

लड़खरत दिग्गज कोल करम कलमल्या अहि महि हली ।
नर नाग सुर मे विकल उछरेउ सिंधु जल मारुत चली[2] ।।

यहाँ" कोल करम कलमल्यो" में "वृत्यनुप्रास" के कारण चमत्कार आ गया है। "नर-नाग" में छंद की छटा भी सुहावनी है । "लड़खरत" शब्द में पंच लघु वर्णों का प्रयोग भी आकर्षक लगता है । कुल मिलाकर "ओजगुण के उपयुक्त पदावली का प्रयोग वातावरण की उचित सृष्टि करने में सफल हुआ है इस प्रकार कवि का वर्ण चयन विषयक विवेक सराहनीय है ।

कहीं -कहीं पर कवि ने वर्णों के साथ कुछ तोड़ मोड़ भी किया है - "विश्रान्त्वै जानाति विद्वज्जन परिश्रमम् ।" इस श्लोक का अनुवाद करते हुए कवि ने "परिश्रम" को पेश्रर्म" कर दिया है -

विद्वान बिन जाने कहा, विद्वन की पेश्रर्म ।
जैसे बंझा नेहरी, प्रसव पीर को मर्म[3] ।।

यहाँ "परिश्रम" के स्थान पर "पेश्रर्म" शब्द को तोड़ना मरोड़ना अनुचित लगता है(ग्रन्थ के अनेक स्थलों पर कवि ने ऐसा ही किया है, जिसे वर्ण दोष की परिधि में समझना चाहिए । यहाँ"विद्वज्जन का श्रम"भी उचित हो सकता था ।

1- विश्रामसागर , रघुनाथदास रामसनेही, अध्याय-1 पृ0 7
2- वही वही, अध्याय- 26, पृ0 248
3- वही, वही, अध्याय- 47, पृ0 500

जाते कृष्ण कृपाल के, कहौं चरित चित चोर ।
अहै अमित बाखान मित, होइ रुचित लखि थोर ।।[1]

यहाँ "चरितचितचोर" में चकार और रकार का प्रयोग वृत्यनुप्रास की छटा में सहायक हुआ है । अमित और "मित" का "यमक" भी चमत्कारी लगता है । इससे कवि का यह सिद्धान्त भी स्पष्ट होता है कि वह "गागर में सागर" भरने की प्रवृत्ति का पक्षधर है । सीमित शब्दों में अधिक भाव भरना कवि का लक्ष्य होना चाहिए ।

हाई हाईकरि यशुमति धाई । सिसिकिन ललकि लखि गोद उठाई ।
भवन आनि दीन्ह्यो बहुदाना । कह्यो बचायो हरि भगवाना ।।[2]

यहाँ पर "हाय- हाय" में "वीप्सा" का चमत्कार है और "सिसिकिन ललकिलखि" में लकार का प्रयोग अत्यन्त सार्थक एवं वात्सल्य के लालित्य का द्योतक है । इसी प्रकार निम्नलिखित प्रयोग में भी वर्ण सौन्दर्य दृष्टव्य है :-

कहीं बाजन विपुल अपारा नाचहीं ।
गावैं गंध्रब गीत समय सुषमा बढीं ।।[3]

यहाँ पर नकार और गकार का प्रयोग वर्ण मैत्री के अनुकूल है । वृत्यनुप्रास भी बन गया है । द्वितीय पंक्ति में गकार का त्रिवार प्रयोग भी उत्तम प्रतीत होता है "समय - सुषमा" की तुक भी उत्तम है । केवल "गन्धर्व" के स्थान का "गंध्रब" शब्द वर्ण सौन्दर्य में न्यूनता उत्पन्न करता है ।

(ख) पद विन्यास-

विश्रामसागर के कवि ने पद विन्यास में विशेष सतर्कता रखी है। पद मैत्री की दृष्टि से उनके पद बड़े ही महत्व पूर्ण हैं । सभी पद अपने सामर्थ्य

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 1 पृ० 502
2- वही, वही, अध्याय- 2 पृ० 529
3- वही, वही, पृ० 604

के अनुकूल ही रचे गए हैं इतना अवश्य है कि कहीं कहीं कुछ शिथिलता भी दिखलायी पड़ती है किन्तु प्रवाह के कारण उक्त दोष भी विशेष नहीं खटकता उनके शब्द विन्यास या पद विन्यास की विशेषताएं निम्नलिखित उदाहरणों में द्रष्टव्य हैं -

दश गौ मारे पाप , सादृश एक द्विज संहारे ।
दश द्विज बध जो पाप , एक स्त्री के मारे ।।
दश स्त्री बध पाप , एक कन्या बध होई ।
दश कन्या बध पाप , खरी एक मारे सोई ।।[1]

यहाँ "दश " शब्द शब्द की बार बार प्रयुक्त शब्दावली के कारण एक चमत्कार आया है । इसी प्रकार " एक" या "एक" शब्द की भी अनेक बार आवृत्तियाँ की गई है, जिनसे सुनने में एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है । "पाप" पद और "मारे" शब्द भी बराबर प्रयुक्त हुए हैं, जो पुनरुक्ति प्रकाश में सहायक हैं।

कोई कर्म के के बहुत काल रावे ।
कोई कर्म केके अग्निन में न दाहै ।।
कोई कर्म की न्हों हमें जीति लीन्हों ।
कह्यौ विष्णु के धाम विश्राम दीन्हों ।।[2]

यहाँ " कोई कर्म के के" इन पद समुदाय द्वारा चमत्कार आया है । इससे यह सिद्ध होता है कि "पुनरुक्ति प्रकाश" अलंकार के सृजन में कवि पद-विन्यास का विशेष आश्रय लेता हुआ प्रतीत होता है ।

लखि देव जय जय ध्वनि करि करि सुमन बहु बरषायहू ।
रघुनाथ गुणवद नाथ धरि यह कथा सुभग गायहू ।।[3]

- -

1- विश्रामसागर, रघुनाथदास कृत, अध्याय-9 पृ0 44
2- वही, वही, अध्याय-14, पृ0 130
3- वही वही, अध्याय-18, पृ0 171

यहाँ प्रथम पंक्ति इत्थ पदावली के बहुत प्रयोग के कारण आकर्षक लगती है । "कहि कहि" में "वीप्सा" द्वारा भी चमत्कार लाया गया है । इस प्रकार मनोवांछित पदों के प्रयोग में कवि कुशल प्रतीत होता है ।

जाय कुमति दे द्रव्य , जाय संतोष ते ममता ।
जाय कपट ते प्रीति, जाय रिस कीन्हें समता ।।
जाय मधा ते शौच , जाय पातक ते शोभा ।
जाय कुपथ ते रोग, जाय वैराग्य ते लोभा ।।[1]

यहाँ पर आठ बार "जाय" शब्द के प्रयोग से चमत्कार आया है । एक पद की अनेक आवृत्ति द्वारा आर्थिक चमत्कार में भी वृद्धि हुई है । इसके अतिरिक्त सूक्ति के रूप में कण्ठस्थ करने के लिए इस प्रकार की पदावली उपयुक्त सिद्ध होती है -

नमो कृष्ण तोहिं कृष्ण तोहिं रामं बलरामं ।
तुही दशौ अवतार तुहीं तारण सब कामं ।।
नमो नमो जय जगपति जय अधम उधारण अघ हरण ।
रघुनाथदास यहि भाँति प्रभु अस्तुति कीन्हीं गहि चरण ।।[2]

यहाँ पर "तुही" "नमो नमो" और "जय" पदों का विन्यास मनोहर लगता है। पद मैत्री की दृष्टि से "अधम उधारण अघ हरण" यह पदावली भी उत्तम प्रतीत होती है । छेकानुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश और "वीप्सा" जैसे अलंकारों का अस्तित्व उक्त पदावली पर ही टिका हुआ है ।

प्रणमामि भवं भव भय शमनं । करुणामृत सिन्धु कलि दमनं ।
निरगुणं गुणाकर शंकरणं । जय शीशिव शंकर के शरणं ।।[3]

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-22 पृ0 199
2- वही, वही, " 24 पृ0 219
3- वही वही, " 33 पृ0 327

उपर्युक्त स्तुति के प्रसंग में संस्कृतनिष्ठ पदावली उपयुक्त लगती है । "भई भय भय " पदावली में वर्ण मैत्री और पद मैत्री सुन्दर लगती है, जिससे "वृत्यनुप्रास का चमत्कार श्रुति सुखद लगता है । "कंकणों" में ध्वन्यात्मक सौन्दर्य छंद को मनोहर बना देता है । "करुणामृत सिन्धु की समस्त पदावली अर्थगाम्भीर्य के साथ ही "रूपक " अलंकार को विभूषित करती है । इस प्रकार समष्टिरूप में काव्य की उत्कृष्टता बढ़ाने में कवि द्वारा प्रयुक्त पदावली पूर्णरूप से सफल हुई है । उपर्युक्त उदाहरणों से यही सिद्ध होता है कि कवि का "पदविन्यास" पर असाधारण अधिकार था ।

वाक्य विन्यास -
===========

कवि का वाक्य विन्यास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्यों कि वाक्य के द्वारा ही वक्ता का अभिमत निष्कर्ष निकलता है। इस कवि ने लघु वाक्यों द्वारा सम्वाद स्थलों में चमत्कार उत्पन्न किया है।जैसे - रावण अंगद सम्वाद, हनुमान- रावण सम्वाद आदि । इन स्थलों में अनेक छोटे - छोटे उपवाक्यों द्वारा वक्रोक्ति का चमत्कार उत्पन्न किया गया है । इसी प्रकार मिश्रित- वाक्यों के प्रयोग द्वारा किसी घटना परिस्थिति या उपदेश कथन को व्यक्त करने की चेष्टा की गई है और गम्भीर वाक्यों द्वारा दार्शनिकता के विचारों की अभिव्यक्ति दी गई है । इस प्रकार कवि ने प्रसंगानुकूल विभिन्न प्रकार के वाक्यों का संयोजन किया है,जिससे उसकी वाक्य-रचना-चातुर्य का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है । इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं -

शशि भाल श्रुति अंचित मुख मल मग सम नयन ।
कर सब कर पग अब तक मोर पक्ष शशि नयन ।
मोर पक्ष शशि नयन प्राण बिन विग्रह अहई
नेहि न गुरुजन चरण रामगुन सुने न कहई ।
करै न जो हरि कर्म चित अटै न तीरथ मुनीस ।

दारु ज्यौंपिता नरित लौं धावत नाचत सीस ।।[1]

यहाँ पर कवि ने एक विस्तृत वाक्य द्वारा यह बतलाया है कि जो व्यक्ति भगवान के लिए कर्म नहीं करता, तीर्थाटन नहीं करता, उसका सिर भार है, वह कठपुतली की भाँति दौड़ता और सिर हिलाता है । इससे जीवित होने पर भी व्यक्ति की निर्जीविता व्यंग्य है ।

पति गति जानि लक्षित निवानी । किम करोमि को गजक ठानी ।
एक दिन बामन कौन पयाना । दिवर निकार मिलै मुनि नाना ।।[2]

यहाँ पर 'भागवत्' की भूमिका में लिखित "किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहतु" इस वाक्य का अनुकरण लगता है । इससे यह सिद्ध होता है कि कवि "संस्कृत वाक्यावली" का भी प्रयोग करता है, जो पठित ग्रंथों के प्रभाव के कारण है । ऐसी वाक्यावली हिन्दी को सक्षम करती है ।

नीर छीर की संगति पाई । बनी मिटयौ तोई मोल बिकाई ।
वृक्ष अनेक भाँति के कोई । मलयागिरि संग चन्दन होई ।।[3]

यहाँ पर कवि ने सत्संगति के महत्व को बतलाने के लिए नीर क्षीर प्रीति का दृष्टान्त दिया है और उसी सन्दर्भ में वृक्ष चन्दन का भी उदाहरण दिया है । दोनों उपवाक्यों को मिलाकर एक विस्तृत वाक्य बनाया है । इस प्रकार कथ्य के अनुकूल वाक्य में रचना भी है ।

पुरुष प्रकृति महतत्त्व निर, औगुण अन्तः कर्म ।
इन्द्री सुरतत वायु तनु, इनतो परे जो ब्रह्म ।।[4]

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2 पृ0 20
2- वही, वही, " -2 पृ0 303
3- वही वही, अध्याय-33, पृ0350
4- वही वही, अध्याय-38, पृ0 390

यहाँ पर "प्रश्न" क्या है? इस तुच्छ प्रश्न को बतलाने के लिए भी वाक्य का आकार बढ़ा कर दिया गया है और उतने पर भी गागर में सागर भरकर एक ही दोहे में "प्रश्न" का स्वरूप निश्चित करने की चेष्टा की है ।

सब अहहिं कछु कहहिं बखानी । कौशलाधीश सुवन की बानी ।[1]
गिरि अरि सुत रिपु पुरी सिधाई । अबहूँ नाहिं आये सुखदाई ।।

यहाँ पर कवि ने गोपियों द्वारा उद्धव से कृष्ण के आने का समाचार पुछवाया है । द्वितीय चौपाई के पूर्वार्द्ध में वाक्य की जटिलता स्पष्ट है - गिरि अरि= इन्द्र उसके सुत का शत्रु = अर्जुन का शत्रु = मधु [मित्र का शत्रु भी शत्रु होता है] उसकी पुरी =मथुरा । इस प्रकार यहाँ "कूट" का प्रयोग करने से वाक्य का आकार स्वाभाविक नहीं रह गया , उसमें क्लिष्टत्व दोष आगया है । ऐसा प्रतीत होता है कि "सूर" के प्रभाव से इस कवि ने यत्र तत्र कूट पदावली का प्रयोग किया है ।

कपि कौन तू दूत अक्ष घातक कौन बल रघुनाथ के ।
रघुनाथ को वरप्रकाशित अनुज लछमन साथ के ।
लछमन को रथ बन्धिनि जानत परशुधर मद मेटि करेउ ।
परशुधर को सहस भुज रिपुदीप वैरि सब सिर धरेउ ।।[2]

यहाँ प्रश्नोत्तर शैली के वाक्यों का लघु आकार "सम्वाद तीक्ष्णत्व" की वृद्धि करता हुआ प्रतीत होता है । वक्रोक्ति-शैली के इन वाक्यों में "केशव" की "रामचन्द्रिका" का प्रभाव स्पष्ट है । वचन-विदग्धता और दु चातुरीपता के प्रभाव से सम्बलित उक्त पद के वाक्यों का आकार श्लाघनीय है ।

है अंगद बलवन्त बालि सुत तोहीं आही ।
तब तम ताके पुत्र ताहु ऐसी मति जाही ।
सम्भवत क्यों नाहिं मरेउ बालि कर नाम धरायो ।
जिहिं डारेउ सिन्धु मारि ताहु राउ इत बहायो ।
अबहो मम दल मे सकल कपि दूत कह नित राम पति ।

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9, पृ0 612
2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 22 पृ0 974

3/-

हनि रन मल कुल बधु पै , आठ आठ दिसि देइ बलि ।।[1]

यहाँ पर "रावण अंगद सम्वाद" के प्रसंग में रावण द्वारा भेद-नीति का प्रयोग किया गया है । मर्मान्तिक शब्दावली से युक्त इन वाक्यों में तीव्रप्रभाव कारिता भरकर कवि ने ध्वन्यात्मक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है ।

निष्कर्ष यह है कि कवि ने पिंगल शास्त्र के आधार पर ही वर्णों का प्रयोग किया है।वर्णों पर अधिक ध्यान देने के कारण इस ग्रन्थ में शब्दालंकारों के प्रयोग का आधिक्य है।वर्ण चमत्कार अनुप्रास, यमक, और वीप्सा में अधिक होता है । पुनरुक्ति प्रकाश में भी यह विशेषता होती है।अतः बहुत सावधानी के साथ वर्ण मैत्री का ध्यान रखते हुए कवि ने वर्णों का प्रयोग किया है।पदों की सुन्दरता और गुणों की ओर भी उनकी दृष्टि रही है जहाँ तक उनके वाक्यों का प्रश्न है,उनमें सरलता, गम्भीरता सूक्ष्मता आदि के साथ ही साथ तीव्र प्रभाव कारिता कथन पटुता आदि गुणों की ओर भी उनकी दृष्टि रही है । किन्तु उनके अधिकांश वाक्यों में सरलता और सुबोधता के गुण विद्यमान हैं । कुछ ही ऐसे स्थल हैं जहाँ पर कूट शब्दावली के प्रयोग करने से वाक्यों के स्वाभाविक रूप में बाधा आ गयी है और वाक्यों का कृत्रिम रूप दिखायी पड़ने लगा है किन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं ।

अस्तु समष्टि रूप में कवि के वर्ण पद और वाक्य सभी वर्ण्य विषय के अनुकूल प्रतीत होते हैं जैसा कि तुलसी ने लिखा है -

सरल कवित कीरति विमल । सोहि आदरहीं सुजान [मानस]

इसी पद्धति का पालन इस कवि ने भी किया है ।

[ब] मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग एवं औचित्य -

भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति बढ़ाने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग काव्य क्षेत्र में भी किया जाता है । इनमें लोक जीवन की भावनायें एवं अनुभूतियाँ छिपी रहती हैं । मुहावरा शब्द उर्दू से हिन्दी में आया है, जिसका अर्थ होता

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 25, पृ0 1014

क्रमसं0	मुहावरा	संदर्भार्थ	पृ0 सं0 विश्रामसागर
5-	छठी का दूध	कठोर कष्ट का अनुभव	549 (1)
6-	अपना दाम खोटा	अपनी कमी	620 (2)
7-	लातन के देव बातन में	दुष्ट की दंभीपता	632 (3)
8-	एक पंथ दो काज	लाभ की प्रवृत्ति	636 (4)
9-	नगन न्हाय सो काह निचोवै	निर्धनता में दान देना	640 (5)
10-	चींटी के पंख उगना	छोटों का इतराना	1007 (6)

क्रमसं0	लोकोक्तियाँ	संदर्भार्थ	पृ0सं0विश्रामसागर
1-	दूसरों को गड्ढा खोदना	छली का स्वयं छलित होना	632 (7)
2-	सोने सुगंध होना	गुणी में अधिक गुण	644 (8)
3-	समय चूक	समय चूक कर पछताना	731 (9)
4-	नाई नाई से बनवाई	नातकों से मोल नहीं	854 (10)

1- अब तक कही मोर गुन सुधा । काहुन आजु छठीकर दूधा ॥

2- ऊधव तुम्हरी बात सुनि भयो न हमरे रोष अनोख खोटो दाम तो परखैया - का दोष ॥

3- कह हलधर यह सब कोउ जाने । लात क भाई बात नहिं माने ॥

4- रिपु उराह पुनि तुम्हे निहारेऊँ एक पंथ दै काज सारेऊँ ॥

5- नगन न्हाय सो काह निचोवै । ज्यहि धन नाहिं सो का कोउ खोवै ॥

6- देख्यो कौतुक काल कर विविधि विधि भिन्न पंथ ॥

7- पर अपकार किये दुख भारी । अपने गाढ़ लेहि दुख तयारी ॥

8- अस गुन रुप तेज सम्पन्ना । जिमि सुठि सोने नाहिं सुगंधा ॥

9- गई बीति अब पुनि कह आवै । समय चूकि फिरि का पछितावै ॥

10- हमरी तुम्हरी कवि उतराई । नापित नापित की बनवाई ॥

औचित्य -

अब प्रसंगों को ध्यान पथ में रखते हुए इस बात पर विचार किया जाएगा कि कवि ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग स्थलों में कहाँ तक औचित्य का पालन किया है -

1- बीस बिस्वा -

इस मुहावरे का प्रयोग पृष्ठ संख्या 80, 542, 832, में किया गया है। प्रथम में कवि ने जिन अपराधों के कारण व्यक्ति नर्कगामी होता है उसके सम्बन्ध में कहा है। बिना देखे हुए ही जो किसी व्यक्ति को दोषी ठहराता है, वह निश्चय ही पूर्णतया नर्कगामी होता है। यहाँ पर यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब हम किसी को बिना देखे हुए ही दोष ठहराते हैं, तब हमारी अन्तरात्मा ही हमारा विरोध करने लगती है। हृदय की तुला पर जो बात न टिकती हो वह दोष है। अतः यह सिद्ध होता है कि बिना जाने बूझे किसी को दोष नहीं देना चाहिए। यदि दोष देते हैं तो ऐसी स्थिति में हमारा आचरण असत्य माना जाएगा। और तुलसी ने कहा भी है -

नहिं असत्य सम पातक पुंजा, गिरि सम होइ कि कोटिक गुंजा ।।[1]

अतः यह सबसे बड़ा भारी अपराध सिद्ध हुआ। इसलिए कवि की पूर्ण-विश्वास के साथ यह निर्णय भी दे दिया है कि बिना देखे हुए ही किसी को दोष देने से बीस बिस्वा नर्क में वास होता है। इस प्रकार यह प्रयोग अपने में पूर्ण उचित है। इसी प्रकार इसका दूसरा प्रयोग कृष्ण की 'माखन-चोरी' के प्रसंग में किया गया है। यहाँ पर एक गोपी कृष्ण के दोषों को परिगणित कराती हुई यह कहती है कि यह कृष्ण आपके सामने तो साधु दिखायी पड़ता है, किन्तु यह बीस बिस्वा अत्यन्त खोटा है। यह प्रयोग भी गोपियों की व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर उचित

1- रामचरित मानस (तुलसीदास)

ठहरता है, क्योंकि कृष्ण के द्वारा किए गए माखन चोरी आदि के प्रसंग में कृष्ण गोपियों की दृष्टि में छोटे थे ही, चोरी करना तो सामाजिक अपराध माना ही जाता है। नटखट कृष्ण के बालचरितों के आधार पर उपालम्भ देने वाली गोपी के मुख से कृष्ण को बीस बिस्वा अति छोटा बताना कोई बुरा नहीं है ।

इसी मुहावरे का तीसरा प्रयोग 'कैकेयी-कोपभवन' के प्रसंग में मन्थरा कैकेयी से कहती है कि राम का राज्याभिषेक तुम्हारी विपत्ति का कारण बनेगा। सपत्नी-भाव के प्रसंग में यह मनोवैज्ञानिक सत्य होता है कि सपत्नी का वैभव दूसरी के लिए विपत्ति का कारण होता ही है । अतः यह प्रयोग भी उचित एवं यथार्थ है ।

2- साँप छँछूदर –

यह प्रयोग राजा 'दशरथ' के कथा-प्रसंग में किया गया है । उसके सामने समस्या आती है कि यह भक्ति को त्यागता है तो नर्क जाता है और यदि अपने वचनों का उल्लंघन करता है, तो लोक में अपकीर्ति होती है। इस प्रकार वह दुविधा में पड़ जाता है क्योंकि दोनों प्रकार से धर्म की अवहेलना होती थी । इस दुविधा को व्यक्त करने के लिए 'साँप-छंछूदर' मुहावरे का प्रयोग किया है, जो भाव की व्यञ्जना करने के लिए विशेष उचित है ।

3- दूध बताये सुधर न जावे –

तीसरा प्रयोग दधि – माखन चोरी के प्रसंग में किया गया है। माता-यशोदा कहती है कि मैं जब अपनी आँखों से कृष्ण को अपराधी देख लूँगी तब दंड दूँगी । इस पर गोपी उत्तर देती हुई कहती है कि – नीति-निपुणै बात से ही लक्षित हो जाता है, कहीं दूध बताने से ऊँट नहीं बनता । यह भी लोक जीवन का प्रयोग है । इसका कुल तात्पर्य यही है कि बड़ा अपराधी कृष्ण समझाने बुझाने से नहीं मान सकता, यह दण्डनीय है । प्रसंग की भाविक-व्यञ्जना के लिए यह प्रयोग भी विधिवत है ।

4- कान काटना -

'कान-काटने' का प्रयोग अत्यन्त चतुरता के लिए किया जाता है । माखन चोरी के प्रसंग में गोपी ने कृष्ण की विशेष चालाकी के लिए यह प्रयोग किया है कि यह अभी तक तो कहानी सुनी गयी थी कि एक कवि चतुरता के कारण मृत्युदण्ड से भी छूट कर आ गया था । किन्तु इस कृष्ण ने तो उसके भी कान काट लिए । वास्तव में कृष्ण की वाक्चातुर्य वैसी ही थी, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए उक्त मुहावरा उचित प्रतीत होता है ।

5- छटी का दूध निकालना -

इस प्रयोग करती हुई गोपियाँ कहती है कि हे माता यशोदा जी, अभी तक तो आप कहा करती थीं कि मेरा पुत्र सीधा है, किन्तु अब तो यह छटी का दूध निकाल रहा है। वास्तव में कृष्ण के बात - बात के उलहने यशोदा को बहुत कष्ट दे रहे थे। एक बार माता तंग आकर कृष्ण को बाँधने लगती हैं बाँधते समय रस्सी हर बार चार अँगुल छोटी पड़ जाती है, तब गोपियाँ इसी मुहावरे का प्रयोग करती हैं । इसी की व्यञ्जना करने के लिए कवि ने इस मुहावरे का प्रयोग किया है, जो उचित है ।

6- अपना दाम खोटा तो परखने वाले को क्या दोष -

जब उद्धव जी ज्ञान का उपदेश देते हैं, तब उनकी इस विपरीत उपदेश प्रकृति को नकारती हुई गोपियाँ कहती है कि आपकी बातों को सुन हमें क्रोध नहीं आता क्यों कि जब हमारे कृष्ण ही विपरीत हैं तो उनके सन्देश-वाहक आपका क्या अपराध है । इस प्रकार उक्त भाव की व्यञ्जना के लिए यह प्रयोग भी सार्थक है ।

7- लातन के देव बातन में -

कृष्ण-जरासन्ध-युद्ध के प्रसंग में हलधर जरासन्ध से कहते है - कि तू समझाने से नहीं मानेगा, दण्ड से नहीं मानेगा, + क्यों कि लोक जीवन

मैं भी कहा जाता है कि लातों के देव बातों से नहीं मानते । जरासन्ध की क्रूरता के लिए यह प्रयोग बहुत सार्थक है ।

8- एक पंथ दो काज -

जब श्रीकृष्ण 'काल-यवन' को नष्ट करने के लिए उस कन्दरा में पहुँचते हैं, जहाँ राजा मुचुकुन्द शयन कर रहा था, वहाँ पर यवन के पहुँचते ही मुचुकुन्द की कोप-दृष्टि से यवन भस्म हो गया/तदुपरान्त कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए । इस प्रकार उन्होंने एक पंथ दो काज कर लिए । शत्रु भी मर गया और राजा को दर्शन देने का वरदान भी पूरा हो गया । इस प्रकार यहाँ पर उक्त मुहावरे की पूर्ण सार्थकता है ।

9- नंगा न्हाय तो काह निचोवै -

यह लोक जीवन का मुहावरा है जिसमें कृष्ण की दरिद्रता पर व्यंग्य किया गया है।जैसे वस्त्रहीन स्त्री निचोड़ने के लिए क्या करेगी इसी प्रकार धनहीन व्यक्ति क्या डालेगा एवं क्या निकालेगा । इस बात की तीव्र व्यंजना कराने के लिए कवि ने उक्त मुहावरा चुना है । जो कुछ अशुद्ध होता हुआ भी ग्राह्य है ।

10- चींटी के पंख उगना -

जब कोई छोटा व्यक्ति बहुत इतराता है तब उसकी गति पर व्यंग्य करने के लिए चींटी के पर उगना " यह प्रयोग किया जाता है । वास्तव में रावण जैसे वीर के समक्ष वानरों की शक्ति ही क्या थी ? अतः अपने बल पर अहंकार रखने वाले रावण के द्वारा वानरों के लिए अल्पाकलन करने की व्यंजना करना उचित ही है ।

00- लोकोक्तियाँ -

1- दूसरों को गड्ढा खोदना -

दूसरों को हानि पहुँचाने वाले महान कष्ट पाते हैं।इस बात की व्यंजना करने के लिए कवि ने उक्त मुहावरे का प्रयोग किया है क्योंकि प्रायः

लोक-जीवन की यह अनुभूति है कि जो कोई दूसरों के लिए गड्ढा खोदता है उसका पैर कुएं में अवश्य पड़ता है । तात्पर्य यह है कि दूसरों को हानि पहुँचाने से अपनी बड़ी हानि होती है । अतः अर्थ अभिव्यक्ति की दृष्टि से उक्त लोकोक्ति का प्रयोग सफल है ।

2- सोने सुगंध होना -

सोने में सुगंध का प्रयोग लोकोक्ति विशेष प्रसिद्ध है। जिस समय कृष्ण और बलभद्र रुक्मिणी के नगर में भ्रमण करते हैं उस समय सभी लोग उनके सुन्दर रूप और गुणों के सम्बन्ध में कहते हैं कि सोने में सुगन्ध है। वास्तव में कृष्ण बलभद्र अद्वितीय सुन्दर थे और उनमें प्रशंसनीय अनेक गुण विद्यमान थे । अतः उक्त लोकोक्ति का प्रयोग इस सन्दर्भ में सार्थक है ।

3- समय चूकना-

इस लोकोक्ति का प्रयोग कवि ने इस सन्दर्भ में किया है कि जब अवस्था समाप्त होने लगती है तब भजन करने का समय नहीं रहता और पश्चाताप ही हाथ लगता है। यह बात यथार्थ है अतः यह प्रयोग भी समुचित है ।

4- नाई नाई से बनवाई -

यह प्रसंग राम-केवट-सम्वाद का है। जहाँ पर केवट राम से उतराई नहीं लेना चाहता । लोक जीवन में यह प्रसिद्ध है कि नाई दूसरे नाई से बाल बनवाई नहीं लेता । जैसा कि रामचरित-मानस में लिखा है कि केवट केवट से उतराई नहीं लेता । यहाँ पर नाई जैसा रूपी कालिमा को जिस प्रकार नष्ट कर देता है उसी प्रकार भगवान भक्त के समस्त पापों को दूर कर देते हैं। पाप कालिमा का ही प्रतीक है । अस्तु यह प्रयोग भी उचित ही है । यह बात दूसरी है कि विश्रामसागर के इस प्रयोग की तुलना में रामचरित मानस का प्रयोग अधिक उपयुक्त लगता है । किन्तु नवीनता और लोक जीवन का संस्पर्श अधिक

दिखलाने के लिए कवि ने इस लोकोक्ति का विशिष्ट प्रयोग किया है ।

सारांश यह है कि मुहावरों एवं लोकोक्तियों के जितने सीमित प्रयोग इस कवि ने किए हैं, वेह बहुत ही उपयुक्त एवं सार्थक है तथा लोक-जीवन का सम्पर्क अधिक मात्रा में है तथा कवि के दृष्टिकोण एवं उसके विचारों को अभिव्यक्ति देने में उपर्युक्त मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ वरदान सिद्ध हुई हैं ।

(ग) संस्कृत , उर्दू, फारसी एवं आञ्चलिक भाषाओं के प्रयोग -

'विश्रामसागर' में जहाँ कवि ने अवधी के प्रचलित रूप को महत्व दिया है वहाँ उसने संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है । जिसका विशेष विवरण अगले पृष्ठों में प्रस्तुत किया जाएगा, किन्तु अनेक स्थलों पर तो विभक्ति युक्त संस्कृत पदों का प्रयोग खटकने लगता है। उदाहरण के लिए- अस्माकम्[1] - यह 'युष्मद्' शब्द के षष्ठी विभक्ति के बहुवचन का रूप है, जिसको कवि ने चौपाई छन्द में ही प्रयुक्त कर दिया है । जो सामान्य पाठक के लिए क्लिष्ट है । इसी प्रकार सविभक्तिक संस्कृत पदों को भी तद्भव बना कर जो प्रयोग किए गए हैं, वे भी अनुचित लगते हैं। यथा[2] "ब्रवीत" शब्द "कहा है" अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । इसी प्रकार "कहता हूँ" इस अर्थ में "ब्रूं"[3] शब्द का प्रयोग भी खटकता है । "तद्" शब्द के षष्ठी के एकवचन में "तस्य"[4] यह रूप होता है, जिसका प्रयोग संस्कृत छंदों में ही होना चाहिए, किन्तु कवि ने हिन्दी की चौपाई में भी इसका प्रयोग कर दिया है, जो अनुचित लगता है । संस्कृत में "को भवान्"[5] का प्रयोग "आप कौन है" इस अर्थ में होता है, किन्तु कवि ने इसे

- -

1- भाषा बन्ध करब मैं ताते । समुझि परै अस्माकम् जाते ॥ विश्राम० पृ०13

2- तहँ कोउ कहै कहा है भाषा । तोहिते मैं ब्रवीत जिन माषा ॥विश्राम०पृ०17

3- कह रविकुल सुतो सुनि लेहू । मैं जो ब्रूं तामें मन देहू ॥विश्रामसागरपृ० 76

4- सुता तस्य वशि भागा नामा । शोभन पति आवा सिद्ध धामा ॥विश्रा० पृ०31

5- को भवान विविधि विधि भाषा । प्रश्न अहं इत्ये सुनि माषा ॥विश्रा० पृ०374

हिन्दी में प्रयुक्त कर दिया है।इसी प्रकार मैं अर्थ में 'अहं' का प्रयोग और इस प्रकार अर्थ में "इत्थं" का प्रयोग उचित नहीं लगता । संस्कृत में "इमपि"[1] का प्रयोग 'यह भी' इस अर्थ में होता है + और "प्रोक्त" शब्द का अर्थ 'कथित' होता है । इन संस्कृत शब्दों का प्रयोग हिन्दी में नहीं होना चाहिए, जो कवि कर्म के लिए उचित नहीं । संस्कृत में "भोज्य" शब्द का तद्भव रूप "भोजिका"[2] का प्रयोग हिन्दी में नहीं होना चाहिए, किन्तु कवि ने इसका भी प्रयोग किया है । संस्कृत के "वरम्बूहि"[3] शब्द का प्रयोग "वरदान माँगो" इस अर्थ में होता है जो सविभक्तिक है । हिन्दी में उसका प्रयोग न होना चाहिए, किन्तु कवि ने किया है, जो अनुचित लगता है । "स्था" धातु से " तिष्ठ" का प्रयोग बनता है, किन्तु 'बैठने' के अर्थ में कवि ने इसका तद्भव "तिष्ठन"[4] शब्द का प्रयोग किया है जो साधारण पाठक के लिए कठिन है । "तस्य" उरसि[5] ये दोनों शब्द सविभक्तिक हैं, जिनका शाब्दिक अर्थ होता है "उसके हृदय में" किन्तु कवि ने हिन्दी में भी इसका प्रयोग कर दिया है जो अनुचित लगता है । यही प्रयोग पृष्ठ 859 में भी दृष्टव्य है । इसी प्रकार "इमपि"[6] शब्द का प्रयोग भी 'इस प्रकार' अर्थ में किया गया है, जो "इसको भी " अर्थ में होता है अतः यह पद वक्ता के वास्तविक अर्थ को व्यक्त ही नहीं कर पाता ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि कवि के सविभक्तिक संस्कृत-पदों के प्रयोग करने में इतनी अधिक रुचि रही है कि उसने साधारण हिन्दी के पाठकों की कठिनाई का ध्यान नहीं दिया और न इस बात पर भी विचार किया कि इन प्रयोगों से पदमैत्री में बाधा पड़ती है ।

- -

1- हरि बिन विषय नाहि सब धंधा, इमपि प्रोक्त शारदा अबंधा ।। पृ0 470 विश्रामसागर

2- ता सम बैठिय भोजिका श्रुति परिमान ।। पृ0 473, विश्रामसागर

3- सब विधि देखि समाधि बढ़ोली , वरम्बूहि तब देवी बोली ।। पृ0 681, विश्रामसागर

4- विधिवत कीन विताम विधि, तिष्ठन चित नर नारि ।। पृ0 795, विश्रा0

5- जगत रीतिसौं रहित है, तस्य उरसि तब भौन ।। पृ0 860, विश्रामसागर

6- इमपि भरत की करत बड़ाई । हर्ष सहित सब रैनि बिताई ।। पृ0 896 विश्रामसागर

संस्कृत के स्वाभाविक प्रयोग -

कवि के समक्ष रामचरित-मानस आदर्श ग्रन्थ के रूप में रहा है, फलतः जिस प्रकार रामचरितमानस में प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में कतिपय श्लोक दिए गए हैं, उसी प्रकार विश्रामसागर के कवि ने भी 'इतिहासायन खण्ड' के प्रारम्भ में दो श्लोक, कृष्णायन खण्ड के प्रारम्भ में साढ़े चार श्लोक और रामायण खण्ड के प्रारम्भ में एक श्लोक दिया है, किन्तु संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से इन श्लोकों में भी अशुद्धता है + और कुछ में तो जान बूझकर हिन्दी, संस्कृत पदावली का सम्मिश्रण कर दिया गया है यथा -

नमो शारदा नित्यदा ज्ञान बुद्धि । नमो गुरु गणेशं हरं विघ्न सिद्धि ।
नमो राम घनश्याम कामस्वरूपं । नमो जानकी जक्त माता अनूपं ।
नमो भरतं सह लक्ष्मणं शत्रु आरी । नमो केसरीनन्दनं सुक्खकारी ।।

इसमें जगत् के स्थान पर "जक्त" अरि के स्थान पर 'आरी' और सुखकारी के स्थान पर 'सुक्खकारी' के प्रयोग जानबूझकर किए गए हैं ।

कुछ स्थलों पर तो जाने अनजाने व्याकरण की अशुद्धियाँ हो गयी हैं। यथा- रामायण खण्ड के बालकाण्ड के प्रथम श्लोक में "धामन्" शब्द के प्रयोग में "धामानम्" लिखना चाहिए, किन्तु कवि ने 'धामन्' लिखा है। इसी प्रकार "धनुष" शब्द का प्रयोग अकारान्त ही किया गया है और "त्रिपुरारि हर मीषम्" यहाँ पर समासगत अशुद्धि है। इससे ज्ञात होता है कि संस्कृत-व्याकरण का यथार्थ ज्ञान कवि को नहीं था । केवल प्रयोग की दृष्टि से ही उसने श्लोकों को लिखने की असफल चेष्टा की है, + किन्तु इतिहासायन खण्ड के प्रयोग शुद्ध हैं । संस्कृत प्रयोग की अंशोमयी त्रुटि के पश्चात् संस्कृत पदावली की दृष्टि से कवि का ज्ञान पर्याप्त विस्तृत एवं गम्भीर प्रतीत होता है उसके पास संस्कृत के तत्सम् शब्दों का पर्याप्त भण्डार रहा है ।

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, पृ0 90।

उदाहरणार्थ - अनंग, कपाल, कलिंग, आमिष[1], धराधुरी, निर्दय[2], अयन[3] ,[4] विरक्तात[5], शालीन[6], शक्तारिस्य[7], गुरुप आम[8], दुष्टवा, पीत्वा[9], हस्ति[10], पोषण, निर्दिष्ट[11], संस्कृति[12], स्वप्न[13], भार्या[14], वीतराग[15], अवज्ञा[16], दम्भ[17], कुलालय[18], वेदार्थ[19], अंघ्रि[20], पुरातन[21], दयास्पन्दन[22], अविकार्य, प्रशस्तनन्दन, सम्मिलीवनि[23], कुंज[24], पुनि, अवेक्षित[25], विरोधन[26], गमन[27], सुषमा[28], उद्गम[29], कुंभ[30], मधुरित[31], उपेक्षावर्ती[32], विधान[33], सोपाना[34],रामायुध[35], सुविष्टक[36], तापेच्छु[37], कुटिला, कम्बुकंठ[38], कनक भाजन[39], ।

उपर्युक्त शब्दावली के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि के पास संस्कृत प्रधान शब्दावली का पर्याप्त भंडार रहा है ।

<u>उर्दू - फारसी शब्दों का प्रयोग -</u>

'उर्दू' हिन्दी की ही एक विशेष शैली है, अतः हिन्दी के साथ उसका प्रयोग पहले से ही होता आया है । दूसरा कारण यह है कि हमारे देश में लगभग चार सौ वर्षों तक विदेशियों का शासन रहा है। यह स्वाभाविक बात है कि शासकों की भाषा का प्रभाव शासित जनता पर अवश्य पड़ता है । मुगल शासन में हमारी भाषा, खान - पान , रहन - सहन, वेष भूषा आदि के दूर -

---

1- पृ0 2 विश्रामसागर 2- पृ0 72 वही 3- पृ0 83 वही
4- पृ0 141 वही 5- पृ0 143 वही 6- पृ0 166 वही
7- पृ0 238 वही 8- पृ0 298 वही 9- पृ0 286 वही
10- पृ0 367 वही 11-पृ0 402 वही 12- पृ0 426 वही
13- पृ0 426 वही 14- पृ0 458 वही 15- पृ0 468 वही
16- पृ0 474 वही 17- पृ0 474 वही 18- पृ0 483 वही
19- पृ0 547 वही 20- पृ0 555 वही 21- पृ0 686 वही
22- पृ0 729 वही 23- पृ0 769 वही 24 - पृ0 811 वही
25- पृ0 584 वही 26- पृ0 621 वही 27- पृ0 629 वही
28- पृ0 644 वही 29- पृ0 812 वही 30- पृ0 842 वही
31- पृ0 866 वही 32- पृ0 874 वही 33- पृ0 949 वही
34-पृ0 963 वही 35- पृ0 962 वही 36- पृ0 1022 वही
37- पृ0 1061 वही 38- पृ0 1080 वही 39-पृ1084 वही

दूर तक प्रभावित किया था।परिणाम स्वरूप हिन्दी के साथ घुले-मिले उर्दू और फारसी के शब्द केवल साहित्य में ही नहीं, अपितु लोक जीवन में भी इस तरह घुल मिल गए कि उनका पृथक्-करण आसानी से सम्भव न हो सका । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कबीर ,सूर , तुलसी, जैसे दिग्गज कवियों की भाषा में उर्दू और फारसी के प्रभाव से अछूती न रह सकी। यथा -

गई बहोरि गरीब नेवाजू, सरल सबल साहिब रघुराजू ।।[1]

यहाँ पर 'गरीब-निवाज' और 'साहिब' शब्द उर्दू के ही हैं । जिनका प्रयोग महा कवि तुलसी ने किया है । रीतिकाल में भी बिहारी जैसे रससिद्ध कवि ने भी "मनहु साफता रंग" जैसे प्रयोग किए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हिन्दी के साथ उर्दू के मिश्रण भक्तिकाल और रीतिकाल में प्राय: सभी कवि करते आए हैं । विश्रामसागर के प्रणेता बाबा रघुनाथ दास उस समय हुए,जब कि भारतेन्दु युग का प्रारम्भ होने वाला था और तब तक अवधी के साथ उर्दू शब्दावली का मिश्रण एक काव्य भाषा के रूप में प्रचलित हो चुका था । फलत: 'विश्रामसागर' में उर्दू और फारसी के अनेक शब्द मिलते हैं।यथा - सिफती,[2] शादी,[3] रैयत,[4] पाकदिल,[5] खुशाली,[6] पाक,[7] माफिक,[8] दिमाग,[9] ख्वाब,[10] नशा,[11] फिरियादी,[12] दीवान,[13] खत,[14] [illegible] जहाँ,[15] मजुनि,[16] जामा,[17] पर,[18] गुनह,[19] हुजूर,[20]

- -

1- रामचरितमानस,बालकाण्ड,तुलसीदास

2- पृ0 977 3- पृ0 790 4- पृ0 10,13,

5- पृ0 769 6- पृ0 973 7- पृ0 292

8- पृ0 286 9- पृ0 782 10- पृ0 316

11- कलित उत्तम सिपिलि अपारा । होइ नशा नहिं छूटा निहारा । पृ0364

12- पृ0 379,432 13- तख्त दीवान छूटे सुखिमा रहो आइ धाई तेहि थामा पृ0 408

14- पृ0 413 15- पृ0 495

16- तेहि ते होनहार है जेती । नीकि मजुनि होति है तेती । पृ0 510
बहु कथा कहि सकल विचारा । नीक मजुन हाथ करतारा ।।पृ0 569

17- पृ0 531 18- पृ0 541 19- पृ0 557

20- पृ0 399

जुल्म,[1] दीदार,[2] पेच,[3] आतशबाजी, कबूल,[4] नरगदी, शरीक,[5] निसाफ,[6] ।

उपर्युक्त शब्दावली का अनुशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि कवि ने उर्दू और फारसी के अनेक शब्दों को हिन्दी की शैली के अनुसार कुछ परिवर्तित कर लिया है । उदाहरणार्थ – जिन वर्णों के नीचे बिन्दु लगता है उनके बिन्दु को हटा दिया गया है।जैसे – आतशबाजी, निसाफ, कम्बूल, गुजर, शेर, कबूल, जहाँ, दर,नजर, ख्वाब, दिमाग, माफिक, कुरानी आदि । जब कि इन सभी शब्दों के नीचे बिन्दु लगाने की परम्परा प्रचलित है । सम्भवतः अवधी की प्रकृति (मुक्तता) से इन शब्दों को मिलाने के लिए अथवा हिन्दी के उर्दू से अनभिज्ञ पाठकों के लिए उच्चारण सुविधा यह परिवर्तन किया गया है । इन प्रयोगों में अधिकांश प्रयोग ऐसे हैं,जो वर्ण-मैत्री के अनुसार उचित नहीं प्रतीत होते। उदाहरणार्थ – लेहि ते होन हार है वैसी । नीकि बहुनि होति है तैसी ।। यहाँ पर नीकि के साथ"निकाम" शब्द रखने पर छंदो भंग भी न होता और बहुनि का अर्थ भी निकल आता । कवि ने इसका प्रयोग बुरे अर्थ में किया है। किन्तु'बहुनि'का प्रयोग यहाँ पर बिल्कुल अनुचित लगता है और साधारण पाठक के समझ में भी नहीं आता । इसी प्रकार "शरीक" का अर्थ सम्मिलित होता है निम्नलिखित चौपाई में इसका भी अनुचित प्रयोग देखिए –

मिलि सतननमा भई शरीका । देखै आस विनोद हरी का[7] ।।

- -

1- विश्रामसागर, पृ0 610

2- प्रेम बिना पावै नहीं, प्रीतम को दीदार । पृ0 629

3- मुनि रोते कर मुवा पेच समुझि नहीं । पृ0 703

4- विश्रामसागर, पृ0 707

5- विश्रामसागर, पृ0 708

6- विश्रामसागर, पृ0 732

7- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, पृ0 708

यहाँ पर 'शरीक' का प्रयोग खटकता है। इस चौपाई को निम्नलिखित ढंग से भी लिख सकते हैं - मिलि सखी सबै ललनम्मा गाईं । देखन राम विनोद सुहाईं । ऐसा करने पर भाव भी बन जाता और कोई शब्द भी न खटकता ।

अन्त में उर्दू - फारसी शब्दों पर विचार करने से प्रतीत होता है + कि कवि जाति - पाँति के बन्धनों से बहुत दूर रहा है । वह हिन्दी के प्रेमी मुसलमान बन्धुओं को भी इसी दृष्टि से देखता था, अत: उनकी रुचि के अनुकूल यदि कुछ शब्दों को उसने अवधी में रख दिया है, तो कोई विशेष अनुचित नहीं। मेरे विचार से लगभग 1100 पृ0 के इस ग्रन्थ में केवल सतासठ शब्दों का प्रयोग कवि की भाषा में कोई दोष नहीं आने देता ।

आँचलिक शब्दों का प्रयोग -

यद्यपि विश्रामसागर अवधी भाषा का ग्रन्थ है, किन्तु फिर भी इसमें आँचलिक शब्दों के कुछ प्रयोग किए गए हैं। विशेष रूप से जहाँ कवि व्यञ्जनों के नाम गिनाता है, + उन स्थलों में आँचलिक शब्दावली का भी प्रयोग कर देता है । कवि की जन्म भूमि 'रायबरेली' जनपद है, जो अवधी का ही क्षेत्र है । इसके अतिरिक्त उनका अधिकांश जीवन अयोध्या में ही व्यतीत हुआ, जो अवधी का गढ़ है। अत: अवध क्षेत्र के आँचलिक शब्दों का प्रयोग स्वत: हो गया है। यहाँ पर प्रसंगवश आँचलिक शब्दों का क्या तात्पर्य है यह भी जान लेना चाहिए - "आँचलिक" शब्द "अंचल" से बना है। 'अंचल' शब्द का अर्थ है - कोई स्थान, विशेष अर्थात भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ कोई जनपद या क्षेत्र । अत: आँचलिक का अर्थ हुआ - किसी जनपद या क्षेत्र - विशेष से सम्बन्धित[1] अर्थात् जहाँ पर कवि या लेखक क्षेत्र-विशेष की बोलचाल की भाषा , वेशभूषा खान- पान, रहन- सहन आदि को वहीं की शब्दावली में व्यक्त करता है, तब उस शब्दावली को आँचलिक शब्दावली कहते हैं । विश्रामसागर में प्रमुख रूप से कवि ने निम्न लिखित आँचलिक शब्दावली का प्रयोग किया है - जो अयोध्या और यहाँ के

- -

1- साहित्यिक निबन्ध, राजनाथ शर्मा पृ0 915

में ही किया गया है, अतः कोई दोष-विशेष नहीं माना जाना चाहिए।

(घ) संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि व्याकरणात्मक परिचय -

संज्ञा -

व्याकरण की दृष्टि से शब्द के आठ भेद होते हैं। उन्हीं भेदों में से एक शब्द संज्ञा है। संज्ञा किसी वस्तु, स्थान, प्राणी भाव या गुण के नाम को संज्ञा कहते हैं। जैसे विनय, पुस्तक कानपुर और आदि। संज्ञा तीन प्रकार की होती है -

1- जाति वाचक संज्ञा

2- व्यक्ति वाचक संज्ञा

3- भाव वाचक संज्ञा

विश्रामसागर में आयी हुई संज्ञाओं का क्रमानुसार विवरण दिया जा रहा है -

1- जाति वाचक संज्ञा -

व्यक्तियों, वस्तुओं या स्थानों की पूरी जाति के नाम को जाति वाचक संज्ञा कहते हैं -

दीप, सिन्धु गिरि, सरिता, धरणी, रवि, शशि,[1] ज्योतिष,[2] देवता,[3]।

2- व्यक्ति वाचक संज्ञा -

व्यक्ति विशेष, जाति विशेष या स्थान विशेष के नाम को व्यक्ति वाचक संज्ञा कहते हैं -

कंस, देवकी, वासुदेव,[4] बृहद रामायण,[5] चन्द्र चकोरी, नंद, मनु शतरूपा हरि देव, सुनयना,[6] विष्णु, साधु, अग्नि, ध्रुव, सरस्वती, सर्प,[7] अंगद, रामचन्द्र, [illegible]

1- विश्रामसागर, पृ0 513

2- विश्रामसागर, पृ0 858

3- विश्रामसागर, पृ0 651

4- विश्रामसागर, पृ0 519

5- विश्रामसागर, पृ0 952

6- विश्रामसागर, पृ0 263

7- विश्रामसागर, पृ0 651

विभीषण, उद्धव, नन्द, अरुन्धती,[1] नारद, कौशल्या, शिव, असुर, सुमित्रा,[2] शिवि, दधीचि, हरिश्चंद्र, मनु,[3] ।

3- भाव वाचक संज्ञा -

विशेष भावों, दोषों व गुणों के नाम को भाव वाचक संज्ञा कहते हैं -

निधि, व्यापार, मृत्यु,[4] शील, रूप, वर्षा,[5] मर्यादा, निष्काम,[6] ।

सर्वनाम -

जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम् के बदले में बोले या प्रयोग किए जाते हैं उन्हें सर्वनाम कहते हैं ।

जैसे - मैं, हम, तुम, तू, वह, वे इत्यादि ।

सर्वनाम् के छः भेद होते हैं। विश्रामसागर में प्रायः उनके छहों भेदों का प्रयोग हुआ है जो निम्नलिखित है -

(1) पुरुष वाचक सर्वनाम -

जिन सर्वनामों के प्रयोग से पुरुष का ज्ञान हो उन्हें पुरुष वाचक सर्वनाम कहते हैं जैसे - मैं, हम, आप, वे आदि ।

विश्रामसागर में प्रयुक्त हुए कतिपय पुरुष वाचक सर्वनामों के प्रयोग द्रष्टव्य है-

तुम, मोर, तासु,[7] तोरे, तुम्हरा, तुम्हारी, तुम्हरे, हमरे,[8] हमारी, मैं,[9] तासु, हमारे,[10]

- -

1- विश्रामसागर, पृ0 999 | 2- विश्रामसागर, पृ0 693
3- विश्रामसागर, पृ0 836 | 4- विश्रामसागर, पृ0 375
5- विश्रामसागर, पृ0 375 | 6- विश्रामसागर, पृ0 505
7- विश्रामसागर, पृ0 327 | 8- विश्रामसागर, पृ0 454
9- विश्रामसागर, पृ0 458 | 10- विश्रामसागर, पृ0 518

तुम,[1] मैं, उनके मोरिहैं, उनकी,[2] ।

|2| निश्चयवाचक -

निश्चयवाचक सर्वनाम वे हैं जिनके प्रयोग से किसी एक निश्चित वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है जैसे - यह शेर है । यह विद्यालय है । यहाँ पर विश्रामसागर में निहित कतिपय निश्चय वाचक सर्वनाम हैं यथा - हमहुँ,[3] तुम्हरे, हमरे,[4] मोरिहैं,[5] पैयतो,[6] ।

|3| अनिश्चय वाचक सर्वनाम -

वे सर्वनाम हैं जिनके प्रयोग से किसी निश्चित वस्तु का बोध नहीं होता है जैसे - वहाँ कोई रहता है । भोजन में कुछ गन्दगी है ।

विश्रामसागर में प्रयुक्त कुछ अनिश्चयवाचक सर्वनाम के उदाहरण - काहू,[7] काहूँ,[8]

|4| सम्बन्ध वाचक सर्वनाम -

वे सर्वनाम हैं जिनके प्रयोग से संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध प्रकट होता है जैसे - यह वही विद्यालय है, जहाँ मैं पढ़ता था । विश्रामसागर के उदाहरण यथा -

यहि सम कौन है तासु,[9]

कह प्रभु तुम अतिशय प्रिय मोरे[10] ।।

|5| प्रश्न वाचक सर्वनाम -

ऐसे सर्वनामों का प्रयोग प्रश्न पूछने के लिए किया जाता है जैसे - आप कौन सा रंग पसन्द करते हैं?

1- विश्रामसागर, पृ0 462
2- विश्रामसागर, पृ0 395
3- विश्रामसागर, पृ0 462
4- विश्रामसागर, पृ0 395
5- विश्रामसागर, पृ0 पृ 427
6- विश्रामसागर, पृ0 363
7- विश्रामसागर, पृ0 299
8- विश्रामसागर, पृ0 30
9- विश्रामसागर, पृ0 27
10- विश्रामसागर, पृ0 29

विश्रामसागर में प्रयुक्त प्रश्नवाचक सर्वनाम का,कौन ,[1] किन,[2] किस,[3] कैसे,[4] ।

(6) निज वाचक सर्वनाम -

वे सर्वनाम हैं जो अपने लिए प्रयोग किए जाते हैं । विश्रामसागर में प्रयुक्त निज वाचक सर्वनाम - मैं ,[5] मेरो मम,[6] म्वहिं,[7] ।

विशेषण -

संज्ञा यासर्वनाम की विशेषता बतलाने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं जैसे - यह काला घोड़ा है । यहाँ पर"काला" शब्द घोड़ा (संज्ञा) की विशेषता बता रहा है अतः काला विशेषण है ।

वैसे तो विशेषण के छः प्रकार होते हैं किन्तु विश्रामसागर में मुख्यतः चार प्रकार के विशेषण प्रयुक्त हुए हैं जिनके उदहरण दृष्टव्य है -

(1) गुणवाचक विशेषण -

संज्ञा या सर्वनाम के गुणों को प्रकट करने वाला शब्द गुण वाचक विशेषण कहलाता है जैसे = मीठा फल, काली गाय, ईमानदार मनुष्य ।

विश्रामसागर में गुण वाचक विशेषण के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है-

वैश्य एक निकस्यो मधु भौर[8] ।
आस्तिक बुद्धि विनीत व्रत । दानोदम आरम्भ ।
ये लक्षण वर वैश्य के । विप्र भक्त निरदम्भ[9] ।
भली,[10] घोर,[11] हरियाना[12] ।

1- विश्रामसागर, पृ0 362
2- विश्रामसागर, पृ0 454
3- विश्रामसागर, पृ0 183
4- विश्रामसागर,पृ0 224
5- विश्रामसागर, पृ0 498
6- विश्रामसागर,पृ0 347
7- विश्रामसागर, पृ0 899
8- विश्रामसागर,पृ0321
9- विश्रामसागर, पृ0 340
10- विश्रामसागर,पृ0 190 शुभ नियोग शुभ भली ।
11- लौ हरिजन हैं घोरा पृ0 190
12- वन्दु अम्बारा रहे हरियाना ।

§2§ संख्या वाचक विशेषण -

संख्या प्रकट करने वाले विशेषण शब्द संख्या वाचक विशेषण कहलाते हैं जैसे - तीन देव, पाँचवी श्रेणी ।

विश्रामसागर के कतिपय उद्धरण -
सहस छियासी योजन,[1] सौ योजन की वाकल तोई,[2] योजन लक्ष केर विस्तारा,[3] द्वै लक्ष योजन,[4] चारि लक्ष योजन,[5] द्वै नारि[6], पाँच हजार,[7] तेरसि,[8] ।

§3§ परिमाण वाचक विशेषण -

जिस शब्द से संज्ञा या सर्वनाम की नाप, तौल या मात्रा मानी जाय उसे परिमाण वाचक सर्वनाम कहा जाता है जैसे - थोड़ा दूध, अधिक चाय ।

विश्रामसागर में निहित परिमाण वाचक विशेषण यथा -
अल्प,[9] बहु,[10] बहु काल,[11] राई,[12] नैंकी[13] ।

§4§ संकेत वाचक विशेषण -

संज्ञा की ओर संकेत देने वाले शब्द संकेत वाचक विशेषण होते हैं जैसे - वह नगर, यह है फल ।

विश्रामसागर के कतिपय उद्धरण यथा -
वाकरि,[14] यहु,[15] वहि,[16] ।

- -

1- विश्रामसागर, पृ0 93 2- विश्रामसागर, पृ0 95
3- विश्रामसागर, पृ0 264 4- विश्रामसागर, पृ0 265
5- विश्रामसागर, पृ0 266 6- विश्रामसागर, पृ0 271
7- विश्रामसागर, पृ0 351 8- विश्रामसागर, पृ0 मास शुक्ल कृष्ण तेरसि-आदि ।
9- विश्रामसागर, पृ0 293 10- विश्रामसागर, पृ0 336
11- विश्रामसागर, पृ0 231 12- विश्रामसागर, पृ0 174
13- विश्रामसागर, पृ0 367 14- वाकी प्रीति तुम्हीं से लागी ।
15- विश्रामसागर, पृ0 127 16- विश्रामसागर, पृ0 179

अव्यय -

अव्यय चार प्रकार के होते हैं विश्रामसागर में मुख्यतः तीन प्रकार के अव्ययों का प्रयोग हुआ । जिनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है -

(1) क्रिया विशेषण अव्यय -

जिनके द्वारा किसी क्रिया, विशेषण या क्रिया विशेषण की भी विशेषता बतलायी जावे उसे क्रिया विशेषण अव्यय कहते हैं । विश्रामसागर के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं - बेगु, प्रतिसंतत,[1] तनक,[2] तब,[3] तनको,[4] अब जो,[5] जब,[6] एक बारु,[7] बेहु,[8] पुरते,[9] तहँ,[10] बहुत,[11] कहाँ - कहाँ, केहि, बहु,[12] नेक,[13] बेगि,[14] सदा,[15] ।

(2) सम्बन्ध बोधक अव्यय -

ऐसे अव्यय जो संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध वाक्य के अन्य शब्दों के साथ स्थापित करते हैं - वे सम्बन्ध बोधक अव्यय कहलाते हैं ।

विश्रामसागर के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं - निकट,[16] नेरे,[17] ।

(3) समुच्चय बोधक अव्यय -

दो शब्द वाक्यों और वाक्यांशों को जोड़ने वाले अव्यय, समुच्चय बोधक कहलाते हैं विश्रामसागर में प्रयुक्त समुच्चय बोधक अव्यय यथा- तदापि,[18] पुनि,[19] बहु,[20] चाहें[21] ।

- -

1- विश्रामसागर, पृ0 151
2- वही,पृ0 153
3- वही,पृ0 166
4- वही,पृ0 170
5- वही, पृ0 543
6- वही, पृ0 179
7- वही, पृ0 543
8- वही, पृ0 128
9- वही, पृ0 71
10- वही, पृ0 183
11- वही, पृ0 153,
12- वही, पृ0 237
13- वही, पृ0 259
14- वही, पृ0 397
15- वही, पृ0 345
16- वही, पृ0 397
17- वही, पृ0 248
18- वही, पृ0 126
19- वही, पृ0 157
20- वही, पृ0 184
21- वही, पृ0 375 .

वृथा करै कस बाद भुआरा । क्षुधित जात है प्राण हमारा ।[1]
सुन्दर मलीदा एक मिठायो । करि सनमान गुनिहि बैठायो ।
चरण पुखारि बारि मुख नाई । भोजन कहँ पुन: पुनि राई ।[2]

उपर्युक्त संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि के विवेचन के पश्चात् हम निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि विश्रामसागर के कवि बाबा रघुनाथ दास राम सनेही जी कवि होने के साथ-साथ व्याकरण शास्त्र के भी ज्ञाता थे । उन्होंने व्याकरण के प्राय: सभी अंग संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया विशेषण आदि का समुचित प्रयोग अपने ग्रन्थ विश्रामसागर में किया है ।

(5) भाषागत् अन्य विशेषताएँ -

भाषा में शब्द शक्तियों का विशिष्ट महत्व होता है। काव्य शास्त्र में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ये तीन शब्द शक्तियाँ मानी जाती है । 'अभिधा' में - साक्षात् सांकेतिक अर्थ की ही अभिव्यक्ति होती है, किन्तु लक्षणा में मुख्यार्थ के बाध होने पर मुख्यार्थ के योग में रुढ़ि अथवा प्रयोजनवशात् जो अर्थ निकलता है, उसे लक्ष्यार्थ कहते हैं और इसकी बोधिका शक्ति लक्षणा कहलाती है। जहाँ पर वक्ता के तात्पर्य को व्यक्त करने के लिए अभिधा और लक्षणा दोनों शक्तियाँ अपर्याप्त होती है, वहाँ व्यंजना शक्ति कार्य करती है। इसके द्वारा निकले हुए अर्थ को व्यंग्यार्थ कहते हैं। इस प्रकार वाचक, लक्षक और व्यंजक, ये तीन प्रकार के शब्द होते हैं और क्रमश: इनकी अभिव्यक्ति करने वाली शक्तियाँ भी अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहलाती हैं ।

'विश्रामसागर' में कवि के द्वारा प्रयुक्त भाषा की परीक्षा करने के लिए यह विचार आवश्यक है कि उसने अभिधा शक्ति का चमत्कार किस ढंग से प्रस्तुत किया है । लक्षणा के प्रयोग किस सीमा तक सफल हैं और व्यंजना-वृत्ति में उसकी मनोवृत्ति कहाँ तक रमी है। यहाँ पर ग्रन्थ के उद्धरणों द्वारा उक्त शब्द शक्तियों के प्रयोगों की सामर्थ्य का मूल्यांकन किया जायगा -

- -

1- विश्रामसागर, पृ0 167 2- विश्रामसागर, पृ0 194

अभिधा के प्रयोग-

कवि ने अधिकांश ग्रन्थ में 'अभिधा' शक्ति का ही प्रयोग किया है क्यों कि संत पुरुषों को लक्षणा के चारित्र्य प्रदर्शन और व्यंजना के चमत्कारों से अधिक लगाव नहीं होता, फिर भी अभिधा के सुन्दर प्रयोगों द्वारा कवि ने कम चमत्कार उत्पन्न नहीं किया । यथा -

सत्य माहिं सब लोक हैं, सत्य माहिं सब धर्म ।
ज्ञान मुक्ति है सत्य में, सत्य माहिं शुभ कर्म ।।[1]

यहाँ पर "सत्य" में ही धर्म, ज्ञान, मुक्ति, सत्कर्म और सर्वलोक की प्रतिष्ठा की गई है। एक ही शब्द का बार बार प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करता है, जो पुनरुक्ति प्रकाश सा है "सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् " इस धार्मिक वचन से अनुप्राणित यह उक्ति उचित भी है ।

कामदार कामी पुरुष, कन्या मांगन जोय ।
ये परपीर न पेखई, होनी होय सो होय ।।[2]

यहाँ पर "क्रियादीपक" अलंकार के आने से चमत्कार प्रधान "अभिधा" प्रस्तुत है "वृत्यनुप्रास" की छटा आकर्षक लगती है और सूक्ति जन्य आनन्द तो वैसे ही चमत्कार विधायक है ।

घन बरसी चातिक पियत, लखान्तर रवि पद्म ।
विकसत कुमुद शशि मुख लखत, अविचल स्नेह निबद्ध ।।[3]

यहाँ पर स्नेह की महिमा दिखाने के लिए कवि ने मयूर और मेघ का, सूर्य एवं कमल का, कुमुदिनी एवं चन्द्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अभिधा से ही चमत्कार उत्पन्न किया है और इस बात का सामान्य उल्लेख किया है कि जो जिसका स्नेही होता है, वह दूर से भी पास लगता है - तत् तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ।।[4]

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-20 पृ0 185
2- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 7 पृ0 590
3- वही, वही अध्याय- 9 पृ0 626
4- उत्तर रामचरित "भवभूति"

देव दुंदुभी देव सुमन बरसावहीं ।

मृगमद कुंकुम नीर अबीर उड़ावहीं ।

बंदनवार पताका केतु तब बाँधहु ।

गोपुर कलश सुरंग अधिक छवि छाँयहु ।।[1]

यहाँ पर मांगलिक उत्सव [illegible] मानने में कवि ने जो प्रसाद गुण सम्पन्न शब्दावली का प्रयोग किया है, वह स्वतः सुहावनी लगती है और अर्थ माधुरी की सृष्टि भी करती है । दुंदुभी, कुंकुम , बंदनवार, सुरंग जैसे नाद प्रधान शब्द मधुर ध्वनि करते हैं ।

दमयन्ती रति विधुमती, आतस्य छुति गात ।

लाजत मदन मयंक लखि सीताजू की मात ।।[2]

यहाँ पर (व्यतिरेक) अलंकार द्वारा कवि ने सीताजी की माता सुनयना की गरिमा बतलाई है । शोभा विधायक शब्दावली का चयन अर्थ सौन्दर्य में वृद्धि करता है । इसी प्रकार निम्नलिखित स्तुति में भी "अभिधा" का चमत्कार सुन्दर है :-

जय जगदीश दयाल जयति सुर विप्र प्रतिपालक ।

जय मुनिमानस हंस जयति समधर कुलपालक ।।

जय शोभा सुख सिंधु जयति करुणा गुण आगर ।

जय बल विपुल विशाल जयति रघुवंश उजागर ।।

जय जग पावन जीव की तव पद प्रीति न होवहै ।

तावत संसृति शोक ते छूटि न सुख में सोवहै ।।[3]

यहाँ पर परशुराम राम के अलौकिक व्यक्तित्व को व्यक्त करते हुए उनकी दयालुता, वीरता, रक्षकता, सौन्दर्य वरिसकता और लोकोद्धारकता के गुणों की प्रशंसा करते

- -

1- रामायण खण्ड, अध्याय- 3 पृ० 703, विश्रामसागर

2- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 7 , पृ० 760

3- वही, वही, अध्याय- 8 पृ० 793

यहाँ पर "मुकता" शब्द में गौणी लक्षणा है, जिसका लक्ष्यार्थ अभिलाषित-दुर्लभ भक्ति से है । इसी प्रकार कदलीआदि दृष्टान्तों द्वारा लक्षणा के बल पर ही निष्कर्ष निकाला गया है ।

हे दाड़िम हे कुन्द चमेली । कहुँ देखे गिरिधर अलबेली[1] ।
हे गुलाब केला कचनारा । हे बदरी हे हरसिंगारा ।।

यहाँ पर वृक्षों से बात असम्भव है, पर लक्षणा द्वारा कवि ने उनमें मानवी-चेतना का आरोप किया है । इसके अतिरिक्त पुष्पों के रंग और गुण सीता के सादृश्य के द्योतक हैं, जो गौणी लक्षणा के चमत्कार से ही प्रभावित है ।

इस प्रकार कवि ने "लक्षणा" के प्रयोग कम ही किये हैं, किन्तु जिन स्थलों में लक्षणा की गई है, वहाँ आर्थिक चमत्कार पूर्ण मात्रा में दिखाई पड़ता है।

व्यंजना शब्द शक्तियों में बड़ी महत्वपूर्ण होती है । 'शाब्दी- व्यंजना' और "आर्थी व्यंजना" इसके दो मुख्य भेद होते हैं, जिनका विवरण काव्य शास्त्रों में मिलता है । रसिकों को व्यंजना जन्य अर्थ का ज्ञान होता है , सब को नहीं "विश्रामसागर" में लक्षणा की तुलना में व्यंजना के स्थल अधिक है और उनका चमत्कार भी कम मनोहर नहीं है ।

व्यञ्जना के प्रयोग -

जब गोपियों के बीच से कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं तबगोपियाँ उन्मत्त सी होकर जड़ चेतन की समझ भुलाती हुई पूछती फिरती हैं :-

हे कृष्णा उष्णा निशा, पथ्या मुकुट[2] कन्द ।
हे केवड़ा लवंग अब, तुम देखे नंदनन्द ।।

यहाँ पर नन्दन कृष्ण के उपमानों का संकेत किया है, जो व्यंजक हैं । रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना का यह रूप प्रशस्त है । इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड अध्याय- 6 पृ० 379
2- वही वही, अध्याय-6 पृ० 379

में भी व्यंजना का गम्भीर रूप द्रष्टव्य है ।

पावन पर्वत सरित वेद अरु शास्त्र हैं ।
विविध भाँति की धातु रहत तिनमाहिं हैं ।
जो जेहि रुचै सो लेइ औ चित मानिहु ।
पनि हाँ सज्जन लीन्हीं भक्ति मणि को जानिहु ।।[1]

यहाँ पर वेद शास्त्रों को पवित्र पर्वत बताकर कवि ने उनमें निरूपित ज्ञान, भक्ति , वैराग्य आदि में व्यंजना से विभिन्न सोना, चाँदी आदि धातुएँ निरूपित किया है । भक्ति को मणि बताकर कवि ने उसकी "अमूल्यता" का संकेत किया है । जैसे मणि में कोई विकार नहीं होता वैसे ही भक्ति भी विकार रहित और अतुलनीय सिद्ध की गई है ।

भट्ठी मोह कृशानु रवि, धमनि श्वास मद दारु ।
निशि दिन मन दधी वरच, भ्रम कूट काल लोहारु ।।[2]

यहाँ पर सांगरूपक द्वारा कवि ने काल की अपार शक्ति का संकेत किया है, जिसमें मोहमदादि विकारों को भी स्वाराज्य माना गया है । मोह की भट्ठी व्यक्ति को जलाती है , इसकी तीव्र व्यंजना "निर्वेद" की जनक है ।

बोले लछमन से लखहु, अरुण उदय भे तात ।
काहुक तो अति सुख है, काहुक दुख लखात ।।[3]

यहाँ पर धनुर्भंग के पूर्व लक्ष्मण का यह कथन - "किसी को सुख और किसी को दुख व्यंजनाप्रधान है, जो यह संकेत करता है कि राम रूपी रवि का उदय संतों को सुख और खलों को दुख होगा । इस प्रकार यह वस्तु व्यंजना का उदाहरण हुआ।-

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 47, पृ0 496
2- वही, वही, अध्याय- 36, पृ0 362
3- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 7, पृ0 772

यहाँ पर राम के अद्वितीय वैभव की व्यंजना की गई है । ऐसा असाधारण प्रताप किसी साधारण राजा का नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त राम की वाणी की मधुरता, शरीर की तेजस्विता, मुख का आह्लादकत्व एवं उनके महनीय व्यक्तित्व की व्यंजना करती है । शक्ति, शील और सौन्दर्य का समन्वित रूप ही राम है, यह भाव व्यंजना का चरम अर्थ है ।

व्यंजना के उपर्युक्त उदाहरण द्वारा यह ज्ञात होता है कि उनमें अधिक चमत्कार तो नहीं है, किन्तु सामान्य अर्थ से विशिष्टता तो है ही। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने अभिधा का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है और लक्षणा या व्यञ्जना का प्रयोग उद्देश्य विशेष से ही किया है । अर्थात् जहाँ पर लक्षणा और व्यञ्जना की अनिवार्यता हो गयी है, उन्हीं स्थलों में इनका प्रयोग किया गया है अधिक नहीं ।

भाषा गत अन्य विशेषताएँ -

उत्तम काव्य की भाषा के लिए साधारणतः निम्नलिखित विशेषताएँ होती है यथा -

1- भावानुकूलता 2- शुद्धता 3- प्रौढ़ता 4- ध्वन्यात्मकता 5- लाक्षणिकता 6- व्यंग्यात्मकता, 7- स्पष्टता, 8- प्रवाहात्मकता, 9- संक्षिप्तता, 10- अलंकारिता, 11- चित्रमयता ।

विश्रामसागर की भाषा में उपर्युक्त सभी विशेषताओं के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि की भाषा- वर्णित-विषय के अनुकूल रही है । उसमें नाम मात्र के लिए ही कतिपय दोषों का अस्तित्व पाया जाता है । उपर्युक्त विशेषताओं को निम्नलिखित पाँच उदाहरणों में दिखाने की चेष्टा की जा रही है यथा -

जयति परपंच परमंच वैताल डाकिनी शाकिनी घोर भारी ।
भूत यमदूत वैताल पायक प्रेत घोर विष विषम अहि बंध भारी ।।
जयति सुर सिद्ध मुनि वृन्द वन्दित चरण शरण भयहरण पुत कुमारी ।।

अंजनी आनि दीन्हाइ श्रीराम की हरहु दुख सपदि रघुनाथ नाथ ।।[1]

यहाँ पर हनुमान जैसे वीर के प्रचंड व्यक्तित्व के अनुरूप ही ओज प्रधान शैली अपनाई गई है, जिसमें उनके शौर्य की व्यंजना है । भाषा की स्पष्टता, आलंकारिकता और भावानुकूलता के साथ ही स्पष्टता, शुद्धता और प्रौढ़ता के भी गुण विद्यमान हैं ।

किधौं विराट के उरारि रावरोम पांति जू ।
निमित्त तासु वेद ज्यों चली सुगंध आनि जू ।।
कबंति श्रेष्ठ राम की मनोज वासु लेखई ।
विराग भूप बोध की विनोद बंधु लेखई[2] ।।

इसमें संदेहालंकार का सौन्दर्य, भाव की छटा, आयुर्वेद का ज्ञान, संक्षिप्तता, प्रौढ़ता और कवित्व मत्ता के गुण वर्तमान है। संस्कृत निष्ठ पदावली की परिमार्जित है ।

अस कहि ललकारत गदा प्रहारत जनत पछारत कपिन गिरत ।
दुख अकबनि पावत शोणित बावत उठि कहि हाहा बहुरि गिरत ।
मारे यह सबे अस्त्र अनेकै हरि का छेकै अमित नगा ।
पवनज तब धायो मारि गिरायो प्रभु दिग आयो राम सखा[3] ।।

इसमें भाषा का प्रवाह वीर रस के अनुकूल है । गुण का ओज शब्दों में ही विद्यमान है । भाषा की स्पष्टता और शुद्धता, छन्द के गौरव में वृद्धिकारिका है ।

त्रिभुन शशि नवाय के, सिंहासन श्रीराम ।
बैठे श्री सीता सहित, मानो रतियुत काम ।।
मानो रतियुत काम, किधौं श्रीयुत भगवाना ।
किधौं तड़ितयुत मेघ, किधौं विद्यायुत ज्ञाना ।।
किधौं सिद्धियुत वृन्दरथि, क्षमा स साधुन चित्त ।
छवि पुंजान्वित सोहिहीं नखि, वेद उच्चारै मित्त[4] ।।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय-22, पृ0 981
2- वही, वही, अध्याय-22, पृ0 978
3- वही, वही, अध्याय-28, पृ0 1057
4- वही, वही, अध्याय- 30, पृ0 1074

यहाँ भाषा अलंकृत है । उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, संदेह आदि से सुसज्जित स्पष्ट, प्रौढ़भाषा सिंहासनारूढ़ राम के व्यक्तित्व के अनुकूल है । युगल छवि का चित्रण ऐसी ही भाषा में होना चाहिए ।

बिम्बा दाड़िम दसन मधि रसन सुरंग ।
कमल कोश में सुलिस जनु बसे दामिनि संग ।।
मन्द हास बोलत मधुर आगे सुख पान ।
धर सुधा दृष्टि की वृष्टि सौं करे सबी स्नान ।।[1]

यहाँ पर भी भाषा का आलंकारिक एवं ध्वन्यात्मकरूप प्रकृत है । उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति उपमा आदि से भाषा का श्रृंगार किया है । स्पष्टता, भावानुकूलता, प्रवाहात्मकता और कवित्वमयता के कारण प्रतीत होता है कि कवि का अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार था, वह स्वेच्छा से जैसी शब्दावली चाहता था, स्वतः लेखनी से वैसी ही शब्दावली अनायास ही प्रयुक्त हो जाती थी ।

<u>दोष दर्शन</u> -

जिस कारण से कविता के मुख्य अर्थ को समझने में बाधा पहुँचती है अथवा उसकी सुन्दरता में कुछ कमी आ जाती है, उसे दोष कहा जाता है । काव्य निर्माण में कवि को अपनी ज्ञान, परम्परा अथवा भाषा सम्बन्धी असावधानी दोषों की जननी होती है कवि अपनी अनुभूति को यथावत् रूप में पाठकों को भी अनुभव कराना चाहता है । इसके लिए वह भाषा का माध्यम अपनाता है । ऐसा करते समय उसके शब्दों और वाक्यों में कोई कमी रह जाती है अथवा संगति नहीं बैठ पाती तो पाठकों या श्रोताओं को उस अनुभूति का उसी रूप में अनुभव करने में बाधा पहुँचती है । यह बाधा ही वास्तव में दोष है । आचार्यों ने काव्य का निर्दोष होना बहुत ही आवश्यक माना है । क्यों कि दोष उसके रूप को कलुषित कर देता है । आचार्य 'दण्डी' तो तिल के बराबर काव्य - दोषों को भी असह्य मानते हैं, क्यों कि जिस प्रकार कोढ़

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 30 पृ0 1080

का एक धब्बा भी शरीर के समस्त सौन्दर्य को विकृत कर देता है, उसी प्रकार एक भी काव्य-दोष काव्य के समस्त साहित्यिक सौन्दर्य को चौपट कर देने के लिए पर्याप्त है।

काव्य - दोषों के सम्बन्ध में अग्निपुराण में कहा गया है - "उद्वेगजनको दोषः" अर्थात् काव्यास्वाद में जो उद्वेग उत्पन्न करता है, वह दोष है। दर्पणकार का कहना है कि "दोषास्तस्यापकर्षकाः" अर्थात् शब्दार्थ द्वारा जो रस के अपकर्ष - हीन कारक हों, वे ही दोष हैं।

वामन गुणों के विरोध में आने वालों को दोष कहते हैं - "गुणविपर्ययात्मानो दोषः" काव्य - प्रदीपकार का कहना है कि - अविलम्ब मुख्यार्थ की प्रतीति में - चमत्कार के तत्काल ज्ञान होने में बाधा पहुँचाने वाले दोष हैं, जो त्याज्य माने जाते हैं।

दोषों से सर्वथा बचना कवि के लिए सदैव सम्भव नहीं होता। कभी - कभी एक साधारण सा दोष भी गुण में परिवर्तित हो जाता है, तो भी कवि को यथा सम्भव दोषों से बचने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। लांजायनस ने भी काव्य - दोषों को हेय कहकर उनसे बचने की सलाह दी है। सेन्ट्सबरी ने लांजायनस के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि -

" Faults are not the less faults because they arise from the heedlessness of genius - He (Longinus) warns us against bombast puerility or affectation and the conceits of frigidity".

आर्नोल्ड का कहना है कि अपनी अपेक्षा अपनी कला का समादर अधिक आवश्यक है-

"Let us at least have so much respect for our art to prefer it to ourselves".

तरह अस्पष्ट है । ऐसे प्रयोगों से काव्य का स्तर गिरता है ।

दधिसुत भगिनी पति तनय, ता सुत जननी अन्त ।[1]
सैन सुता पति आदि मधु, बद राघव सुत संन्त ।।

यहाँ पर "कूटोक्ति" का प्रयोग "क्लिष्टत्व" दोष की श्रेणी में आता है । 'दधिसुत' तो चन्द्र है, उसकी भगिनी लक्ष्मी है , उसके पति कृष्ण के तनय प्रद्युम्न है, पुनः उनके पुत्र की जननी कौन है ?

करि विचार रविनाथ, क्या मुदित तेहि मन मुखत ।
मरौं न राक्षस हाथ, जाते पायो परमगति ।।[2]

यहाँ पर "सीत रविनाथ" शब्द राक्षस मारीच के लिए प्रयुक्त है । क्योंकि सूर्य किरण होता है, जिसे सूर्यकरम या मेर कहते हैं । कितनी क्लिष्ट कल्पना है । ऐसा प्रयोग 'निहितार्थत्व' दोष है ।

व्याकरणात्मक दोष [अ] च्युत संस्कृति दोष -

काव्य में व्याकरण-विरुद्ध-प्रयोग, इस दोष के अन्तर्गत आते हैं । कभी - कभी असावधानी के कारण या तुक मिलाने के लिए बड़े - बड़े कवि भी व्याकरण के नियमों की अवहेलना कर बैठते हैं। यह दोष पाँच प्रकार का माना गया है ।

नाना वृन्दावन के मग, करौं वन्दना बखानि ।।[3]

यहाँ पर "वन्दना" के बाद [अ] अक्षर अधिक है, जो दोहे के छन्द को बिगाड़ता है । एक मात्रा का यह आधिक्य "च्युत संस्कृतिदोष" के अन्दर आता है ।

परम पाप तारक कृष्णसंगी । कृष्णदासादि पाप हरै संगी ।[4]

यहाँ पर "कृष्णसंगी" और कृष्ण में रकार के रहते मात्राधिक्य हो जाता है, जो दोष है।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 11, पृ0 827
2- वही, वही, " -10, पृ0 927
3- वही, इतिहासायन खण्ड " - 1 पृ0 1
4- वही, वही " - 3 पृ0 26

पीछे ते सिलारी बच्चा आवों मैं लगायो है ॥[1]

यहाँ पर "सिलारी" ग्राम्यभाषा का शब्द है, जो साहित्य में आकर दोष का कारण बन गया है, जो 'ग्राम्यत्व' दोष कहलाता है।

इस प्रकार "विश्रामसागर" के कवि ने अधिकांश "च्युत संस्कृति " दोष की अवहेलना की है। छंद की लयात्मकता का ध्यान रखते हुए शब्दों को ह्रस्व - दीर्घ पढ़ लेने के पाठकीय अधिकार को भी ध्यान में रखते हुए उसने कुछ त्रुटियाँ कर दी हैं। किन्तु विचार करने से उक्त दोषों की संख्या बहुत कम है। "कालिदास" जैसे महाकवि भी एकदम निर्दोष काव्य-रचना नहीं कर सके, अतः सन्तपुरुषों के काव्य में उनका मूल भाव या विचार ही दृष्टव्य होते हैं, भाषादि पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। वस्तुतः ऐसे कवियों का मूललक्ष्य भगवच्चरित का गुणा-नुवाद करते हुए लोक-कल्याण का प्रचार-प्रसार करना होता है, काव्य रचना-करना नहीं। उक्त ग्रंथ में यह तथ्य पूर्ण सत्य है।
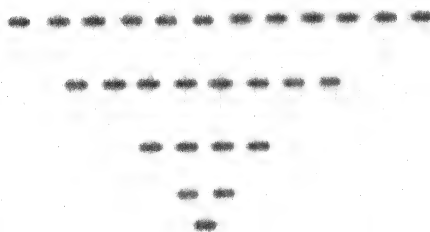
\- - - - - - - - - - - -

\- - - - - - - - -

\- - - -

\- -

\-

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 25, पृ० 231

अध्याय - 7

शिशुपालवध में छन्दोवैविध्य का अध्ययन

साहित्य का आविर्भाव वैदिक काल से हुआ है और उस समय का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' इस बात का साक्षात् प्रमाण है । जब से मनुष्य ने चिन्तन और मनन प्रारम्भ किया तथा साहित्य का अस्तित्व हुआ, तब से अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही रही है, क्योंकि हम अपने विचारों और भावों को भाषा के माध्यम से ही साहित्य में प्रकट करते हैं । यद्यपि बोलचाल में गद्य का ही प्रयोग होता है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग होता है । "गद्य" शब्द की व्युत्पत्ति है- गदितुं योग्यम् गद्यम् अर्थात् भाषा का जो स्वरूप बोलने के काम में आता है उसे गद्य कहते हैं । इसी प्रकार "पद्य" शब्द की भी व्युत्पत्ति है संस्कृत की पद-गतौ धातु से यत् प्रत्यय करने पर "पद्य" शब्द बनता है । जिसका अर्थ होता है- गतिशील होने योग्य । गतिशीलता 'प्रवाह' का ही पर्याय है । यह सर्वविदित है कि गद्य की अपेक्षा पद्य में प्रवाह अधिक होता है। यह प्रवाह तभी आता है, जब लय का सहयोग होता है। इस प्रकार लयात्मक-प्रवाह द्वारा जब भाषा में हम अपने विचार व्यक्त करते हैं तब वह पद्य बन जाता है। इस प्रकार गद्य और पद्य में गति और लयात्मकता का अन्तर स्पष्ट है । यह लयात्मकता एवं गति छंदों के माध्यम से आती है, अतः कविता के लिए छंद अनिवार्य सा हो गया। भले ही उसका कुछ भी रूप हो, किन्तु पद्य का माध्यम छंद ही होता है । प्रश्न उपस्थित होता है कि छंद किसे कहते हैं ?[1] यास्क ने निरुक्त में छंद शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार लिखी है - "छादनात् छंदः" अर्थात् जो वर्ण्य-विषय वस्तु को आच्छादित करता है उसे छंद कहते हैं । फलतः अर्थ यह हुआ कि छंद वह माध्यम है जो कवि के भावों और विचारों को भाषा द्वारा आच्छादित करके उसमें गतिशीलता और लयात्मकता को व्यक्त करता है । यहाँ पर यह भी जान लेना आवश्यक है कि सामान्यतः छंद का क्या इतिहास है । सर्व प्रथम वैदिक काल में विशेषतः ऋग्वेद में गायत्री, त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्ति, जगती, उष्णिक् आदि छंदों का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल में इस [illegible]

- -

1- निरुक्त- 2 चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी

में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी है और लौकिक संस्कृत के आविर्भाव काल में आदि कवि वाल्मीकि रामायण के निर्माण कालतक विविध संस्कृत छंदों का आविर्भाव हो गया था । ईसा से 600 वर्ष पूर्व आचार्य पाणिनि के समकालीन वेदु आचार्य पिंगल ने 'छंद' शास्त्र का प्रणयन किया, जिन्होंने "य-मा-ता-रा-ज-भा-न-स-ल-गम्" इस पिंगल सूत्र का निर्माण किया और गणात्मक छंदों के लक्षण सूत्रात्मक पद्धतियों में बनाए । इससे ज्ञात होता है कि छंदों का इतिहास बहुत प्राचीन है। संस्कृत के वृत्त-रत्नाकर और 'छंदोमंजरी' में अक्षरी-छंद से लेकर सागरी और 'शार्दूल-विक्रीडित' जैसे अनेक क्लिष्ट एवं विस्तृत छंदों का उल्लेख किया गया है । वाल्मीकि-रामायण का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उस समय तक छंदों का पर्याप्त अध्ययन किया जाने लगा था । लौकिक अनुष्टुप् छंद के कर्ता वाल्मीकि ऋषि ही माने जाते हैं । तब से संस्कृत वर्णिक वृत्तों का पर्याप्त विकास हुआ । व्यास, कालिदास भर्तृहरि विशाखदत्त, भारवि, माघ, हर्ष, आदि कवियों की परिष्कृत लेखनी से परिमार्जित छंदों का भी प्रचलन होने लगा। प्राकृत पैंगलम् इस बात का प्रमाण है । जब शौरसेनी-अपभ्रंश की गोद से हिन्दी भाषा का जन्म हुआ और हिन्दी-साहित्य का सृजन होने लगा तब 'पृथ्वीराज-रासो' की रचना हुई। इसमें 40 से भी अधिक छंदों के प्रयोग मिलते हैं । जिनमें छप्पय, नाराच, पद्धरि, दोहा, भुजंगी, अरिल्ल, तोटक, तोमर, कुण्डलिया, रोला आदि छंदों का प्राधान्य मिलता है । हिन्दी-साहित्य के इस आदि काल में इन छंदों का बाहुल्य रहा है भक्ति काल में पद शैली के छंदों का प्रभाव अधिक रहा है और कवित्त तथा सवैया, दोहा भी प्रकाश में आये । जायसी के "पदमावत्" में दोहा, चौपाई, सोरठा का ही अधिक प्रयोग हुआ है, किन्तु "रामचरितमानस" में प्रायः 13 प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है । भक्तिकाल और रीतिकाल की संधि में केशव ने अपनी 'रामचन्द्रिका' में पृथ्वीराज रासो से भी अधिक छंदों का प्रयोग किया है, जैसा कि उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लिखा है-

"रामचन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहु छन्द ।"[1]

1- रामचन्द्रिका- केशवदास (पृ. -१)

इस उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि छंदों पर कवि की अधिक दृष्टि रही है, क्यों कि केशव चमत्कार वादी कवि थे। अपनी बहुज्ञता एवं पैण्डित्य प्रकट-करने के लिए उन्होंने हिन्दी-साहित्य के सभी कवियों की अपेक्षा अधिक छंदों का प्रयोग किया है।इसलिए[1] हिन्दी के आलोचक "रामचन्द्रिका"को छंदों का अजायबघर कहते हैं।" रीतिकाल में छंदों के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थ लिखे गए (उदाहरणार्थ) आचार्य केशव का छंदमाला, चिन्तामणि का पिंगल प्रकाश, मतिराम का छंदसार, सुखदेव मिश्र का वृत्तविचार, श्रीकृष्ण भट्ट का 'पिंगल या प्राकृत' भाषा, भिखारीदास का छंदोर्णव, नारायण दास का छंदसार, दशरथ का वृत्तविचार, नंद किशोर का 'पिंगल प्रकाश,' जान का 'मधुपिंगल,' रामसहाय कृत वृत्ततरंगिणी, हरदेवकृत 'छंद-पयोनिधि' और अयोध्या प्रसाद वाजपेयी कृत 'छंदानंद पिंगल' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार रीतिकाल में हिन्दी का छंद शास्त्र और उनमें प्रयुक्त होने वाले उदाहरणों का बाहुल्य हो गया था[2]। मेरा अध्येतव्य ग्रन्थ "विश्रामसागर" सम्वत् 1911 की रचना है,जो गणना करने पर 1854 ई० की रचना सिद्ध होती है।इस प्रकार यह ग्रन्थ भारतेन्दु युग से कुछ पूर्व ही निर्मित हो चुका था। सम्वत् 1900 से हिन्दी का आधुनिक काल माना जाता है। इतिहास कारों ने सम्वत् 1929 तक के समय को पारम्परिकोन्मुख युग माना है।इसका कारण यह है कि भारतेन्दु के उदय के पूर्व आधुनिकता का समावेश पूर्णतया नहीं हुआ था।परम्परायें काव्य के क्षेत्र में प्रचलित थीं।परिणाम स्वरूप विश्रामसागर में छंदों की दृष्टि से प्राचीन परम्परा का ही पालन किया गया है।

- -

1- हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ-पृष्ठ 87-डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी

2- सम्वत् मुनि वसु निगम शशि अधिक मधुमास।
शुक्ल पक्ष कवि नौमि दिन कीन्हों कथा प्रकाश।।

विश्रामसागर अध्याय-2 पृष्ठ- 12
द्वितीय संस्करण 1976

क- प्रयुक्त छंदों की संख्या एवं प्रकार -

विश्रामसागर में कुल 6544 छंद हैं जिनके निर्माण करने की सीमा स्वयं कवि ने की है। गणना करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने इसमें 65 प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है[1]। किन्तु कवि के सर्वाधिक क्रमांक अनुसार चौपाई, दोहा, सोरठा, गीतिका, छप्पय, कुण्डलिया, श्लोक, चतुष्पद, ईसकल, तोमर तोटक और रोला, ये सब छंद विशेष प्रिय रहे हैं। जैसा कि ग्रन्थ में प्रयुक्त इन छंदों की संख्याओं से सिद्ध होता है।

विश्राम सागर समस्त ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है-

1- इतिहासायन 2- कृष्णायन 3- रामायण

इसमें प्रथम खण्ड सबसे बड़ा है। इसके पश्चात् 'रामायण खण्ड' अपेक्षाकृत लघु है और 'कृष्णायन खण्ड' इन दोनों की अपेक्षा लघुकाय है। अतः इनमें इसी आधार पर छंदों की संख्या का भी क्रम है। इस बात को इसी आधार पर छंदों की संख्या का भी क्रम है। इस बात को विस्तृत रूप से समझाने के लिए इस प्रकार

- -

1- 1. चौपाई 2. दोहा 3. सोरठा 4. रोला
5. कुण्डलिया 6. ककुभा 7. गीतिका 8. भुजंगप्रयात
9. सवैया 10. कवित्त 11. नंदिपती 12. चामर
13. त्रिभंगी 14. तोटक 15. मल्लिका 16. अष्टपदी
17. तोमर 18. चरपट 19. हरि 20. दंडक
21. मदन मोहन दंडक 22. नाराच 23. मधुभार 24. सर्पिका
25. पद्धरि 26. श्लोक 27. बरवै 28. पंकज वाटिका
29. समानिका 30. सुन्दरी 31. दोधक 32. सुप्रिया
33. छप्पय 34. तारक 35. हरिगीतिका 36. कुण्डल
37. महाली 38. चिन्तामणि 39. मधु 40. विरति
41. गोपाली 42. कामा, 43. कमल, 44. विजय, 45. हरिलीला,
46. निशिपालिका, 47. मनोहर, 48. श्री, 49. अमृतगति, 50. अर्धभुजंगी
51. हुलेखा, 52. वर्णा, 53. शशिवदना, 54. दीपक, 55. पादाकुलक, 56. वीर,
57. चतुष्पद, 58. ईसकल, 59. अरिल्ल, 60. चौबोला, 61. मधु, 62. सुन्दर

विवरण जैसा है --

क्रं० छंद नाम	वनितावायन खंड	कृष्णायन खंड	रामायण खंड	योग
1- चौपाई	1970	1550	2977	6497
2- दोहा	650	127	560	1337
3- सोरठा	69	4	90	163
4- रोला	0	9	4	13
5- कुंडलिया	24	9	20	53
6- ककुभा	4	3	0	7
7- गीतिका	26	30	39	95
8- भुजंग प्रयात	8	1	1	10
9- सवैया	4	1	0	5
10-कवित्त	0	1	1	2
11-मदिरा	0	0	1	1
12-चामर	0	1	0	1
13-त्रिभंगी	0	1	11	12
14-तोटक	18	0	1	19
15-मल्लिका	2	0	1	3
16-अष्टपदी	0	0	13	13
17-तोमर	19	0	1	20
18-चरपट	0	0	7	7
19-हरि	0	0	1	1
20-दंडक	0	0	1	1
21-नाराच	0	0	2	2
22-सुकुमार	0	0	7	7
23-वर्णिका	0	0	7	7
24-श्लोक	18	0	48	22
25-बरवै	0	0	3	3

1 2	3	4	5	6
26-पंकज वाटिका	0	0	2	2
27-समानिका	0	0	1	1
28-सुन्दरी	0	0	2	2
29-दीपक	0	0	3	3
30-सुप्रिया	0	0	2	2
31-तारक	0	0	4	4
32-हरिगीतिका	0	0	1	1
33-कुररल	0	0	1	1
34-मराली	0	0	1	1
35-चिन्तामणि	0	0	1	1
36-हिरणि	0	0	1	1
37-गोपाली	0	0	1	1
38-कामा	0	0	1	1
39-कमल	0	1	1	2
40-विजय	0	0	1	1
41-हरिलीला	0	0	1	1
42-निशिपालिका	0	0	1	1
43-मनोहर	0	0	1	1
44-श्री	0	0	1	1
45-मधुगति	0	0	1	1
46-अर्द्धभुजंगी	0	0	2	2
47-नंदुला	0	0	2	2
48-कर्णा	0	0	2	2
49-शशिमुखी	0	0	4	4
50-दोधक	0	0	4	4
51-पादकटि	0	0	4	4
52-चौर	0	0	4	4

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने हिन्दी-साहित्य के आदिकाल में प्रयुक्त होने वाले तोमर, तोटक और छप्पय जैसे छंदों को अपनाया और भक्ति काल में विशेषत: संत साहित्य में प्रयुक्त होने वाले दोहा और सोरठा छंदों को अपनाया। सगुण भक्ति-काल में प्रयुक्त होने वाले चौपाई, दोहा, सोरठा , गीतिका, छप्पय , रोला आदि को भी स्थान दिया । रीतिकाल में प्रयुक्त होने वाले कुण्डलिया, सवैया कवित्त आदि को भी स्थान दिया । जिससे समस्त हिन्दी-साहित्य में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख छंदों की रचना का श्रेय इन्हें प्राप्त है । अत: बाबा रघुनाथ दास जी को आचार्य कोटि के कवियों में स्थान दिया जा सकता है, क्योंकि छंदों पर उनका असाधारण अधिकार था और पिंगल की दृष्टि से भी उनका छंदविधान पर्याप्त शुद्ध एवं परिष्कृत है। इतना ही नहीं उन्होंने प्रसंगानुकूल छंदों की रचना की है, जिसका विवरण इसी अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा ।

<u>कवि के परम प्रिय छन्द -</u>

यद्यपि अपनी कवि-प्रतिभा के आधार पर प्रत्येक कवि विभिन्न-छंदों की रचना करता है, किन्तु हर कवि कुछ विशिष्ट छंदों की रचना में सिद्ध-हस्त होता है। उदाहरणार्थ मैथिलीशरण गुप्त 'हरिगीतिका' की रचना में , रसखान सवैयों की रचना में, आनन्द घन 'कवित्तों' की रचना में, सेनापति 'कवित्तों' की रचना में, महाकवि देव 'कवित्तों' की रचना में, बिहारी 'दोहों' की रचना में, महाकवि सूर और तुलसी 'पदों' की रचना में और राष्ट्र कवि भूषण 'कवित्तों' की रचना में सिद्धहस्त थे । इसी प्रकार विश्रामसागर के रचयिता बाबा रघुनाथ दास गीतिका, छप्पय और कुण्डलिया की रचना में सिद्ध हस्त थे । इन तीनों छंदों के दो- दो उदाहरण देकर उक्त कथन की पुष्टि की जा रही है -

1-गीतिका-

"सब मुदित भरी बरात बाजत बाजि जात नचावहीं ।
मग लोग लखि रघुनाथ छवि निज जन्म को फल पावहीं ।।
बरयात करत निवास शुभ दिन अवध पहुँचे आयके ।

पुर नारि नर सुनि सकल जहँ तहँ को देखन धावहीं ।।"[1]

"अतिथिन भोजन रत्न दान कुबेर आहुति धर्म जू ।
यजि नृपति कीन्हो सुवन कहँ सब भाँतिन्हीं सकर्म जू ।।
गुरु द्विज आदिक बरन चारों और मोद समाज जू ।[2]
बहु अन्नदान महान आहुति पावके अभिराम जू ।।"

इसी प्रकार छप्पय छन्द का उदाहरण द्रष्टव्य है -

2-छप्पय-

तस्कर के कुल धर्म, दुष्ट के कुल गम खाना ।
किरपिन के कुल दान, क्रूर के कुल पिछताना ।।
कलबी के कुल लाज, शान्ति कुल नर कामिनि के ।
अधमनि के कुल दुख्य, धाम कुल का भामिनि के ।।
हिंसक के कुल दया, छिल कपटी के कुल मित्र जग ।।
कहै रघुनाथ सनाथ कवि, हरिजन के कुल साधु जग ।।"[3]

लखि रावण सिय हारि, आपु उठि कपिहि पुकारयो ।
चरण कुशल तेहि देखि, वचन युवराज उचारयो ।।
मम पद परै न ठौर, मोहि किन हरि पद जाई ।
सुनि सिंहासन लखि, बैठ मन माहिं लजाई ।।
कोटिन कौनपन ते कौ, क्यों नहिं जरत जाई जर ।[4]
हँसि कपि कुलमणिहार निज, कहिके चल्यो उछाह भर ।।"

इसी प्रकार कुण्डलिया का उदाहरण देखिए-

कुं0- कारण ज्ञान अज्ञान का, जन निर्जन कर औं ।
कारज ते सुनि बात विधि, नारि कपट कुल पंथ ।।
नारि कपट कुल पंथ, तुम्हें हम तबहीं जान्यौं ।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, पृ0 823

2- वही , वही , पृ0 697

3- वही, इतिहासायन खण्ड, पृ0 417

4- वही, रामायण खण्ड, पृ0 1021

जब धरि तापस रूप, विपिन सिधौ छल ठान्यौ ।।
ठान्यौ सेवा भूप, गयौ अनु रेवा कारन ।
आयौ मैं न वसीठ, राम पठयौ यहि कारन[1] ।।"

कुं०- कोकन कुंजा में दई मुक्ता लख्यौ न हाथ ।
सागर केर न दोष यह , निज अभाग रघुनाथ ।।
निज अभाग रघुनाथ, नाथ कछु कहहि कृपाचै ।
पात न लहै करील, ढोल को ताको गाचै ।।
गावत सुनी न अधिक, भानु दुति तमचर दोलन ।
रहत गन्ध बिन केतु, मलय हिग यहि विधि कोकन[2] ।।"

उपर्युक्त उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि रोतिका, छप्पय और कुण्डलिया छंदों के निर्माण में कवि को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती थी वे स्वत: ढल जाते थे ।

ड- <u>कतिपय छंदों के उदाहरण एवं गुण-दोष-</u>

गेय छंद-रचना में अपेक्षाकृत सरल होते हैं, किन्तु जो छंद आकार में विस्तृत होते हैं और जो विशेष गेय भी नहीं होते, उनकी रचना करना सबके वश की बात नहीं होती । प्रस्तुत कवि का छंदों पर असाधारण अधिकार था जैसा कि कतिपय छंदों के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा । सुविधा की दृष्टि से सर्वाधिक अक्षरों वाले "मदनमोहक दंडक" छंद का उदाहरण दृष्टव्य है —

"जयति जग जननि अघ हरणि मन मगनि कर अतुल वर पद अति शुभ धरणी ।
सर्वगुण भवनि दुख दवनि दानव सुरभि व्याघ जन पद्महरि चित्रकरणी ।।
रोग लघु हरणि भय हरणि कलिकालिका कालिका शत्रु परचंड त्यों ।
भूत ग्रह प्रेत वध शाकिनी डाकिनी विकट चित जाल दुर्गे अतुरी[3] ।।"

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, पृ० 1017

2- वही, कृष्णायन खण्ड, पृ० 467

3- वही, शक्तिरामायन खण्ड,अध्याय 30 पृ० 291

उपर्युक्त छंद के अतिरिक्त गीतिका, छप्पय कुण्डलिया, रोला, पद्धरि, पादाकुलक और त्रिभंगी आदि के एक- एक उदाहरण दृष्टव्य हैं -

पादाकुलक-

"कह प्रहलादा । सुन अहलादा ।। विष्णु सुनावे । सत्य भजावे ।।
विधा नामा । उभै सु दामा ।। अधिक देर आहो । पढ़ो मैं तातो ।।"[1]

पद्धरि-

"एक दिवस इक साधु, तासु नगरो महं आयो ।
पूछि हरिजन धाम, सुनत दुष्टन बतलायो ।।
अजामील कर साधु, वही जो तुम चितधामा ।
हरिजन जान्यो तांघ, गयो चलि ताके धामा ।।"[2]

इसी प्रकार श्री छन्द का एक अन्य उदाहरण देखिए -

श्री छन्द- अम्भा । मा है । भाख्यो । ऐसे ।"[3]

अष्टपदी छंद-

"जाय हित ते मान, जाय कुल निकटि कहाये ।
जाय नीच संग सुमति, जाय कुध भोजन खाये ।।
जाय क्रोध ते धर्म, जाय आदर नित मागि ।
जाय नीति बिन राज्य, जाय कुशासन भागे ।।"[4]

त्रिभंगी छंद-

"जै भागि कपीशा तव दशशीशा गहि कुश बीशा धनु तोरा ।
सँग सैन अपारा कीउ पुकारा मद मतवारा रणधीरा ।।
चल प्रभु पुर तोरा कहो अधीरा मेटहु पीरा देखि भौ ।
कटि कसि पट बाँधा धनु कर साँधा दलन प्रभाथा देहु भौ ।।"[5]

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-8 पृ0 69
2- वही, वही अध्याय-25, पृ0 232
3- वही, वही अध्याय-26, पृ0 247
4- वही, वही अध्याय-22, पृ0 199
5- वही रामायण खण्ड अध्याय-28, पृ0 1055

कवित्त -

"करत बरात को पयान नरनाह जब, सुरगन आसमान देखत अपार हैं ।
छै कोटि हैं मतंग औ तुरंग तीस कोटि, पायको पचीस कोटि पैदर अपार
भार बरदार सत्तासात कोटि ऊँट [illegible], [illegible] लक्ष पाँच कोटि बाजदार हैं ।
रथ [illegible] कोटि [illegible] है, [illegible] नाथ नौ [illegible] नाहिं पार हैं ।।"[1]

गीतिका -

भयो सुनत यमदूत पुर रविसुत जो वर्णन कियो ।
उठि नाथ सिर मन मुदित है सब पति मुद्गर कर लियो ।।
यह सत यम संवाद वरणीं सुनै जे अघ गाथ हैं ।
तेहि पुर अवर पिशाच यम के दूत नाहिं सताव हैं[2] ।।

मधुभार छन्द -

सुनि। मुनि ।। सुख । दुख[3] ।।"

इन छंदों में जहाँ शुद्धता, सरलता, भावात्मकता, प्रवाह, माधुर्य आदि गुणों का समावेश है वहाँ कतिपय छंदों में कुछ दोष भी दिखायी पड़ते हैं ।

यद्यपि कवि ने अवधी भाषा में काव्य रचना की है, किन्तु वे संस्कृत श्लोकों में भी गति रखते थे । यह बात दूसरी है कि श्लोकों की रचना पूर्णतया शुद्ध नहीं है, फिर भी श्लोकों के दो उदाहरणों से यह देखा जा सकता है कि कवि वर्णवृत्तों का भी ज्ञान रखता था और संस्कृत में भी काव्य रचना करने की क्षमता उसमें विद्यमान थी । प्रथम उदाहरण दृष्टव्य है -

नमों शारदा नित्यदा ज्ञान बुद्धिं । नमो गुरु गणेशो हरं विघ्न सिद्धिं ।।
नमो राम [illegible] कामस्वरूपं । नमो जानकी जगत माता अनूपं ।।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय-9 पृ0 800
2- वही, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 10, पृ0 91
3- वही, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 24, पृ0 220

नमो भारतं जय लक्ष्म शत्रु आरो । नमो केसरी नन्दनं सुखकारो ।।"[1]

यहाँ पर जगत् माता के स्थान पर 'जक्त' माता अशुद्ध है और अरि के स्थान पर "आरो" अशुद्ध है । 'सुखकारो' शब्द भी अशुद्ध ही है ।

इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण दृष्टव्य है -

" वपुनवविनीलं लोकलावण्यधामं सुर्वनिधिकामसोलं लोहिताक्षं विशालम् ।
करधनुशरधारी कोटकं पिंगलं विविधरिपुदमोशं जानकीशं नमामि ।।"[2]

इसमें धामन् शब्द है किन्तु कवि ने इसे अकारान्त मानकर प्रयुक्त किया है जो च्युत संस्कृति दोष की सीमा में आता है । इसी प्रकार धनुष को कवि ने अकारान्त ही माना है जो दोष है । इसी प्रकार "विविधरिपुदमोशं" यहाँ पर समास दोष है ।

अतः यह ज्ञात होता है कि कवि को संस्कृत छंदों का साधारण ज्ञान था अथवा कवि ने जानबूझ कर संस्कृत छंदों के बीच- बीच में हिन्दी शब्दों को रख- कर मिली -जुली शैली का एक नया प्रयोग किया है ।

छंदों के गुण -

ग्रन्थकार ने जिन छंदों के प्रयोग किए है उनकी विशेषता यह है कि वे सभी अधिकांश छंद पिंगल की रचना गणनानुसार शुद्ध है । उनमें लयात्मकता, ध्वन्यात्मकता एवं प्रवाह है । सभी छन्द वर्ण्यविषय के अनुकूल हैं ।

दोहा चौपाई को छोड़कर यति भंग दोष भी नहीं मिलता है। संगीतात्मकता अधिकांश छन्दों में विद्यमान है जिससे उन्हें सरलता से कंठस्थ किया जा सकता है । छंदों में प्रयुक्त शब्दावली विचारों को व्यक्त करने में पूर्णतया सक्षम है ।

उपर्युक्त अंश में छंदों के जो गुण बतलाए गए हैं उन सबके संकलित-

---

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय-1, पृ0 501

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 1 पृ0 659

उदाहरण द्रष्टव्य है -

"करजोरि निरतत छोरि कछु मुरजोरि सिर नीचे करैं ।
पगभूमि पटकनि बाहु झटकनि ग्रीव लटकनि मृदु मनुहरैं ।।
मृदु हँसहिं हेरहिं घूमि झुकि गति झुकन को लावहीं ।
ततताथेई ततताथेई ततताथेई कहि गावहीं[1] ।।"

यह गीतिका छंद है जिसमें श्रीकृष्ण की रासलीला के प्रसंग में छंद की संगीतात्मकता, वर्णविन्यास, सरलता, ध्वन्यात्मकता एवं छंद सौन्दर्य की सभी विशेषताएं साकार हो जाती हैं ।

इसी प्रकार छंद सौन्दर्य की संकलित विशेषताओं का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है --

कपिराज छत्र कुण्ठ कर, चौंर विभीषण हाथ ।
लखन लिये आदर्श कर, अंगद पावन पाथ ।।
अंगद पावन पाथ, पान रिपुदलन पवावे ।
व्यजना करत निषाद, भरत सब का ढिग लावे ।।
जामवन्त हनुमन्त कर, छरीछबीली रचित असि ।
वचन सुधा रस सरनि तन, चंदन सिर चंद्रिका शशि[2] ।।"

उपर्युक्त कुण्डलिया छंद में संगीतात्मकता, वर्णविन्यास, ध्वन्यात्मकता एवं अन्य छंद सौन्दर्य पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, जिससे यह स्पष्ट है कि ?/ कवि की छंद योजना बड़ी ही सार्थक और उत्कृष्ट रही है। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

देखो कनधारो धनु अपनारो बक्र बगारो थिर न रहे ।
परि रहत दिगम्बर पुष्पकली पर निरखि रूप नर मोह लहे ।।

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन काण्ड, अध्याय- 6 पृ0 576

2- वही, रामायण काण्ड, अध्याय- 30 पृ0 1075

लहै गर्वित गर्वि दिन प्रति जौं अति सौं पती करै ।
परसत पति पायँ तदपि सुहावै ललित भावै भाग्य भरै ।।
डोलहिं बहु डोला मिल मिल टोला करि करि डोला विपुल लसी ।
श्यामहिं जनु नारो रतो डोरो दर्शि प्यारो प्रेम लसी ।।"

इस त्रिभंगी छंद में पिंगल की शुद्धता के साथ ही नाद शब्द सौन्दर्य, अर्थ सौन्दर्य, पद सौन्दर्य आदि छंदगत समस्त विशेषतायें साकार हो गयी हैं ।

छंद के दोष -

कवि की कवित्व शक्ति छंदों में प्रयुक्त शब्दावली विचारों को व्यक्त करने में पूर्णतया सक्षम है।कुछ ही ऐसे स्थल हैं जहाँ विचारों के साथ छंद सहयोग नहीं करता। यथा -

[2]"यहाँ पर सोरठा जैसे सुन्दर छंद के साथ "रविपाथ" शब्द स्पष्ट नहीं होता, क्यों कि यहाँ पर कवि का अभिप्राय रविपथ से है जिससे यह "मारीच" अर्थ निकलता है । किन्तु कोई भी व्यक्ति 'रविपाथ' का अर्थ 'मारीच' नहीं कर सकता शब्द की यह असमर्थता 'सोरठा' जैसे मनोहर छंद के साथ नहीं बैठ पाती ।

दो० " कह्यो देखा विस्मात, यज्ञादिक सब पास ।
गयो हयो नहिं रहन कपहु, विश्वपि जानि निज नास ।।"[3]

यहाँ पर दोहे का प्रथम चरण ही दूषित है "विस्मय" के स्थान पर जिस का पर्यायवाची कोई ऐसा शब्द रखना चाहिए था जिसमें केवल पाँच मात्राएँ होनी चाहिए थी । अतः यह छंदों भंग दोष हुआ ।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल[4] में दोहे में दोष द्रष्टव्य है -

यहाँ पर "अलनाहु" शब्द बिल्कुल अस्पष्ट है । सम्भवतः उर्दू के "आलनायो शब्द

- -

1- विश्रामसागर, रतिरामायन खंड, अध्याय-11, पृष्ठ 643

2- करि विचार रविपाथ, कहा मुदित तीन मन गुना ।
अहौं न राखत बाध, जाते पायौ परमगति ।।- रामायणखंड, पृ० 927

3- विश्राम सागर , रामायण खंड, अध्याय-17, पृ० 905

4- वही, दो०- कहेउ सकुन सत्य पर, कुन्हु कुमारो आहु ।
तुम कहँ पायो आन यह, को कोई करि अलनाहु ।।
रामायण खंड, अध्याय-11 ,पृ० 814

से कवि का अभिप्राय है जो दोहा जैसे सरल छंद के साथ तारतम्य नहीं बैठा पाता और अस्पष्टता का दोष बना ही रहता है। इसी प्रकार[1] इस सोरठे का चतुर्थ चरण छंद के साथ संगति नहीं बैठा पाता और अर्थ में भी अस्पष्टता दिखलायी पड़ती है।

इसी प्रकार कहीं कहीं पर चौपाई छंदों में भी कवि ने छंदों-भंग किया है यथा - [2]"परम ज्योति होत अधिकारी" यहाँ पर एक मात्रा अधिक हो गयी है।

चौपाई छंदों में दोषों की मात्रा अधिक है यथा - [3]" दश अश्वमेधी पुनि जग जावै।" यहाँ पर भी मात्राधिक्य है जो छंद भंग दोष माना जाता है।

अन्य छंदों में छंदो भंग दोष प्रायः नहीं है। उपर्युक्त छंद विषय गुण-दोषों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दोषों की मात्रा नाम मात्र है और गुणों का बाहुल्य है। जहाँ तक दोषों का प्रश्न है वे तो बड़े-बड़े कवियों की रचनाओं में भी विद्यमान रहते हैं। यहाँ तक कि महाकवि कालिदास, महाकवि हर्ष जैसे दिग्गज कवियों की कविताओं में भी दोष निकाले गए हैं। हिन्दी में कबीर में तो पर्याप्त दोष हैं। सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, अज्ञेय तक सभी किसी न किसी अंश में दोषों से अछूते नहीं किन्तु जैसा कि कालिदास ने लिखा है कि - [4]" जैसे चन्द्रमा में एक ही अवगुण है और गुणों की पर्याप्त मात्रा है अतः वह दोष गुणों में इसी प्रकार छिप जाता है जिस प्रकार चन्द्रमा का दोष उसकी किरणों में छिप जाता है।

1- लुब्द लुब्द बारिस तोय, लहि रवि बहु द्युति बीथ ग्राव।
   मुग मधुकरि बिन तोय, दहत कहतमगधाजम ॥
      रामायण खण्ड, पृ०-832 अध्याय-12

2- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय-42, पृ० 523

3- वही, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 46 पृ० 478

4- "एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः के किरणे ष्विवांक:"

   कालिदास, कुमार सम्भव, पंचम् सर्ग।

अतः विश्रामसागर का कवि छंद गत गुणों से इतना उदात्त है कि इसके समक्ष उसके दोष नगण्य हैं।

(ग) कथा प्रसंग की दृष्टि से छंद गति औचित्य की मीमांसा -

कवि कर्म में कुशल व्यक्तित्व की यह पहचान है कि वह काव्य के प्रत्येक अंग को समुचित मात्रा में संवारता है या नहीं। आवश्यक यह होता है कि सिद्धहस्त-कवि प्रसंगानुकूल छंद योजना भी करते हैं। उदाहरण के लिए कोमल और मधुर प्रसंगों में 'सवैया' छंद अधिक रोचक लगता है। उपदेश के लिए दोहा छंद सुप्रसिद्ध है। ओज के लिए 'छप्पय' और 'कवित्त' का प्रयोग बहुप्रचलित है। कोमल और मधुर स्थलों के लिए गीतिका छंद, वीर रस के प्रसंग में नाराच, अरिल्ल, तोमर, तोटक, जैसे छंद प्रसिद्ध हैं। अतः इस दृष्टि से विश्रामसागर की छंद योजना पर विचार करना अपेक्षित है। इस कवि ने निम्नलिखित प्रसंगों में निम्नलिखित छंदों की योजना की है -

1- प्रार्थना स्थल	2- उपदेश स्थल	3- नीति प्रसंग
4- भक्ति प्रसंग	5- दार्शनिक प्रसंग	6- वर्णन प्रसंग
7- शृंगार स्थल	8- हास्य प्रसंग	9- करुण प्रसंग
10- युद्ध स्थल	11- भयावह वातावरण	12- अद्भुत प्रसंग
13- वात्सल्य वर्णन	14- वीभत्स चित्रण	15- प्रकृति सौन्दर्य

उपर्युक्त प्रसंगों में कवि ने जिन छंदों का प्रयोग किया है यहाँ पर उनकी मीमांसा करना भी आवश्यक है जिससे यह ज्ञात हो सके कि कवि ने प्रसंगों के अनुसार ही छंद योजना की है अथवा कुछ परम्परित नियमों की अवहेलना की है अथवा यदि अवहेलना की भी है तो उसमें कवि का क्या दृष्टिकोण रहा है इन बातों पर विचार करने पर ही कवि का छंदगत वास्तविक स्वरूप पूर्णतया प्रतिष्ठित हो सकता है।

1- प्रार्थना स्थल -

प्रार्थना में प्रार्थी की भावुकता, विनम्रता, तल्लीनता और निश्छलता की सहज अभिव्यक्ति होती है, अतः ऐसे स्थलों के लिए 'कुण्डलिया' जैसा मधुर छंद अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उदाहरण स्वरूप- विश्रामसागर के

रामायण खण्ड में जब श्रीराम सिंहासनारूढ़ होते हैं तब देवगण उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं -

"बोले विश्वामित्र तब, जय जन-वन-मन-हंस ।
रघुकुल कुमुद चकोर शशि, शिव धनु कृत विध्वंस ।।
शिव धनु कृत विध्वंस, कौतुक असुर निकंदन ।
जय सुर नर मुनिपाल, काल खल दशरथनंदन ।।
दशरथनंदन भक्ति देहु, निज मोहिं अडोले ।
तब तहँ बाल स्वरूप, चार सनकादिक बोले ।।"[1]

उपर्युक्त छंद में कवि ने विश्वामित्र जी की भावुकता को अलंकृत शब्दावली में माधुर्य गुण से ओत-प्रोत करके चित्रित किया है, जिसमें उनकी वीरता, सुन्दरता, पराक्रम, अनोखा, लोकरक्षा आदि की प्रशंसा की गयी है । भावना के अनुकूल कोमल और मधुर पदावली का प्रयोग प्रार्थना के सर्वथा अनुकूल है ।

इसी प्रकार प्रार्थना स्थलों में 'रोला' छंद भी सरल और उपयुक्त होता है जिस समय श्रीकृष्ण यमलार्जुन का उद्धार करते हैं उस समय दो दिव्य पुरुष प्रकट होकर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं -

"जयति जयति जगदीश ईश तव चरित अनन्ता ।
सुनत कहत अघ दहत कहत इमि सब श्रुति सन्ता ।।
जयति मच्छ वपु धरण सत्यव्रत प्रलय देखावन ।
जय वराह धनि नाथ कनकदृग दलि महि लावन ।।"[2]

इस रोला छंद में वर्ण माधुर्य, पद माधुरी और श्रुति सौन्दर्य के साथ ही साथ ईश्वर के अनन्त गुणों के चरित्रों को पापनाशक बतलाकर ईश सामर्थ्य की प्रशंसा की गयी है और उन्हें ही अनेक अवतारों का कारण बतलाया गया है । इस प्रकार इस प्रार्थना स्थल में रोला छंद बड़ा ही सफल सिद्ध हुआ है । स्तुति

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड अध्याय-30, पृ0 1077

2- वही, कृष्णायन खण्ड अध्याय- 4, पृ0 546

या प्रार्थना के लिए 'अष्टपदी' छंद का भी प्रयोग उपयुक्त होता है जिस समय भगवान विष्णु ध्रुव को दर्शन देते हैं। उस समय ध्रुव स्तुति अष्टपदी छंद में ही वर्णित है -

नमो राम सुखधाम नमो जगदीश दयालं।
नमो जीव जीवेश नमो सुरमुनि प्रतिपालं।।
नमो अनाथनि नाथ नमो सन्तन हितकारी।
नमो शम्भु अज ईश नमो निरगुण गुणधारी।।[1]

निष्कर्ष यह है कि कवि ने प्रार्थना स्थलों में कुण्डलिया, रोला, अष्टपदी, छंदों का अधिकांश प्रयोग किया है। यह सभी छंद मधुर एवं गेय होते हैं और प्रार्थना जैसे सात्विक कार्य के लिए परम् उपयुक्त माने जाते हैं। कवि ने प्रार्थना-स्थलों में इनका प्रयोग करके छंदगत् औचित्य सम्बन्धी ज्ञान को प्रामाणिक किया है।

2- उपदेश स्थल -

उपदेश की वाणी बड़ी ही सरल और स्पष्ट होती है उसमें किसी प्रकार की क्लिष्टता नहीं होती है अतः ऐसे स्थलों में चौपाई छंदों का प्रयोग दोहा छंद के साथ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कबीर, तुलसी आदि संत कवियों ने भी उपदेश स्थलों में इनका प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए युधिष्ठिर 'यक्ष' के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं -

वारि आनि जहँ लगि तनुधारी। जलचर थलचर नभचर नारी।।
मरण एक दिन सब कर होई। शेष रहे अचरज है सोई।।
सुना भूप बात यह जबहीं। उगिलि दिहिसि पारथ का तबहीं।।
पंथीं जाहि महाजन थापे। नकुलै उगिलि दियसि तब आपै।।[2]

इसी प्रकार भगवद् पूजा के लिए कवि ने दोहा शैली में उपदेश दिया है यथा -

श्रीहरि पूजा अमित फल, परम पुण्य सुखखानि।
ताते सतत कीजिए, प्रीति सहित हितमानि।।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-24 पृ० 219
2- वही , वही अध्याय-36 पृ० 363

पाद पुष्टता अर्थ अपि, श्रुति समेत असनान ।।
असन विनय भय ध्रुव गुण, चित चन्दन तिक ज्ञान ।।
शुभ वासना दोष निज, बोध हरे अविवेक ।
अशुभाशुभ तुला तक्षु, गोवर्तिका अनेक[1] ।।

इसी प्रकार हरि भक्त लक्षणों का कर्म, उपासना और ज्ञान का उपदेश देने में कवि ने इसी दोहा, चौपाई शैली का अनुसरण किया है । निष्कर्ष यह है कि उपदेश स्थलों में कवि ने दोहा, चौपाई, छंदों का अधिकांश प्रयोग करके छंद गत औचित्य के ज्ञान की पुष्टि की है ।

3- नीति प्रसंग -

नीति का सम्बन्ध उपदेश से ही है । यह एक प्रकार की सूक्ति भी कहलाती है । जिसके कंठस्थ करने की आवश्यकता होती है । अतः इसके लिए दोहा, चौपाई, छंद अधिक उपयुक्त होते हैं । विश्रामसागर के कवि ने नीति वर्णन में अधिकांश दोहों का प्रयोग किया है यथा -

गुरु वैद्य अरु ज्योतिषी, देव मित्र अरु राज ।
इन्हें भेंट बिन जो मिले, होय न पूरण काज[2] ।।

पीछे निज कारज सरै, ताको निंदि, नीच ।
यथा कोल पय पान करि, पुनि करि आरत कीच[3] ।।

धन्य वही रघुनाथ तब जब होवे सतसंग ।
जन्म तासु को सफल जी, रंगे राम के रंग[4] ।।

इसी प्रकार नीति प्रसंग में 4 यह दोहा छंद भी दर्शनीय है ।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-46, पृ0 477
2- वही, वही, अध्याय- 4, पृ0 37
3- वही, वही, अध्याय- 2, पृ0 18
4- वही, वही, अध्याय-21, पृ0 195

कवि ने नीति प्रसंग में 'अष्टपदी' छंद का भी प्रयोग किया है जिसका कारण यह है कि यह छंद भी बड़ा ही मधुर और गेय होता है तथा इसको कंठस्थ करने में कोई कठिनाई नहीं होती। कतिपय उदाहरणों से यह बात स्पष्ट की जा सकती है -

जाय ज्ञान ते मोह, जाय अघ हरि गुन गाये ।
जाय तिमिर रवि उदय, जाय विद्यालय आये ।।
जाय क्षमा को क्रोध, जाय धन लोभ बढ़ाये ।
जाय गुनो बिन काज, जाय सुख सबहिं सताये ।।

* * *

जाय जन्म अरु मरण, राम के सुमिरण कीन्हें ।
जाय गुरु ते भर्म, कर्म निज स्वहि चीन्हें ।।
शान्ति जाय परवृत्ति, दोष जाय हिये दान ।।
कहे रघुनाथ यों जात है, भक्ति किये अभिमान ।।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'नैतिक-शिक्षा' के लिए कवि ने मुख्यतया दोहा छंद को ही चुना है जो नीति शिक्षा के लिए अति उचित छंद माना जाता है । इससे यह सिद्ध होता है कि कवि को प्रसंगानुकूल छंद प्रयोग का यथार्थ ज्ञान था ।

4- भक्ति प्रसंग -

भक्ति गाथा एक उत्तम और सात्त्विक वर्णन माना जाता है जिसमें हरिगीतिका, पद, दोहा, चौपाई, गीतिका, और सवैया जैसे छंद बहुत सफल माने जाते है । विश्रामसागर में भक्ति के प्रसंग में कवि ने चौपाई छंद का प्रयोग किया है यथा -

जो हरिभक्ति हृदय नहीं धारयो, सो पीढ़ी तक पितर उधारयो ।।[2]

1- भजन परारथ कर्म शुभ लहि पाय नर देह ।
   जीवन ताको सफल है, अरु सब पे सुख देह ।।
   विश्रामसागर, पृ० 195

2- विश्रामसागर, रामायण खण्ड अध्याय- 24, पृ० 225

कुछ स्थलों में दोहों का भी प्रयोग किया गया है -

दो० ऐसी हरि की भक्ति है, ताहि करत जे नाहिं ।[1]
तिन्हें जानिये पशु सम, सींग पूँछ बिन आहिं ।।

इसी प्रकार गीतिका छंद में भक्ति का महात्म्य दृष्टव्य है -

गी०छंद -
शुभ कर्म ज्ञान भक्ति तिहुँ बिन जन्म मरण न छूटई ।
चहुँ जाइ सुरपुर नागपुर महि गिरत यमगण कूटई ।।
सुनि शुभ ऋषि के वचन सिद्धो पुत्र शोक बिहाइ कै ।
लागे करन जप योग संयम ज्ञान मुक्तिहि पाइ कै[2] ।।

निष्कर्ष यह है कि भक्ति के प्रसंग में कवि ने दोहा, चौपाई को प्राथमिकता दी है, जो सर्वथा उपयुक्त है ।

5- दार्शनिक प्रसंग -

दर्शन तत्त्व स्वतः गूढ़ होता है अतः उसको सरल और लघु-छंद में ही व्यक्त करना चाहिए । विश्रामसागर के कवि ने भी इस बात का विशेष ध्यान दिया है । यही कारण है कि ग्रन्थ के इतिहासायन खण्ड के अन्त में जहाँ पर कवि ने सभी दर्शनों का सार संग्रहित करने की चेष्टा की है, वहाँ उसने दोहा, चौपाई शैली का ही अनुसरण किया है यथा -

दो० सुमिरि राम सिय सन्त गुरु, गणप गिरा सुखदानि ।
योग शास्त्र मत कहौं कछु, ईशोपनिषद् जानि ।।

चौ० बोले शुभ बहुत सुभाई । बिन गुरु को सद्पंथ बताई ।।
पातंजली शास्त्र के माहीं । कहौ योग विधि सो मोहिं पाहीं ।।

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 24 पृ० 227
2- वही. वही. अध्याय- 39 , पृ० 392

दो0 आठ अंग हैं योग के ,यम नेमासन साधि ।

प्राणायाम प्रत्याहार अरु, धारण ध्यान समाधि ।।

इसके अतिरिक्त कवि ने चौबोला, छप्पय और कुण्डलिया एवं गीतिका को भी स्थान दिया है । विचार करने पर प्रतीत होता है कि कवि ने दार्शनिक-विवेचन के लिए दोहे को अधिक उपयुक्त माना है,क्यों कि बड़े छंदों में किया गया दार्शनिक विवेचन कंठस्थ नहीं रह सकता । अतः मुख्यतया दोहा छंदों में दार्शनिक-विवेचन को निबद्ध करके कवि ने दूरदर्शिता से काम लिया है,+ जो सर्वथा उचित है ।

वर्णन प्रसंग -

वर्णनों के लिए बहुवर्णित छंदों का प्रयोग ही उचित ठहरता है क्यों कि वर्णन में धारावाहिकता का गुण अपेक्षित होता है। धाराप्रवाहता बनाने में विशेष प्रचलित छंद ही उपयुक्त होते हैं । इस दृष्टि से कवि ने वर्णनों के लिए दोहा,चौपाई, छंद की मिश्रित शैली को वरीयता प्रदान की है । उदाहरण के लिए - धनुर्भंग प्रसंग, रामविवाहवर्णन, भरत-चित्रकूट-आगमन, बालिवध-वर्णन, राम रावण युद्ध आदि कथानकों में इसी दोहा चौपाई शैली को अपनाया है । रामचरित-मानस के रचनाकार कवि तुलसी ने भी इन वर्णनात्मक प्रसंगों में दोहा-चौपाई का ही प्रयोग किया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि वर्णन प्रसंगों में दोहा, चौपाई की शैली ही उपयुक्त होती है । बीच- बीच में एकता को बचाने के लिए कुछ गेय छंदों का भी प्रयोग कर दिया जाता है/उदाहरणार्थ विश्रामसागर में कवि ने तुलसी-माहात्म्य वर्णन के प्रसंग में दोहा चौपाइयों की प्रधानता के साथ ही साथ गीतिका, रोला, तोमर,कुण्डलिया जैसे छंदों का भी प्रयोग किया है । इससे वर्णन में रोचकता, मधुरता, प्रभावविष्णुता आ गयी है । इन सभी छंदों में विशेषतः "रोला छंद" वर्णन को अधिक सरस बना देता है। अतः ग्रन्थकार ने वर्णनों के बीच में अधिकांश रोला छंद का प्रयोग किया है/यथा-

रोला छंद- सुनी नाथ इक समय देव दानव सब धाये ।

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड,अध्याय- 47, पृ0 484

मथ्यो सिंधु गिरि डारि रत्न चौदा तहँ पाये ।।
कामधेनु गज अश्व कल्पतरु विष शशि जानी ।
धनुष धन्वन्तर कम्बु रमा रम्भा पहिचानी ।।[1]

उपर्युक्त रोला छंद में देवों, दानवों ने सिंधु को पर्वत से मथा था और उससे जो रत्न प्राप्त हुए उनका वर्णन कितना ही हृदयग्राही हुआ है । अतः निष्कर्ष यह है कि वर्णन प्रसंग में अन्य छंदों के साथ 'रोला' छंद अपना विशेष महत्व रखता है ।

श्रृंगार स्थल -

श्रृंगार एक मधुर भाव है जिसमें मनोरम छंदों का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है कविने ऐसे प्रसंगों में गीतिका छंद को विशेष महत्व दिया है और वैकल्पिक-रूप में रोला तथा कुण्डलिया को भी प्रयुक्त किया है उदाहरणार्थ रास लीला में गीतिका छंद के प्रयोग और रुक्मणी हरण के प्रसंग में रोला और कुण्डलिया छंदों के प्रयोग दृष्टव्य हैं -

रघुनाथ तिनके बीच जोड़ी राधिका नंदलाल की ।
वपु एक रूप अनेक कीन्हे धारि नहिं धरि हाल की ।।
मिरदंग ताल सितार बहु मुरचंग वेणु तरंगिका ।
स्वर मंद बाजत बाँसुरी गति मिलत उठत तरंगिका ।।[2]

इसी प्रकार रुक्मिणी-हरण में रोला छंद का उदाहरण दृष्टव्य है -

कोई दुखिता दुखित होत लखि बालक जाने ।
कोउ गर्वित पति रूप अधिक कोउ उदर प्रमाने ।।
आई करत कलोल सकल देवी के पासा ।
पूजन कीन्हों गौरि कृष्ण को करि उर आसा ।।[3]

साराँश यह है कि श्रृंगार के उपयुक्त कोमल और मधुर भावों को व्यक्त करने को

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 33 पृ0 321
2- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 576
3- वही, वही, अध्याय- 11 पृ0 647

क्रमश गोतिका, रोला, सवैया, कुण्डलिया जैसे छंदों में होता है । विश्रामसागर के कवि ने इस औचित्य को भलीभांति पहचाना है इसलिए उसने इन कोमल और मधुर छंदों का प्रयोग श्रृंगारिक स्थलों में किया है ।

हास्य प्रसंग -

हास्य प्रसंग चित्त के आह्लाद जनक होते हैं । जिनमें सरलता, स्पष्टता आवश्यक होती है इसके लिए चौपाई छंद सर्वाधिक उपयुक्त होता है । विश्रामसागर के कवि ने भी राम कलेवा के प्रसंग में चौपाई छंदों का ही प्रयोग किया है जहाँ पर जनक पुर की सखियों ने राम से मनोरम हास-परिहास किया है यथा -

चौ० अचवन करि बैठे तिन पाला । लगीं करन सिय हास विलासा ।।
एक सखी बोली सुनु भाई । कपिहि चित्त कुछ जनों हवि आई ।।
कह्यो राम कत कुशल लेहु । निकट गोसा परोसा लेहु ।।
अपर वचन करयो निज औरा । मिलि और तुम सब चित चोरा ।।[1]

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में हास्य रस के लिए अधिक स्थान नहीं है क्यों कि यह भक्ति प्रधान ग्रन्थ है जिसमें भक्ति की गम्भीरता है, हास्य की उच्छृंखलता नहीं है । रामचरित मानस में भी तुलसी ने नारद मोह के प्रसंग में इसी चौपाई छंद का प्रयोग किया है जिससे सिद्ध होता है कि हास्य प्रसंगों में चौपाई छंद का ही प्रयोग उचित होता है ।

करुण प्रसंग -

विश्रामसागर में अनेक करुण प्रसंग आये हुए हैं। उदाहरणार्थ प्रथम-खण्ड में बहुला गऊ की कथा, रामायण खण्ड में लक्ष्मण शक्ति का प्रसंग विशेष करुण है । अतः करुण जैसे कोमल भाव के लिए आडम्बर प्रधान छंदों का प्रयोग नहीं होता । इसमें दोहा चौपाई का सम्मिलित प्रयोग ही उचित होता है । महाराज दशरथ की मृत्यु पर चौपाई छंदों में ही कवि ने करुण रस का परिपाक

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 10 पृ० 812

किया है -

भ्रम लगाय न दोष तुम्हारा । दुखकर मूल अभाग हमारा ॥[1]

इसी प्रकार लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम द्वारा कवि ने जो विलाप कराया है, उसमें कवि ने गीतिका छंद का प्रयोग किया है। इसका औचित्य यह है कि जब करुण रस की प्रधानता चित्त को अधिक द्रवित कर देती है तब गीत की ही सृष्टि होती है - वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान, उमड़ कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान - (पंत)। इस आधार पर भी यह सिद्ध होता है कि करुणा की अधिकता में गीत को जन्म मिलता है। अतः कवि ने राम की वेदना को लक्ष्मण जैसे भाई के संज्ञाहीन होने पर 'गीतिका' छंद में निबद्ध किया है, जो राम की करुणा की अभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त उचित है -

हा तात तजि पितु मातु बन मम विपत्ति आय बटायहू ।
तिन साथ हौं सुरलोक को तजि प्राण नाहिं पठायहू ॥
निज कर्म निज करतूति ते तुम तात सब सुकृतो जये ।
मैं राखि तुम बिन देह दोरघ नाहि फिर अपयश लये ॥[2]

अतः स्पष्ट है कि कवि ने करुण-रस के प्रसंग में गीतिका एवं चौपाई छंद को चुना है, जो सर्वथा उचित ही है।

<u>युद्ध स्थल -</u>

युद्ध वर्णन में ओज गुण का प्राधान्य होता है, जिसमें छप्पय, त्रिभंगी, भुजंगप्रयात् जैसे विकट छंदों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए राम-रावण-युद्ध के वर्णन में कवि ने 'त्रिभंगी' छंद का विशेष प्रयोग किया है। यथा -

जे भागि कपीशा सब दलकीशा गहि भुज बीशा धनु तोरा ।
संग सैन अपारा क्रोध दुबारा मद मतवारा रणधीरा ॥

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, पृ० 868

2- वही, वही, अध्याय- 26 पृ० 1028

जब प्रभु सुर तोरा कह्यौ अघोरा भेटहु पोरा येगि भी ।
कटि कसि पट बाँधा धनु शर साँधा दलन प्रबाधा हेतु भी[1] ।।

*   *   *

रावण हनुमाना भेक समाना भिरत बखाना असुर ठने ।
नभ सुर मुनि हेरो दुन्दुभ केरो जय जय टेरो टेरि भी ।।
कपि भालु निवारे हनुमति बारे गिरि तरु धारे सब धाये ।
लखि निज दल भूपा धरि बहुरूपा कोश अनुपा दिखराये[2] ।।

इसी प्रकार अतिकाय वरण सम्बन्धी युद्ध में चौपाई छंद का प्रयोग किया है । रावण- अंगद सम्वाद के बाद युद्ध में कवि ने छप्पय छंदों का अधिक प्रयोग किया है -

रे वानर तू कौन, दूत हम रघुपति केरे । तब आयो केहि हेतु, अब रखा चित तेरे ।।
कौन विपत्ति बड़ मोहि, शत्रु शिर पर प्रभु आये । सो कोपि रघुनाथ जासु, तुम लिय हरि लाये ।।
कौन कहत हनुमान को, जिहि तेरा लंका दहो । करुणा सिंधु सर्वज्ञ सो, सुनि[3] व्याकुल है यौं कहो ।।

वानरों और राक्षसों के युद्ध प्रसंग में, लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध प्रसंग में गीतिका छंदों का प्रयोग किया गया है । यहाँ यह विचारणीय है कि गीतिका कोमल छंद है, किन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वीर रस के भी गीत है। अतः गीतिका का प्रयोग वीर रस के क्षेत्र में भी किया जा सकता है। यही कारण है कि कवि ने वानर राक्षसों के युद्ध में गीतिका छंद का प्रयोग किया है -

निज हारि लखि अतिकाय आदिक अमित निज माया ठनी ।
भयो निमिष में अँधियार युद्ध न हाथ भागो कपि अनी ।।
बहु ओर ते भ्रम मिलत नहिं जब रुधिर बरषा बालुका ।

- -

1- विश्रामसागर, रामायण खंड, अध्याय- 28 पृ० 1055
2- वही, वही " -28 पृ० 1057
3- वही, वही, " - 25 पृ० 1012

भर देत रोचन मींकते श्रुति नोर श्री करि लिए ।।
अति चतुर लोग्नैं छेदि सिकौ उठे सिसु अकुलाइके ।।
भरि नयन नीरज नीर जननी लीन हृदय लगाइके[1] ।।

तथा इसी प्रकार दोहा, चौपाई छंदों में भी कृष्ण की बाल लीलाओं का उल्लेख किया है, जो वर्ण्य-विषय के लिए उपयुक्त एवं उचित है ।

वीभत्स रस -

यह एक कटु भाव है जिसमें ओज प्रधान वर्णों का प्रयोग होता है कवि ने इसमें त्रिभंगी छंद का प्रयोग किया है-

कटि कटि भट परहीं पुनि उठि लरहीं जय करि धरहीं पग पीछे ।
कोटिन बिन माथा धावहिं नाथा कह रघुनाथा सिर पीछे ।।
धक धक धक मारु पकरि पछारु करहु प्रहारु कोउ न बचै ।
अति वीभत्स शोभा अद्भुत नरोभा जो बनोभा मुनि रचै[2] ।।

इसके अतिरिक्त दोहा चौपाइयों में भी वीभत्स के चित्र मिलते हैं । हनुमान-मेघनाद के युद्ध में दोहा, चौपाई की शैली को अपनाया गया है और हनुमान-युद्ध में भी चौपाई छंदों के माध्यम से वीभत्स की अवतारणा की गयी है ।

प्रकृति सौन्दर्य -

प्रकृति चित्रण जहाँ पर उपदेशात्मक पद्धति से किया जाता है, वहाँ पर चौपाई शैली उपयुक्त होती है। उदाहरण के लिए विश्रामसागर में वर्षा ऋतु के प्रसंग में कवि ने इसी शैली का अनुगमन किया है। यथा -

बर्षत जल घन जल भय बोन्हैं । जिमि सम्पति रघुपति के दीन्हैं ।।
भई कोउ नर काज निवारी । जिमि सज्जन जग नाहिं विचारी[3] ।।

यही पद्धति राम चरितमानस में किष्किन्धा काण्ड में वर्षा के प्रसंग में

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 4 ,पृ0 716
2- वही , वही, अध्याय-28 ,पृ0 1056
3- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 5 पृ0 563

कविवर तुलसी ने की है । किन्तु जहाँ पर श्रृंगारी या मधुर वर्णन होता है वहाँ पर गीतिका छंद प्रयुक्त होता है । रासलीला के प्रसंग में कवि ने गीतिका का प्रयोग किया है -

छविधाम वंशीवट जहाँ मणि खचित कंचन की मही ।
तहँ रासमंडल रच्यो मोहन जात सो जाये कही ।।
नवसात सहस सु गोपिका सजि साज सब ठाढ़ी भई ।[1]
इक एक के मधि एक मूरति श्याम की शोभा भई ।।

जहाँ पर प्रकृति का कथन रूप होता है वहाँ पर चौपाई शैली उपयुक्त होती है। पुष्पवाटिका के प्रसंग में कवि ने दोहा और त्रिभंगी दोनों छंदों का प्रयोग किया है ।

सर मध्य सोहाना मणि सोपाना सरवर नाना कमल खिले ।
स्फटिक तट अति नीका सदन सखी का छवि जन जी का चोरि लिये ।।
अद्भुत फुलवाई सकल सुहाई पुनि दोउ भाई प्रेम पगे ।[2]
मालीगण चेला पुष्प सकेला मुदित सुमन सब लेन लगे ।।

इसी प्रकार प्रकृति चित्रण के प्रसंगों में कवि ने प्रकृति की प्रकृति के अनुकूल छंदों का प्रयोग किया है ।

निष्कर्ष यह है कि विश्रामसागर के कवि ने प्रसंगानुकूल छंदों के प्रयोग करने में बड़ी सतर्कता से काम लिया है। छंद, भाषा के माध्यम से भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के साधन होते हैं। इसलिए कवि की सफलता या असफलता का बहुत कुछ श्रेय छंदों पर भी आधारित होता है । यदि प्रसंगानुकूल छंदों का प्रयोग न हुआ तो प्रसंग रस एवं प्रभावहीन हो जाते हैं । पाठक की मनोवृत्ति संतुष्ट नहीं होती । किन्तु विश्रामसागर की यह विशेषता है कि इसके विभिन्न-छंद प्रसंगों के अनुकूल ही लिखे हैं और भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सहयोग देते हुए प्रतीत होते हैं । अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बाबा रघुनाथ दास रामसनेही छंद शास्त्र के आचार्य थे और उन्होंने 'विश्राम-सागर' में अपने इस आचार्यत्व का सफल प्रदर्शन किया है ।

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 576

2- वही, रामायण खण्ड, अध्याय- 7 पृ0 766

अध्याय - 8

विद्यासागर में धार्मिकता एवं नैतिक विचार

सांख्य एवं योग दर्शन, वेदान्त दर्शन, अन्य दर्शनों का चिन्तन -

"दर्शन" शब्द की निष्पत्ति "दृश्" धातु से करण अर्थ में "ल्युट्" प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अर्थ होता है "जिसके द्वारा देखा जाए" [दृश्यते अनेन इति] देखने का मुख्य साधन आँख है। इस आँख इन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसको "चाक्षुष प्रत्यक्ष" कहते हैं। अतएव चाक्षुष प्रत्यक्ष ज्ञान ही दर्शन का अभिप्रेत "देखा हुआ" ज्ञान है। यह मत कुछ दर्शनों का है।

दूसरे सूक्ष्म दर्शनों का मत है कि कुछ वस्तुएं ऐसी भी हैं, जिनका चाक्षुष-प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, अर्थात् जो आँखों से नहीं देखी जा सकतीं। उनके लिए सूक्ष्म दृष्टि [तात्त्विक बुद्धि] की आवश्यकता है। इस दृष्टि या तात्त्विक बुद्धि के दूसरे नाम "प्रज्ञाचक्षु", "ज्ञानचक्षु", या दिव्य दृष्टि हैं। इस मत में "दर्शन" शब्द का अर्थ हुआ "जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाए"। "गीता" में श्रीकृष्ण ने अपना विश्वरूप दिखाने से पहले अर्जुन को "दिव्यचक्षु" दिए थे।

"दर्शन" शब्द के इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ को दृष्टि में रखकर यदि उसकी परम्परा के मूल उत्स का अनुसंधान किया जाए तो उपनिषदों और दूसरे शास्त्रों में उसका प्रचुरता से प्रयोग हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध "ईशावास्योपनिषद्" के इस श्लोक को लिया जा सकता है -

> हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
> तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

इस श्लोक का आशय है सोने के पात्र से सत्य का मुख ढंपा है। हे पूषन् [सारे जगत् का पालन करने वाले परमात्मन्] उस ढक्कन को हटाइये, जिससे सत्य का, अर्थात् ब्रह्म का या आपका और सनातन रूप ब्रह्म पर प्रतिष्ठित धर्म का [आत्मज्ञानानुकूल कर्तव्य का] हमको "दर्शन" हो सके।

इस श्लोक में "दृष्टये" का "दर्शन" अर्थ में प्रयोग आत्म साक्षात्कार या ब्रह्म साक्षात्कार के लिए हुआ है। इसी प्रकार "छान्दोग्य उपनिषद्"

में दृशा का "आत्मदर्शन" के अर्थ में प्रयोग करते हुए लिखा गया है "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः" मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियों में उपनिषदों के "आत्मज्ञान" को "सम्यग्दर्शन" तथा "आत्मदर्शन" के अर्थ में लिया गया है। अपने सच्चे स्वरूप का दर्शन करना या अपने सच्चे को पहचानना ही "आत्मदर्शन" या "सम्यग्दर्शन" है।

इस "सम्यग्दर्शन" या"आत्मदर्शन" के लिए समदृष्टि का होना आवश्यक है। सब धर्मों, मतों, सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करके उनको एक ही रूप में देखने का नाम ही "समदृष्टि" या "समदर्शिता" है। सर्वत्र एक ही आत्मा को देखना और सब में एक ही परमेश्वर का दर्शन करना, यही यथार्थ "दर्शन" है। यह संसार क्या है, ये जीवन- मृत्यु के बंधन क्या हैं इस सुख- दुख का सार क्या है, मैं क्या हूँ, इन सभी के मूल में अव्यक्त रहस्य को समझ लेना ही दर्शन है। ये अनन्त दृश्य जब एक ही द्रष्टा में दिखायी देने लगें, मैं ही सब सर्वत्र दिखायी देने लगे और यह दुःख जब परम शान्ति में बदला हुआ जान पड़े, उसी को वास्तविक "देखना (दर्शन) कहते हैं[1]।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि दर्शन" का सामान्य अर्थ देखना होता है, किन्तु वैचारिक दृष्टि से दर्शन दो प्रकार का होता है - आन्तरिक दर्शन और ग्राह्य दर्शन। ज्ञान दृष्टि से किसी वस्तु को देखना व समझना और उस पर विचार करना आन्तरिक- दर्शन और ग्राह्य - इन्द्रियों की सहायता से किसी भी विषय पर प्रत्यक्ष- विचार करना या देखना "ग्राह्य दर्शन" कहलाता है। यहाँ पर मेरा विचार अन्तर्दर्शन से है। हमारे देश के विद्वानों ने ब्रह्मजीव और जगत् के विषय में अपने- अपने दृष्टिकोण से गहन चिन्तन किया है। "षड् दर्शन" के नाम से उनका चिन्तन प्रसिद्ध है - न्याय दर्शन, वैशेषिकदर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, मीमांसा- दर्शन और वेदान्त दर्शन।

- -

1- भारतीय दर्शन, पृ० 9, वाचस्पति गैरोला

विश्रामसागर के कवि ने इतिहासात्मक खण्ड के सैंतालिसवें अध्याय में इन दर्शनों का संक्षिप्त और सरल विवेचन प्रस्तुत किया है जिसका विवरण इस प्रकार है -

सर्व प्रथम कवि ने योग दर्शन का विवरण प्रस्तुत किया है। योग-दर्शन के आचार्य महर्षि पतंजलि है। योग के आठ अंग बताए हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम के बारह अंग, नियम के बारह अंग, आसन के चौरासी अंग, प्राणायाम के षट् चक्र और पूरक, कुम्भक तथा रेचक विधि बतायी गयी है। इसी प्रकार कुम्भक के आठ प्रकार बताए गए हैं। ध्यान के चार प्रकार बताए गए हैं-पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। पुनः इनका विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। समाधि के प्रकरण में नेति, धौति आदि षट् कर्मों का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार में पंच विधि मुद्राओं का उल्लेख किया गया है, जिन्हें क्रमशः खेचरी, भूचरी, चाचरी, गोचरी, उन्मनी कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त महाबन्ध मूल, जालन्धर और उड्डियान, यह चार प्रकार के बन्धन बताए गए हैं इसी प्रसंग में अष्ट सिद्धियों और नव ऋद्धियों का भी उल्लेख किया गया है, क्यों कि योग और तप में ही इनकी प्राप्ति होती है। इसी प्रसंग में कवि ने अनाहत नाद की दस ध्वनियों का उल्लेख किया है। प्रथम ध्वनि भ्रमर गुंजन की होती है, जिसके सुनने से शरीर पुलकित होता है। दूसरी प्रकार की ध्वनि से आलस्य आता है। तीसरी ध्वनि शंखनाद की होती है, जिससे प्रेम की पीड़ा जागृत होती है चौथी ध्वनि घंटे के नाद की तरह होती है, जिसको सुनकर प्रेम का मद चढ़ जाता है और सिर घूमने लगता है। पाँचवी ध्वनि ताल से अमृत की वर्षा होती है। छठी मुरली ध्वनि है, जिसका आभास कण्ठ के नीचे रहता है। सातवी ध्वनि ॐ की होती है जिसके सुनने से ब्रह्मरंध्र की शक्ति बढ़ती है। आठवी ध्वनि मृदंग के समान ध्वनि है जिसमें ॐ की ध्वनि सुनायी देती है।

1- आठ अंग हैं योग के, यम नियमासन जानि।
प्राणायाम प्रत्याहार अरु, धारण ध्यान समाधि।।
विश्रामसागर, अध्याय- 47, पृ0 484

नवीं ध्वनि नफीरी के समान होती है, जिससे साधक अदृश्य हो सकता है। दसवीं ध्वनि मेघनाद के समान होती है, उसके पुनः होने पर साधक की हृदय ग्रन्थि खुल जाती है और वह ब्रह्म के समान ही सच्चिदानंद स्वरूप हो जाता है।

मीमांसा-शास्त्र के आचार्य 'जैमिनि' माने गए हैं। उन्होंने धर्म, कर्म के द्वारा स्वर्गादि प्राप्ति का सिद्धान्त बतलाया है। वैशेषिक शास्त्र के आचार्य 'कणाद' बतलाए गए हैं, जिन्होंने मुख्य पदार्थ के ज्ञान और उसके भव और भाव आदि का विवेचन किया है। न्याय शास्त्र के आचार्य गौतम माने गए हैं; जिन्होंने प्रमाण आदि सोलह अर्थों और प्रयोजनों का उल्लेख किया है। योगशास्त्र में महर्षि पतंजलि ने इन्द्रिय निग्रह, चित्तवृत्ति और आत्मसंयम वर्णित क्लेशों के नाश करने का उपाय बतलाया है। सांख्य शास्त्र में तीन प्रकार के दुःखों का कारण और उनसे मुक्ति का उपाय बतलाया है। वेदान्त के आचार्य महर्षि वेद व्यास हैं, जिन्होंने ब्रह्म और जीव की एकता का वर्णन करके मोक्ष मार्ग का प्रदर्शन किया है।

अब 'विचारसागर' में वर्णित सांख्य शास्त्र योग दर्शन एवं वेदान्त-दर्शन का क्रमशः विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है -

{1} सांख्य शास्त्र :

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल हुए जो, कि उपनिषत्कालीन-ऋषि थे सांख्य " द्वैतमूलक दर्शन" है। प्रकृति और पुरुष उसके दो मूल तत्व हैं " सांख्यकारिका" में सत्व, रज और तम की साम्यावस्था को ही "प्रकृति" कहा गया है। प्रकृति जड़ और एक है 'पुरुष' सचेतन और अनेक हैं। प्रकृति-पुरुष का संयोग ही जगत् की उत्पत्ति का कारण है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से सर्व-प्रथम जिस महत्तत्व की उपलब्धि होती है, उसे बुद्धितत्व कहते हैं। बुद्धितत्व से

1- गाँठि कठिन खुलि जाए तबै सौ ब्रह्म ही।
सत् चित् आनंद रूप मिटैं सब कर्म ही।।
विचारसागर अध्याय- 47, पृ0 493

257

अहंकार का शिव, कानों का दिशाएँ, नेत्रों का सूर्य, जिह्वा का वरुण, त्वचा का पवन, नासिका का अश्विनीकुमार, मुख का अग्नि, हाथों का इन्द्र, गुदा का यम, लिंग का प्रजापति और चरणों का देवता 'विष्णु' है। शरीर के साथ ये चौदह-देवता नित्य ही निर्भय होकर वर्तन करते हैं। इस शरीर में चौदह हजार नाड़ियाँ हैं, जिनमें चौबीस मुख्य हैं। नाभि से दस नाड़ियाँ ऊपर दस नीचे, दो दाँयी और दो बाँयी ओर होती हैं। इनमें भी दस नाड़ियाँ मुख्य हैं - इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गन्धारी, हस्ती जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुष, कुहू और शंखिनी' यही दस नाड़ियाँ हैं। इसी प्रकार दस इन्द्रियों और पाँच तत्वों का वर्णन किया है -

इन्द्रिय दस तत्व पाँच है, प्रगट भई यह वानि।
उभय उभय सों प्रीति है, सोऊ कहौं बखानि।।[1]

इसी प्रकार लिंग शरीर के विषय में कवि ने लिखा है कि इसका निर्माण प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, वायु, सत, रज, तम, अन्तःकरण में चलने वाले चारों स्वर तथा पंच मात्राएँ, इन बीस तत्वों से मिलकर यह लिंग शरीर बनता है -

प्राण अपान समान उदाना। व्यान वायु सत रज तम जाना।
अन्तःकरण चारि स्वर चारी। पाँच मातरा सोउ निहारी।।
बीस तत्व्स लिंग शरीरा।।[2]

योग दर्शन -

वस्तुतः देखा जाय तो योग, योग-दर्शन का ही विषय नहीं है। जितने भी आस्तिक दर्शन हैं, उन सब का एक ही उद्देश्य है - भगवान् को पा लेना। यही भगवत्स्वरूप को पाना ही "योग" है इसलिए अन्य दर्शनों का अध्येता विद्वान योग दर्शन के उद्देश्य को सरलता से ग्रहण कर सकता है।

1- विश्रामसागर, अविद्यायन खण्ड, अध्याय- 38, पृ0 385
2- वही, वही, अध्याय- 38 पृ0 388

युज् धातु से करण और भाव में "घञ्" प्रत्यय जोड़ देने से "योग" शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ होता है, समाधि/ समाधि कहते है सम्यक् प्रकार से भगवान् में मिल जाना । यह जीव भगवान् से तब मिल सकता है, जब वह कामना, वासना, आसक्ति और संस्कारों का परित्याग कर दे । इसीलिए कहा गया है कि जीव और ब्रह्म के बीच जो स्वजातीय, विजातीय और स्वगत-आदि भेद हैं, उनका विलोपन करके एक हो जाना ही "योग" है। हमारी वाणी, हमारे कार्य और हमारी सत्ता जब उक्त दृष्टि से अन्तर्न्यस्त हो जाती है, उसी अवस्था को जीव- ब्रह्म का मिलन [योग] कहा जाता है ।

यह योग [मिलन] भी दो प्रकार का है । एक योग तो यह है, जिसमें साधक अपने अस्तित्व को पूर्णतया खो देता है, जैसा कि शंकराचार्य का शुद्धाद्वैत । दूसरा योग है, अपनी आंशिक सत्ता को भी बचाये रखना जैसा कि रामानुज का विशिष्टाद्वैत ।

योग दर्शन के "योग" शब्द का शंकर और रामानुज की अपेक्षा कुछ भिन्न अर्थ है । उसका आशय है 'चित्त वृत्ति का निरोध' करके चित्त को वृत्ति शून्य करना और चित्त वृत्तियों को निरोध के लिए जो भी उपाय किए जा सकते हैं, उनको करना । अतः योग शब्द का भक्तिकाव्य में मुख्य अर्थ हुआ- साधित भगवत् मिलन और काव्यशास्त्र में गौण अर्थ हुआ 'साधित भगवान् से मिलने के लिए समस्त साधन प्रणाली को अपनाना'[1] ।

विश्रामसागर के सैंतालिसवें अध्याय में योग-दर्शन का सविस्तार वर्णन किया है, जिसका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया चुका है, अतः यहाँ पर विश्राम-सागर में योग दर्शन का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है ।

विश्रामसागर के कवि ने योग के आठों अंगों का, तीनों विधियों, नेति, धौति कर्म आदि का वर्णन किया है। तत्पश्चात् आठों सिद्धियाँ क्रमशः अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम, ईशता और वशीकरण का वर्णन किया

1- भारतीय दर्शन पृ० 319 वाचस्पति गैरोला

है फिर भी निधियाँ[1] केवल नामकी परिकल्पित कराए गए हैं, जो क्रमशः महापद्म पद्म, कच्छप, मकर, मुकुन्द, शंख, खर्व नील, कुन्द हैं। इसके बाद दसों ध्वनियों का सविस्तार वर्णन कियागया है। और जिस प्रकार से 'केहरि-नाद' सुनकर कठिन-हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है और वह ब्रह्मके समान ही सत् चित् आनन्द रूप हो जाता है और उसके सब कर्म वैसे ही मिट जाते हैं। उदाहरण सहित समझाते हुए स्वयं कवि के शब्दों में देखिए -

गाँठि कठिन खुलि जाय होय सो ब्रह्म ही।
सत् चित् आनँद रूप मिटै सब कर्म ही ।।
जिमि हिम मिलि उदधि कहावै उदधि ही।
होय वह्नि संग वह्नि दहत भी संग हीं[2] ।।

जैसे हिम, समुद्र से मिलकर समुद्र ही हो जाता है और ईंधन अग्नि के साथ अग्नि हो जाता है, उसी प्रकार योग आदि से कर्म मिट जाते हैं। इस प्रकार योग-दर्शन का विवेचन कवि ने बहुत ही संक्षिप्त किन्तु बड़ा सारगर्भित वर्णन किया है।

<u>वेदान्त दर्शन -</u>

वेदान्त उसे कहते हैं जिसमें उपनिषदों के वाक्य प्रमाण रूप से दिए गए हों या जिसमें जीव का ठीक-ठीक ब्रह्म-विवेचन किया गया हो। इस कारण "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इत्यादि शारीरिक सूत्रों तथा श्री भगवद्गीता इत्यादि आध्यात्मिक शास्त्रों को वेदान्त कहते हैं[3]।

वेदान्त-दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है, उसका उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है -

जनमै मरै न बढ़ै न होई। नित्य अरूप अमल है सोई।
शस्त्र काटि सकै नहिं ताही। पावक जरि सकै नहिं जाहीं ।।

1- महापद्म अरु पद्म पुनि, कच्छप मकर मुकुन्द।
शंख खर्व नीलहुँ कहे, नवहुँ निधि सु कुन्द ।।
भारतीय दर्शन, पृ० 491
2- विश्रामसागर, अध्याय- 47 पृ० 493
3- वेदान्तसार- सदानन्द

आपनि छाँही देखि कै, भूँकत भा हैरान ।।[1]

उसको एक ईश्वर से अनेकता का आभास क्यों होता है ? इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए कवि ने लिखा है -

सारो सृष्टी एक है, नित्य अखण्ड अनूप ।
जीव ग्रन्थि को छाँड़िकै, लखो आपना रूप ।।[2]

अन्य दर्शनों के विषय में कवि ने अति संक्षिप्त में विचार किया है, जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। अधिकांश सांख्य, योग और वेदान्त के विषय में ही कवि की वृत्ति रमी है। अतः स्थान- स्थान पर उसने इन्हीं बातों का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि भक्त कवि एक उच्च कोटि का दार्शनिक है ।

<u>नैतिक विचार</u> -

कवि दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो लोक कल्याण की दृष्टि से काव्य रचना करते हैं और इस हेतु वे उपदेशक का भी कार्य करते हैं। जैसे -कबीर आदि संत तथा तुलसी जैसे प्रबुद्ध कवि । किन्तु कुछ कवि ऐसे भी होते हैं जो शुद्ध कलात्मक दृष्टिकोण रखते हुए उपदेशक नहीं रहते वे अपने शिल्प में ही काव्य की सार्थकता मानते हैं। उनके लोक - हित का दृष्टिकोण मुखर नहीं होता वरन् केवल उसकी व्यञ्जना मात्र करते हैं । इस प्रकार काव्य को कला मानने वाले आलोचकों ने इसी विचार से कला-कला के लिए और कला-जीवन के लिए इन दोनों सिद्धान्तों पर विचार किया है ।

उपदेशक कवियों में नैतिक विचारों का होना स्वाभाविक होता है विशेष रूप से भक्त कवि तो उपदेशक हो ही जाते हैं । विशेषतः वैष्णव कवियों में यह भावना अधिक देखी जाती है । सदाचार का नैतिक जीवन के साथ घनिष्ठ-सम्बन्ध है । अतः विश्रामसागर के कवि ने इस ग्रन्थ में नैतिक विचारों को पर्याप्त

1- विश्रामसागर, हरिनारायण खण्ड, पृ0 391

2- वही, वही, पृ0 392

स्थान दिया है, जो लोक जीवन के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करते हैं। कवि के इन विचारों का सम्बन्ध धर्म से है। जो वैष्णव प्रकृति के अनुसार इस लोक और परलोक में भी कल्याण कारक होते हैं। 'नीति' शब्द संस्कृत की "नी" नये धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय से निर्मित होता है। जिसका अर्थ होता है "ले जाना" या आचरण की ओर अनुसरण करना। फलित रूप में नीति आचरण की पद्धति कहलाती है और 'आचारः प्रथमो धर्मः' इस सिद्धान्त के अनुसार नैतिक-आचरण एक श्रेष्ठ धर्म कहलाता है।

विश्रामसागर के अनेक स्थलों में कवि के नैतिक-विचार बिखरे हुए पड़े हैं, जिनका संक्षिप्त रूप में दिग्दर्शन कराया जा रहा है। नैतिक विचारों के उदाहरण दृष्टव्य हैं -

लोक में यह परम्परा प्रचलित है कि व्यक्ति अपने उपकारी की ही निन्दा करता है, क्योंकि वह नीच है -

जेहिते निज कारज करैं, ताको निंदै नीच ।
यथा कोल पथ पान करि, पुनि करि अस्त कीच ।।[1]

मनोविज्ञान की दृष्टि से यह खलों का स्वभाव ही होता है। तुलसी ने भी खलों की प्रकृति बतलाते हुए कहा है :-

जाते नीच बड़ाई पावा । तेहि निंदा करि ताहि नसावा।। (मानस बाल०)

गुरु वैद्य अरु ज्योतिषी, देव मित्र अरु राज ।
इन्हें भेंट बिन जो मिलै, होय न पूरन काज ।।[2]

यह भी लोक जीवन में सफलता की कुंजी है कि बड़ों के समक्ष विनम्र होकर जाना चाहिए। "प्रणति" से सब काम बनते हैं, यह प्रसादन का उत्तम साधन है।

नाय मान ते मीत, नाय सब करि गुन गाये ।
नाय निमित रवि उदय, नाय विज्ञान आये ।
नाय पती असकाम, नाय धन लोभ बढ़ाये ।

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 2 पृ० 18

2- वही, वही, अध्याय- 4 पृ० 37

जाय गुनी बिन काज, जाय सुख सबहिं नसाय[1] ।।

यहाँ पर भक्त होने के नाते कवि ने लोक-हिताय अनुभव-नीति का प्रकाशन किया है - ज्ञान से मोक्ष, भक्ति से पाप, कुबुद्धि से अंधकार, आलस्य से विद्या, काम से सन्यास, लोभ से धन, दान न करने से गृहस्थ और पर पीड़ा से सर्वनाश की शिक्षा दी है ।

बन्धु अपर परनारि सों, ब्याह न कीजै बैर ।
भोजन दान सुकर्म में नाहिं लगाई देर[2] ।।

किम्वदन्ती है कि रावण ने अपने अन्तिम क्षणों में अपने समस्त जीवन का अनुभव यही बताया था । "शुभस्य शीघ्रम्" यह उक्ति तो प्राचीन ही है ।

जो जन का अनभल लखे, सोइ जाय शठ खीस ।
ज्यों रज ले मारे रविहि, उलटि परे निज शीश[3] ।।

"तुलसी" ने भी- "आतहु मारे कुल मिरि, अक्स को धूरि समान" कहकर किसी का अहित न करने की नीति का उपदेश दिया है ।

दुष्टा भार्या मित्र शठ, उत्तर दायक भृत्य ।
सर्प सहित गृह वास रिपु, समझौ जीवत मृत्यु[4] ।।

यह चाणक्य नीति के प्रभाव से लिखा गया है, जो लोक जीवन की अनुभूति है-

दुष्टाभार्या शठं मित्रं ------ भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पश्च गृहे वासो जीवितं मरणं ध्रुवम् ।।

सजन स्वारथी मदन की, स्वारथ ही तक प्रीति ।
जग मृग जार असार लखि, तजत सुमन निज रीति[5] ।।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड अध्याय- 22 पृ0 199
2- वही, वही, अध्याय-23 पृ0 214
3- वही, वही, अध्याय- 41, पृ0 416
4- वही, वही, अध्याय- 45, पृ0 456
5- वही, वही, अध्याय- 9, पृ0 612

स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती । सुर नर मुनि की याही रीती ।।

[तुलसी] वास्तव में स्वार्थ के लिए ही सभी मित्रता करते हैं, यह लोक-जीवन की अनुभूति है ।

सबल शत्रु नृप नीच गोसाईं । इनसे हठ कीजैं न भलाई ।।[1]

बलवान् शत्रु और नीच राजा, दोनों घातक होते हैं, अतः नीति यही है कि इनसे विरोध नहीं करना चाहिए ।

रारि रोग रिपु अग्नि ऋण, करत तनोधन ध्यान ।
जो पै होवैं लघु तदपि, सजग रहिय सब काल ।।
वणिक वाम वैरी विकल, व्यसनी सुकुल अजान ।
करै कोटि नीतैं तदपि, इन विश्वास न आन ।।[2]

इसे भी कवि ने लोक जीवन के अनुभव से, कुछ तुलसी के आधार पर लिखा है :-

"रिपु, रुज, पावक, पाप प्रभु, इनहिं न गनिये छोट करि;" [मानस]
जो अपने ते बने न नेकी । तदपि अपर की करत न ठेकी ।
जो श्रुति शास्त्र सुधारस चहिए । पढ़त सुनत नित तदपि रहिए ।।[3]

यहाँ पर भी "तुलसी" का प्रभाव है :-"शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय" [मानस]
पूर्वार्द्ध में तो " पर पीड़ा सम नहिं अधमाई, का ही कथित स्पष्ट है ।

कवि बुध गुरु शिशु सुत सुहृद, द्विज मरगी शठ भाय ।
जो यह करैं अनीति कछु, तदपि तरह दइ जाय ।।[4]

वास्तव में "तुलसी " ने मानस में 14 व्यक्तियों से विरोध न करने को कहा है:-

शास्त्री मर्मी प्रभु शठ धनी । वैद्य बन्दी कवि मानस गुनी ।। [मानस]
---------- इनहिं विरोधे नहिं कल्याना ।।

1- विश्रामसागर, चरितरामायण खण्ड, अध्याय- 11, पृ0 641
2- वही, वही, अध्याय- 12, पृ0 651
3- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 12, पृ0 652
4- वही, वही, अध्याय- 12, पृ0 652

दुख सुख मग्न औषधी दाना । सुहृद बिना नहिं करिय बखाना ।[1]

मित्र अत्यन्त विश्वस्त होता है । उक्त नीति भी निम्नलिखित श्लोक की छाया है:-

सुखे दुःखे विवादे, दैवे दाने तथौषधौ ।

बिना मित्रं न वक्तव्यं नीतिरेषा सनातनी ।। (स्फुट)

"विश्रामसागर" में उपर्युक्त नीति विषयक विचारों में प्राचीन नीति ग्रन्थों का आधार ग्रहण किया गया है । कवि की निजी सूझबूझ बहुत कम है । "मानस" में वर्णित नीति का पर्याप्त प्रभाव ग्रहण करके उसमें यत् किंचित् परिवर्तन अवश्य किया है ।

सूक्तियाँ -

सु+ उक्ति से "सूक्ति" शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है - "सुन्दरकथन" । व्याख्या के रूप में "सूक्ति" उदात्तपुरुषों के जीवन अनुभवों के आधार पर निर्मित "सुवाक्य" को सूक्ति कहलाते हैं । उनकी यह विशेषता होती है कि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता सन्निहित रहती है । यहाँ पर नीति वाक्यों के सन्दर्भ में "विश्राम-सागर" के सूक्ति वाक्यों पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा -

सूक्तियाँ -

नैतिक विचारों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में सूक्तियाँ भी हैं, जो लोक-जीवन के अनुभव से जुड़ी हुई है और नैतिक विचारों से भी उनका घनिष्ठ-सम्बन्ध है । अतः कुछ सूक्तियों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

दुरजन के बल झूठ झूठ के बल को छल है ।

तस्कर के बल राति अनिहि धन धाते छल है ।।

बाल के बल मौन मानिनी के बल रोवन ।

क्रोध के बल बल वचन मदन के बाम विलोचन ।।

विप्र के श्रुति कवि बल बरण ज्ञान के पर गर कर लहौ ।।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 3 पृ0 694

यह भी लोक जीवन का ही अनुभव है । संस्कृत में इसी आशय की एक सूक्ति प्रचलित है - "यो नवेत्ति गुणान् यस्य स तस्य परिनिन्दकः ।" इसका कारण अज्ञान ही है ।

तिनके संग विवाद करि, कहौ मिलै फल कौन ।
लायक ते कीन्हौं चही, बैर प्रीति अरु मौन ।।[1]

लोक जीवन में यह उक्ति इस प्रकार प्रसिद्ध है :-

"लायक ही सौं कीजिये, ब्याह बैर और प्रीति"

इसका कारण यह है कि भला व्यक्ति कभी बुराई नहीं करता, चाहे बैर भी क्यों न हो जाय ।

मूरख ते न कही हरि गाथा । गिरि खोदे परे पाथर हाथा ।।[2]

मूर्ख व्यक्ति उपदेश का पात्र नहीं होता । यथा :-

"उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये"

यहाँ पर कवि ने पहाड़ पर पत्थर खोदने का दृष्टान्त दिया है, वह भी परम्परित है[3] ।

प्रभुता की कछु लाग ना होई । बैरी संग गई मति खोई ।
कैसो चतुर होय किन कोऊ । नीच संग करि बिगरत सोऊ ।।[4]

कुसंगति का परिणाम बुरा ही होता है :- को न कुसंगति पाइ नसाई (मानस)

जो सुख है हमरे ब्रज माहीं । सो सुख तीन लोक में नाहीं ।
तन धन जाय जाय अरु प्राना । तबहुँ है [illegible] नहिं रहना ।।[5]

"महाभारत में भी सुख- दुःख को इसी प्रकार परिभाषित किया गया है -

सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखम् ।

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 10, पृ0 640

2- वही, वही, अध्याय- 10, पृ0 641

3- पर्वत पर खोदे कुआँ, कैसे निकसे तोय । (लौकिक सूक्ति)

4- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9, पृ0 618

5- वही, वही, अध्याय- 8 ,पृ0 601

एतद् विद्यात्समासेन लक्षणं सुख दुःखयोः ।।

इस प्रकार " विश्रामसागर" की सूक्तियों में भी संस्कृत ग्रन्थों और मानस का पर्याप्त प्रभाव मिलता है । अध्ययन प्रसूत ज्ञान किसी भी कवि की कृति में आ ही जाता है वही बात इस कवि पर भी लागू होती है । वस्तुतः "नैतिक-जीवन" के प्रति कवि की गहरी आस्था प्रकट होती है , जिसकी अभिव्यक्ति बीच- बीच में ग्रन्थ के अनेक भागों में देखने को मिलती है ।

सत्संग एवं सत्संगति का महत्व -

सत्संग अच्छी संगति को कहते हैं । दूसरे शब्दों में, सत्संग उन अच्छे और सदाचरण वाले मनुष्यों के अच्छे साथ को कहते हैं, जिनके संग हम उठते बैठते और बातचीत करते हैं । सत्संग अच्छे मनुष्यों की संगति को कहते है, इसलिए सत्संग का जीवन पर बड़ा ही कल्याणकारी प्रभाव पड़ता है । सत्संग एक ऐसा अपूर्व साधन है, जिससे जीवन और स्वर्ग के समान सुन्दर और कान्तिमान बन जाता है।अतः बड़े- बड़े विचारवान् और ज्ञानी मनुष्य सब कुछ छोड़कर सत्संग की ही खोज करते हैं ।

एक बार भगवान विष्णु ने पाताल के राजा बलि से प्रश्न किया- "तुम सज्जनों के साथ नरक में जाना चाहते हो या दुर्जनों के साथ स्वर्ग में" इस पर महाविवेकी राजा बलि ने जो उत्तर दिया वह बड़ा ही विस्मयकारी है । राजा बलि ने कहा, मैं सज्जनों के साथ नरक में ही रहना पसन्द करूँगा "जब भगवान विष्णु ने इसका कारण पूछा, तो महाज्ञानी बलि ने कहा - "वास्तविक स्वर्ग वही है, जहाँ सज्जनों का निवास होता है, इसके विपरीत दुष्टात्माओं के निवास को तो नरक ही कहेंगे, चाहे वह स्वर्ग ही क्यों न हो । "

1- महाभारत - वेदव्यास .

पराधीनता दुखमय सुखमय मैं स्वाधीन ।
सुखी रहत खग बन विषै , पक्षि पींजरे दीन ।।

राजा बलि के उपर्युक्त कथन का समर्थन निम्नांकित श्लोक में भी विद्यमान है-

सत्संग: परमं तीर्थं सत्संग: परमं पदम् ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्संगं सततं कुरु ।।

अर्थात् सत्संग ही परम तीर्थ है । सत्संग ही परम पद अर्थात् मुक्ति है, अतः सबको छोड़कर सत्संग का ही सेवन करो ।

फिर भला ऐसे सत्संग के सुखद प्रभाव के सम्बन्ध में क्या कहना ? जिस प्रकार मुरझायी हुई लतायें, मुरझाए हुए पेड़ पौधे वर्षा की फुहार को पाते ही हरे - भरे हो जाते हैं, उसी प्रकार सत्संग के प्रभाव से जीवन खिल उठता है ।[1]

विश्रामसागर में कवि ने सत्संग और सत्संगति की महिमा का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है । विश्रामसागर के वशिष्ठायन खण्ड में कवि ने दो अध्याय पैंतीसवें और छत्तीसवें अध्याय में सत्संग एवं सत्संगति के माहात्म्य का वर्णन किया है जो बड़ा ही साक्षात बन पड़ा है -

श्री शौनक जी के पूछने पर सूत जी ने हर्षित होकर सत्संगति की महिमा का वर्णन किया यहाँ कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं -

तात स्वर्ग सुख मोक्षु घनेरा । धरे तुला पर कोटि घनेरा ।।
सत्संगति लव भरि कर सोई । तेहि सम सुख दूसर नहिं होई ।।[2]

"मानस" में तुलसीय, तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग ।
तुल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ।।

इस प्रकार कवि के मानस में "मानस" की छाप स्पष्ट है ।

सत्संगति भवनिधि महँ नावा । चढ़े सो पार होय सतिभावा ।
साधु संगति शीतल होई । जन्म मरण जग में जाय धोई ।।[3]

अस्तु सत्संगति का जीवन में बड़ा ही महत्व है । कहा भी गया है :-

सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति (उत्तररा०च०, नाटक) भवभूति
अर्थात सत्संगति मृत्यु हो जाने पर भी तार देती है ।

- -

1- आधुनिक हिन्दी निबन्ध- श्री ज्योतिष हृदय पृ० 231
2- विश्रामसागर, वशिष्ठायन खण्ड, अध्याय- 35 पृ० 349
3- वही, वही, अध्याय - 35 पृ० 349

साधु संगति पातक जावे । ज्यों पावकते शीत नशावे ।

सतसंगति गति पलटे ऐसे । पारसते लोहा हरि जैसे ।।[1]

जीवन में नैतिक शिक्षा एक वरदान है, उसमें भी सत्संगति मनुष्य के लिए जीने की कला सिखाती है, वह जीवन का निर्वाह करती है । अच्छे मनुष्यों का संग जीवन को सत्य पथ पर अग्रसर करता है । उसके अनेक लाभों का उल्लेख मिलता है :-

सत्य बढ़ावन मोदप्रद,कुमति हरण हेतु ।।[2]

"मानस" में "गुन प्रकटे अवगुनहिं दुरावा" कहकर सत्संगति को और भी विशिष्ट-उपलब्धि के रूप में मान्यता दी गई है । उन्तालिसवें अध्याय में कवि ने सत्संग के महत्व को बतलाते हुए एक दृष्टान्त दिया है - एक बार वशिष्ठ जी विश्वामित्र के घर आए तो विश्वामित्र ने उनका यथा सम्मान किया तथा अन्त में भेंट स्वरूप लाख वर्ष के तप का आधा फल ऋषिराज को अर्पण कर दिया । कुछ दिन बाद विश्वामित्र वशिष्ठ के घर आये तो उन्होंने (वशिष्ठ जी ने) भेंट स्वरूप दो घड़ी के सत्संग का फल अर्पण किया । और अन्त में विष्णु जी ने दो घड़ी के सत्संग को अधिक श्रेष्ठ माना ।

नलिनी दल गत जल लव जैसे । नर जीवन है चंचल तैसे ।

जबही सज्जन संगति करई । तेहि नौका चढ़ि भवनिधि तरई ।

बहु युग बहु श्रुति कह सुख सोई । बिन सतसंगति तरे न कोई ।।[3]

संसार में वह सबसे बड़ा सौभाग्य शाली है और सबसे बड़ा ऐश्वर्यवान है, जिसे अच्छे मनुष्यों और अच्छे ग्रन्थों का सान्निध्य प्राप्त होता रहता है ।

निष्कर्ष रूप में कवि एक उच्च कोटि का भक्त एवं दार्शनिक था। यद्यपि इस ग्रन्थ में उसने विभिन्न दर्शनों का परिचय दिया है, किन्तु वेदान्त-दर्शन का प्रभाव व्यापक रूप में देखने को मिलता है । भक्ति दर्शन तो आद्योपान्त समस्त-ग्रन्थ में विद्यमान है । नैतिकता और सदाचार उसके ही अंग हैं । सत्संग की

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 35, पृ० 349

2- वही, वही, अध्याय- 39, पृ० 393

3- वही, वही, अध्याय- 39, पृ० 400

महिमा साधु पुरुषों के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज के लिए होती है, अतः इन सभी विषयों पर ग्रन्थकार की दृष्टि गयी है। जिससे ग्रन्थ में गम्भीरता और उपयोगिता स्वतः उपस्थित हो गयी है। जीवन किस प्रकार जीना चाहिए ? जीवन का क्या लक्ष्य है ? इन दोनों विषयों की प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करके कवि ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

अध्याय - ९

सियारामशरण में भक्ति भावना एवं प्रकृति चित्रण एवं अनुशीलन

भक्ति -

चित्तवृत्ति का निरन्तर अविच्छिन्न रूप से अपने इष्टदेव श्री भगवान में लगे रहना अथवा भगवान् में परम् अनुराग या निष्काम अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। भक्ति के अनेक साधन हैं, अनेकों स्तर हैं और अनेकों विभाग हैं। श्रुतियों ने बड़ी सुन्दरता के साथ भक्ति की व्याख्या की है। पुराण, महाभारत, रामायणादि, इतिहास और तन्त्र-शास्त्र भक्ति से भरे हैं। ईसाई, मुसलमान और अन्यान्य मतावलम्बी जातियों में भी भक्ति की बड़ी सुन्दर और मधुर व्याख्या और साधना है। हमारे भारतीय शैव, शाक्त और वैष्णव - सम्प्रदाय तो भक्ति- साधना की ही जय -घोषणा करते हैं। वस्तुतः भगवान जैसे भक्ति से वश में होते हैं, वैसे और किसी भी साधन से नहीं होते। भक्ति की तुलना भक्ति से ही हो सकती है। भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु भक्ति के मूर्तिमान् दिव्य स्वरूप हैं[1]।

"भक्ति" शब्द संस्कृत की "भज्" सेवायाम् धातु से "क्तिन्" प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। भक्ति का क्या अर्थ है ? इसके विषय में एक विद्वान् ने कहा है - "भक्ति का अर्थ है - भगवान की उपासना, भगवान् की सेवा और भगवान् की शरणागति" ----------------भक्ति में कर्म और ज्ञान दोनों का समन्वय है, अतः सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्य भक्ति में निहित है। कर्म-योग और ज्ञान-योग दोनों भक्ति योग के सहकारी हैं/भक्ति योग का आश्रय पाकर कर्म और ज्ञान मोक्ष पद के सहायक और प्रकाशक बन जाते हैं। जहाँ कर्म मार्ग और ज्ञान मार्ग एक दूसरे का स्पर्श करते हैं, + वहीं भक्ति की मधुर रश्मि से ओत-प्रोत होकर एक दूसरे का पूरक बन जाता है। उपासना में कर्म योग और ज्ञान योग को भी स्थान है पर इसमें भक्ति-योग की प्रधानता है। बिना भक्ति का सहारा लिए कर्म और

1- कल्याण --साधना अंक- भक्ति का स्वरूप, पृ0 532

ज्ञान दोनों सफलता निहित है ।

भक्ति योग का आधार 'भगवद्-कृपा' है। ज्ञान योग की सफलता भी भक्ति योग पर ही निर्भर करती है। भक्ति के दो रूप हैं - उपासना और कैंकर्य। सदैव भगवान का चिन्तन, स्मरण और ध्यान करना भगवान में अखण्ड विश्वास, अनवरत उनकी दिव्य स्मृति का ही नाम 'उपासना' है । उपासना में भगवद्-प्रेम की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। भक्ति का दूसरा रूप कैंकर्य है जीव सदैव भगवान का सेवक रहे, चाहे माधुर्य भाव से चाहे दास्य-भाव से । कैंकर्य के अन्तर्गत भगवान के पाँच रूप हैं - पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार। अन्तःकरण परब्रह्म के आलोक से आलोकित हो जाय, हृदय परमात्मा के चरणों में एकाकार हो जाय । शाश्वत प्रेम और अनवरत ध्यान के कारण भगवान् प्रत्यक्ष के समान हो जायँ तब परम ब्रह्म का कैंकर्य सम्पन्न होता है । भक्ति का ही एक सुगम रूप प्रपत्ति है। भगवान से मिलने की व्यग्रता प्रपत्ति का प्रधान अंग है 'शरणागति' और 'आत्मसमर्पण' यह प्रपत्ति के दो भेद हैं ।

'श्रीमद्भागवत गीता' में समस्त शुभ गुणों के स्रोत परमात्मा के प्रति अनवरत सानुराग-ध्यान को भक्ति कहा गया है[1] । नारदीय सूत्र में परमात्मा के प्रति निरन्तर प्रेम और ध्यान को ही भक्ति का नाम दिया गया है[2] वास्तव में भक्ति ही ज्ञान का परिवर्तित रूप है[3] । वेदान्त देशिक ने भक्ति के चार प्रमुख अंग माने हैं - विवेक, निर्वेद, विरक्ति एवं भीति । विवेक से प्रतिकूल प्रवृत्तियाँ दूर रहती हैं । निर्वेद से पाप उत्पन्न करने वाले निकृष्ट कर्म दूर रहते हैं। विरक्ति साधक को बन्धक प्रतिबन्धक और बुरे कर्मों के आचरण से तथा विषयासक्ति से विरत रहने की क्षमता प्रदान करते हैं और भयंकर परिस्थितियों से रक्षा के लिए भीति भी आवश्यक है । भक्ति के तीन रूप माने गए हैं - परभक्ति, परज्ञान, परमभक्ति या प्रेमाभक्ति । आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति

1- कल्याण उपासना - 9 पृष्ठ 34

2- नारदसूत्र - 2 पृष्ठ 4

3- न्याय सिद्धाञ्जन पृ० 216

कराने वाली पराभक्ति है।इससे मुक्ति प्राप्त होती है, किन्तु प्रेमा भक्ति भागवत प्रेम का उच्चतम स्तर है।श्रीमद्भागवतगीता में नवधा भक्ति इस प्रकार बतलायी गयी हैं - 1- श्रवण, 2- कीर्तन, 3- स्मरण, 4- पादसेवन, 5- अर्चन, 6- वन्दन, 7- दास्य, 8- सख्य 9- आत्मनिवेदन[1] ।

'देवी भागवत' में भी भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बतलाया गया है[2] गीता में भी भगवान ने कहा है कि अनन्य भक्ति से ही मैं वास्तविक रूप में देखा जा सकता हूँ, जाना जा सकता हूँ, एवं मुझमें प्रविष्ट हो सकता है।[3] 'नारद-भक्ति-सूत्र' में इसी के उत्कृष्ट की पराभक्ति को 'अमृतरूपा' कहा गया है[4] 'शाण्डिल्य-सूत्र' में ईश्वर की परानुरक्ति को ही भक्ति कहा गया है[5] श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि - भगवान वासुदेव के प्रति किया गया भक्ति योग शीघ्र ही ज्ञान और वैराग्य को उत्पन्न करता है।[6] इस प्रकार इस रूप में भक्ति के स्वरूप को संक्षेप में निरूपित किया गया है ।

रामभक्ति -

ऐतिहासिक दृष्टि से राम भक्ति का उद्भव कब से हुआ ? इसका संकेत इस प्रकार मिलता है - दक्षिण की "अलवार" शाखा के आचार्य शठकोप की एक रचना में इस प्रकार उल्लेख मिलता है " दशरथस्य सुतं तम् विना नान्यद् शरणवानस्मि" इस उल्लेख से यह बात सिद्ध होती है कि पूर्ववर्ती शताब्दी में दशरथ पुत्र राम की भक्ति पर्याप्त मात्रा में प्रचलित थी।इसके पूर्व लिखित रूप में राम भक्ति का अस्तित्व नहीं मिल रहा है।जहाँ तक पुराणों का प्रश्न है, जिनमें राम भक्ति का उल्लेख मिलता है,वेह अधिकांश परवर्ती हैं।रामायण

1- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
   अर्चनम् वन्दनम् दास्यम् सख्यमात्मनिवेदनम् ।। 7-5-23, श्रीमद्भागवत्
2- भाग्यवतो मे विख्याता मोक्ष प्राप्तौ नगाधिप ।
   कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्ति योगश्च ।। 7-37, 31 देवी भागवत्
3- गीता - 11/54
4- गीता- 1-2-3
5- शाण्डिल्य सूत्र - 1-2
6- शाण्डिल्य सूत्र- 1-2-7

और महाभारत में राम एक आदर्श महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हैं, किन्तु उनकी भक्ति साम्प्रदायिक लोकरूप में प्रचलित होने का संकेत नहीं मिलता। भक्ति के इतिहास का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि गुप्त काल में भक्ति का पर्याप्त प्रचार था। भक्ति के विषय में श्रीमद्भागवत में उसके द्रविड़ देश में उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है[1] साम्प्रदायिक उपासना के क्षेत्र में स्वामी रामानन्दाचार्य लक्ष्मीनारायण के उपासक थे, किन्तु चौदहवीं शताब्दी में स्वामी रामानुजाचार्य ने वैष्णव मत में लक्ष्मीनारायण के स्थान पर सीताराम की उपासना प्रचलित की, जिसमें दास्य भक्ति का प्राधान्य था। किन्तु तुलसी के समय ही स्वामी 'अग्रदास' ने राम भक्ति की रसिक शाखा का आरम्भ किया, जो कृष्ण-भक्ति की रसिकता के तुलना में उत्तरोत्तर शृंगारी प्रभाव से व्याप्त होती गयी और राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप शृंगारी परिवेश में बदल गया। रीतिकाल में सैकड़ों कवि राम भक्ति की रसिक शाखा में दीक्षित रहे हैं किन्तु ये साहित्य में कोई विशेष उपलब्धि नहीं दे सके। रीतिकाल के पश्चात् राम-भक्ति में आधुनिक गाँधी वादी विचार-धारा का समावेश हुआ और हिन्दी के कवियों ने उसे पुनः आदर्श मानवीय-रूप में प्रतिष्ठा दी। हरिऔध के वैदेही-वनवास, मैथिली शरण गुप्त के 'साकेत', गुरुदेव प्रसाद मिश्र के 'साकेत-संत' में उक्त गाँधी वादी विचार धारा देखी जा सकती है।

भक्ति 'वैधी' और रागात्मक दो प्रकार की होती है। राम भक्ति में यद्यपि दोनों प्रकार की भक्तियाँ प्रचलित रही हैं, किन्तु इनमें वैधी-भक्ति को ही अधिक महत्व दिया गया है, क्यों कि राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की उपासना ही मुख्य है और रागानुराग की उपासना को परवर्ती आचार्यों ने और स्वामी अग्रदास जी ने भी इस रागानुराग भक्ति को रसिक-सम्प्रदाय के रूप में चलाया है। किन्तु रामानुजाचार्य ने जिस वैधी-भक्ति का श्रीगणेश किया था, वही मुख्य है और गोस्वामी तुलसीदास जी उसी के उपासक हैं। विश्रामसागर में राम और कृष्ण दोनों को महत्व दिया गया है किन्तु कवि राम भक्ति से अधिक प्रभावित

1- उत्पन्नः द्राविडे साहं वृद्धिं कर्नाटके गता: -श्रीमद्भागवत का भूमिका भाग

रहा है।इसलिए उसने स्थान - स्थान पर राम भक्ति का गुणगान किया है। उसके मन में राम नाम की महत्ता विशेष रही है।जैसे -

तेहिते मुनि सब दाया कीजै । राम मंत्र मोका प्रभु दीजै ।।[1]

उसकी मान्यता है कि राम चरणों में स्नेह करने से सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते है -

राम नाम जल जासु उर, अखिल मंत्र के बीज ।
प्रलय अनल विष मृत्यु, सो नर होउ उतीर्ण ।।[2]

कवि ने सब मंत्रों का बीज राम नाम को माना है । जिसके हृदय में इस मंत्र का निवास है, वह प्राणी प्रलय, अग्नि, विष तथा मृत्यु से ऊपर उठ जाता है ।

विश्रामसागर में राम भक्ति का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है -

नाम और रूप महात्म्य -

जिस प्रकार रामचरित मानस में राम नाम और रूप का महात्म्य वर्णित है,उसी प्रकार विश्रामसागर में भी राम नाम और राम के रूप के महात्म्य को तुलनात्मक दृष्टि से निरूपित किया गया है । राम के शरीर की शोभा करोड़ों कामदेव की शोभा से बढ़कर है।कौन ऐसा व्यक्ति है जो उसे देखकर मोहित न हो जाए।जनकपुरी के स्त्री - पुरुष सभी राम के रूप को देखकर मोहित हो गए थे और सभी राजा भी विवेक रहित मुग्ध हो गए थे । राम के रूप को देखते ही परशुराम का क्रोध शान्त हो गया था।वन में मृग, पक्षी, कोल, किरात आदि सभी राम के रूप में रम कर उनकी सेवा करने लगे।शूर्पणखा भी राम के रूप को देखकर काम के वशीभूत हो गयी।खर और दूषण सहित चौदह सहस्त्र राक्षस तपस्वी-

---

1- अध्यात्मरामायन काण्ड, पृ0 34 विश्रामसागर ।

2- वही, पृ0 12, विश्रामसागर ।

राम के स्वरूप को देखकर मोहित हो गए । यहाँ तक कि दण्डक वन के तपस्वी भी राम के रूप में मोहित हुए। बालि भी राम के रूप में इतना प्रभावित हुआ कि उसने अजरामर शरीर लेना भी स्वीकार नहीं किया । राम- रावण युद्ध में सभी राक्षस राम के रूप में लीन हो गए । अवध के नर - नारी राम में ही रम गए । इस प्रकार राम में रमने और रमाने की अद्भुत शक्ति है। वास्तव में नाम और रूप दोनों एक हैं, किन्तु फिरभी नाम का प्रभाव अधिक है यथा -

रूप निकसत नहिं नाम बिन, नाम रूप बिन नाहि ।
तातें दोऊ नित्य हैं, अमल अनूप अनादि ।।[1]

'राम' शब्द की व्युत्पत्ति करता हुआ कवि कहता है कि राम का शरीर "र" है और "अ" उनका हृदय है "म" दोनों चरण हैं जिनमें "र" वैराग्य और वैरूप्य है यथा -

राम-बदन रा जानिए, आ हिय उर पहिचानि ।
मा मकार दोउ चरण हैं, रेफ तेज वैरागि ।।[2]

किन्तु राम नाम में करोड़ों सूर्य से अधिक प्रकाश है, जो चराचर में प्रकाशमान है। उसी को परब्रह्म कहते हैं । राम नाम के महत्त्व को कवि ने इस प्रकार बतलाया है -

कोटि विष्णु अज ईशा, कोटि शारदा शेष शशि ।
सुरपति कोटि फणीशा, सम प्रभाव जामें नहिं ।।
तीरथ कोटि अनन्ता, नाम अधिक पावनकरन ।
हरणा पाप श्रुति सन्ता, कहत तदपि उपमा नहिं ।।[3]

इस प्रकार कवि ने राम नाम को अनुपम बतलाया है। कवि का कहना है कि राम नाम के अंश -2 से तीन सिद्धियाँ हुई सोहम् , बीज, ओंकार ।

- -

1- विश्रामसागर, अध्याय- 6 पृ० 91

2- वही, अध्याय- 6 पृ० 91

3- वही, अध्याय- 6 पृ० 92

जिनका अर्थ निम्न विचार प्रस्तुत है - राम नाम से ही "सोऽहम्" बीज की उत्पत्ति हुई,जो मुक्ति को देने वाली है । राम नाम से ही परमब्रह्म जीव, महानाद स्वर, शून्य और दिव्य प्रकाश पुंज माया की उत्पत्ति हुई । रेफ से परब्रह्म हुआ, ह्रस्व अकार से जीव हुआ। राम शब्द के मध्य के आकार से नाद हुआ और दीर्घ "र" से स्वर हुआ । अर्ध मकार से अनुस्वार हुआ और अनुस्वार से प्रणव, प्रणव से तीन गुण, सत् रज, तम् हुए । इन तीनों गुणों से ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न हुए और इन्हीं तीनों देवों से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई । राम शब्द के र से नारायण आकार में महाविष्णु और 'म' से महादेव हुए । इस प्रकार राम नाम के भीतर ब्रह्म जीव और तीनों लोक हैं जैसे पृथ्वी में बीज, आकाश में नक्षत्र और नगर में घरों के समूह । राम नाम का ध्यान करते ही समस्त सृष्टि का ध्यान हो जाता है इसके अतिरिक्त रेफ महायोग है और रकार महा वैराग्य है या बड़वानल आदि अग्नि का बीज है। परमज्ञान और विज्ञान जिसको कहते हैं उसका मूल राम शब्द का अकार है यही सूर्य का बीज है जिसके स्मरण से ज्ञान का प्रकाश हो जाता है भक्ति का स्वरूप मकार है जो दैहिक, दैविक और भौतिक तापों को नष्ट करने वाला चन्द्रमा का बीज है रकार अकार और मकार से ही सूर्य, चन्द्र आदि सभी हैं इसी से राम शब्द की रम क्रीडानात् धातु का अर्थ स्पष्ट होता है । रकार सत् है, अकार चित् है और मकार आनंद स्वरूप है इस प्रकार राम सच्चिदानंद स्वरूप है ।[1] आगे बढ़कर राम और तत्वमसि का अर्थ बतलाता हुआ कवि कहता है - राम शब्द का रेफ तत्पद अर्थात् ब्रह्म है अकार त्वंपद अर्थात जीव है अर्ध मकार असि पद अर्थात् माया है और तत्वमसि वेदों का सार है ।

इसके पश्चात् इसी की व्याख्या करता हुआ कवि कहता है कि अर्ध मकार क्षय होने वाली माया है, अकार अक्षर ब्रह्म है, जिसका कभी विनाश नहीं होता । रेफ निरक्षर ब्रह्म है जो निरंकार रूप से सब में व्याप्त है ।

1- तत्पद ब्रह्म जो रेफ कहि, त्वम्पद जीव अकार ।
अर्ध मकार माया असि, तत्वमसी श्रुतिसार।। वि० पृ० 54

इसी प्रकार समस्त प्राकृतिक रचना शक्तियों को उत्पन्न करता है।इसी को रमणीय कहते हैं। यद्यपि राम के मुख्य नाम विष्णु, नारायण, कृष्ण, वासुदेव, हरि ब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा विश्वम्भर, निष्कर्म, पापविनाशक, केशव, विष्णुरूप, भव भयापहा है। इनके अतिरिक्त अन्य नाम भी हैं, किन्तु राम नाम सर्वाधिक प्रकाशमान है - जैसे नक्षत्रों में चन्द्र और ग्रहों में सूर्य यथा-

जलन माहिं जिमि गंगा तरन मैं जिमि तरसामा ।
कर्मन मैं हरिकर्म ज्ञान मैं ब्रह्मज्ञाना ।
पुरिन माहिं जिमि अवध मंगल महँ ओंकारा ।
सूरन मैं मैं यथा खगन मैं जिमि आकाशा ।।
पुष्कर तीरथ माहिं मणिन मैं कौस्तुभ जैसे ।
सब नामन मैं राम नाम तुम जानो तैसे ।।[1]

राम नाम की महिमा बतलाते हुए कवि कहता है कि -

राम नाम ते होत जो, सो काहू ते नाहिं ।
यह निश्चय करि देखियो, सकल पुरानन माहिं ।।

: : :

सप्त कोटि जो मंत्र हैं, चित्त भ्रमावन काज ।
राम - नाम परमंत्र है, सकल मंत्र को राज ।।[2]

इस प्रकार कवि ने राम नाम जपने वाले के लिए मुक्ति और भुक्ति दोनों की प्राप्ति का उल्लेख किया है यथा -

राम- नाम के जपें सदाहीं । भुक्ति मुक्ति तेहि संशय नाहीं ।।

रकार का उच्चारण ताल से होता है और मकार का वासस्थान त्रिकुटी है, मकार का वास जिह्वा पर होता है अपने स्थानों से इनका उच्चारण होता है योगी और भक्तजन रकार का ध्यान करते हैं और मकार ज्ञानियों

1- विश्रामसागर, पृ० 55, 56

2- वही, पृ० 57.

के मन को भाता है आगे चलकर कवि ने राम नाम जपने की विधि बतलायी है। गुरु से राम नाम की दीक्षा लेकर विश्वास के साथ वासना का त्याग कर जप करना चाहिए।कामादि दोषों को त्यागकर कर शरीर को शुद्ध कर ले इन्द्रिय व मन को जीत कर एकाग्र चित्त से निरन्तर राम नाम जपने से भव-बन्धन कट जाता है और प्राणी राम का ही रूप हो जाता है। कलियुग में राम-नाम के महत्व को विशेष रूप से बतलाया है।यथा -

नाम प्रताप सकल युग जागू। कलि विशेष विधि गीता भाखू।।[1]

नैतात्विक रूप से राम भजन को कवि ने मुक्ति का सर्वोत्कृष्ट उपाय बतलाया है यथा -

मथै अनल शशि व्योम जल, तम रवि देह मिटाय।
बिन हरि भजन न भव तरै, करै जो कोटि उपाय।।[2]

कवि ने इस सिद्धान्त कथन में तुलसी के मानस का निम्नलिखित-सिद्धान्त तुलनीय है -

वारि मथे न होई घृत, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरै, यह सिद्धान्त अपेल।।[3]

इस प्रकार कवि ने राम के रूप की तुलना में नाम के महत्व को अत्यधिक बतलाया है इसमें भी रामचरित मानस के बालकाण्ड में वर्णित नाम और रूप विषय सामग्री से प्रेरणा ली गयी प्रतीत होती है।

<u>भक्ति प्रकार अन्य देवों की भक्ति -</u>

संसार में मनुष्य जन्म का प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है। वह पूर्व सञ्चित-अग्र पुण्यकर्मों द्वारा सौभाग्य से ही प्राप्त हो सकता है। भवसागर से पार उतरने के पारमार्थिक साधन केवल मनुष्य - जन्म पर ही निर्भर हैं, स्वर्ग भी

- -

1- विश्रामसागर, पृ० 60

2- वही, पृ० 61

3- रामचरित मानस, बालकाण्ड.

भगवान ने कहा है -

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं,

प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।

मयानुकूलेन नभस्वतेरितं,

पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा[1] ॥

"निरतिशय श्रेयःसाधन के उपयुक्त और अत्यन्त दुर्लभ दृढ़ नौकारूप मनुष्य-शरीर पाकर, जिसका कर्णधार सद्गुरु है और जो अनुकूल पवनरूप मुझसे संचालित है, फिर भी जो पुरुष भवसागर के पार उतरने का प्रयत्न नहीं करता है, वह आत्मघाती है । अतएव मनुष्य जन्म पाकर संसार सागर से उत्तीर्ण होने के लिए पारमार्थिक साधनों का अनुष्ठान परमावश्यक है ।

पारमार्थिक साधनों के मार्ग सांख्य, योग और ज्ञान आदि विभिन्न होने पर भी इनमें से किसी एक का भी पूर्ण रूप से यथावत् साधन करने से साध्य पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु ये सभी साधन अत्यन्त गहन होने के कारण दुःसाध्य हैं । इनके सिवा भगवद् भक्ति एक ऐसा साधन है जिसकी साधना अन्य साधनों की अपेक्षा बहुत सुगमता से हो सकती है[2]। इसी प्रकार "प्रेम-रूपा भक्ति के लक्षण और उदाहरण" अध्याय के अन्तर्गत देवर्षि नारद ने भी "भक्ति सूत्र" में अप्रत्यक्ष रूप से नवधा भक्ति का ही वर्णन किया है । 'विश्राम-सागर' में इतिहासायन खण्ड में कवि ने भक्ति के प्रकारों के अन्तर्गत नवधा भक्ति का उल्लेख किया है यथा -

श्रवण कीरतन अ स्मरण, पदसेवन अरचन्य ।

बन्दन दास्य सखात्मनय, ऐदन नव ये गन्य[3] ॥

- -

1- श्रीमद्भागवत 11/20/17

2- नवधा भक्ति साधना अंक कल्याण पृ0 522

3- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 46, पृ0 468

विभिन्न आचार्यों ने भक्ति का स्वरूप भिन्न - भिन्न रूप से बतलाया है -

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ।। 16 ।।

पराशरनन्दन श्रीव्यास जी के मतानुसार भगवान की पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है ।

अपने तन, मन, धन को भगवान की पूजन सामग्री समझना और परम श्रद्धापूर्वक यथाविधि तीनों के द्वारा भगवान की प्रतिमा की अथवा विश्व-रूप भगवान की पूजा करनी चाहिए । भगवद् पूजा में मन लगने से संसार के बन्धन कारक विषयों में मन अपने- आप ही हट जाता है । बाह्य और मानस दोनों ही प्रकार से भगवान की पूजा होनी चाहिए । भगवद् की पूजा से भगवान का परमपद प्राप्त होता है -

श्रीविष्णोरर्चनं ये तु प्रकुर्वन्ति नरा भुवि ।
ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम् ।।

(विष्णुरहस्य)

कथादिष्विति गर्गः ।। 17 ।।

श्री गर्गाचार्य के मत से भगवान की कथा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है ।

श्री भगवान की दिव्य लीला, महिमा उनके गुण और नामों के कीर्तन तथा श्रवण में मन लगाना निःसन्देह भक्ति का प्रधान लक्षण है । संसार में अधिकांश मनुष्य तो ऐसे है जिन्हें भगवान और भगवान की कथा से कोई मतलब ही नहीं है । दिन- रात विषय - चर्चा में ही उनका जीवन बीतता है न तो वे कभी भगवान का गुणगान करते हैं और न उन्हें भगवत्चर्चा सुहाती है । "श्रवन न रामकथा अनुरागी ।" इस अवस्था में जिन मनुष्यों का मन भगवान के गुणानुवाद सुनने और कहने में लगा रहता है वे अवश्य ही भक्त हैं । इसप्रकार आचार्य श्री नारदजी ने स्वयं महर्षि वेदव्यास से कहा है -

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा।

स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।

अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो ।

यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ।।

(श्रीमद्भागवद् 1/5/22)

"विद्वानों ने यही निरूपित किया है कि भगवान् का गुणानुवाद कीर्तन ही तप, वेदाध्ययन, भलीभाँति किए हुए यज्ञ, मन्त्र, ज्ञान और दान आदि सब का अविनाशी फल है ।" श्रीरामचरितमानस में कहा है -

रामकथा सुंदर करतारी । कलिमलविहग उड़ावनिहारी।

भवसागर चह पार जो पावा । रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा ।।

अतएव श्रीहरिकथा में यथार्थ अनुराग होना भक्ति है और इस भक्ति से भगवान् की प्राप्ति निश्चय ही हो जाती है ।

आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ।। 18 ।।

शाण्डिल्य ऋषि के मत में आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना ही भक्ति है ।

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।

स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ।।

आत्मरूप से प्रत्येक प्राणी में श्रीभगवान् ही विराजमान है, अतः उन सर्वात्मा में रति होना वस्तुतः भगवान् की भक्ति ही है । और ऐसी भक्ति करने वाले को मुक्ति प्राप्त होने में कोई संदेह नहीं[1] ।

~~विश्रामसागर में नवधा भक्ति का वर्णन आया है~~ - श्रीमद्भागवद् में भी भक्ति के प्रकारों में यही नवधा भक्ति वर्णन किया गया है यथा -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्[2] ।।

- -

1- प्रेम दर्शन, देवर्षि नारद विरचित (भक्ति सूत्र) पृ0 24

2- श्रीमद्भागवद्गीता, 7/5/23

इसी प्रकार रामचरित मानस के अरण्यकाण्ड में राम के मुख से तुलसीदास जी नवधा भक्ति का वर्णन कराते हैं¹ विश्रामसागर में कवि ने भी मानस की ही भाँति नवधा भक्ति का सविस्तार वर्णन किया है।

कवि ने श्रवण भक्ति के वर्णन में कथा श्रोता के बारह प्रकार बताये हैं-
1- प्रवरा, 2- चातक, 3-हंस 4- शुक, 5- मीन, 6- मक्षिका 7- जैल, 8- मधु 9- बक, 10 तमु, 11- पुर, 12- शैल।

इन बारह प्रकार के श्रोताओं में से छः उत्तम हैं जिनके लक्षण इस प्रकार हैं - (1) हरिकथा में शुद्ध प्रेम रखने वाला यथा प्रवरा अर्थात् अगरकाष्ट। (2) हरिचरित्र से ही तृप्त होने वाला यथा चातक (3) हरिलीलाओं में सार तत्व ग्रहण करने में प्रवीण और अन्य प्रसंगों से अरुचि रखने वाला यथा हंस (4) हरिकथा सुनकर उसका स्वयं गान करने वाला यथा शुक (5) हरिकथा के सुधा स्वादन के हेतु आतुर तथा उस सुधारस के अभाव में व्याकुल यथा मीन (6) परोपकार में संलग्न यथा मधुमक्षिका।²

- -

1- नवधा भगति कहऊँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
-रामचरितमानस"

2- प्रवरा चातक हू हंस शुक, मीन मक्षिका जैल।
श्रोता द्वादश भाँति के, मधु बक तम पुर शैल॥
द्वादश में षट उत्तम जानो अपर अधम अब दोष बखानो॥
बध्यमान मृग लोग अधीरा। पदछेदक असमञ्ज शरीरा॥
विश्रामसागर, इतिहासायन ख०,

दूसरी भक्ति कीर्तन की महिमा का बखान करते हुए कवि ने कहा है यथा-

लज्जा रहित तिन्हैं जो गावे । सो निश्चय अभिमत फल पावै ।।[1]

स्मरण भक्ति के विषय में कवि ने कहा है कि जो भगवान का स्मरण करता है वह भवसागर को गोपद के समान पार कर लेता है । इसी के अन्तर्गत कवि ने भगवान का स्मरण करने वालों के नाम भी गिनाए हैं - गणिका, यवन, गयन्द, अजामील, कीर, आदि कवि [वाल्मीकिजी] स्मरण के प्रभाव से तर गए ।

सेवा भक्ति के फल का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है यथा -

सेवन भक्ति कीन जो नीके । रहिहै बसी सिया उर पी के ।
देव यक्ष गन्धर्व नर, असुर इतर कोउ होउ ।
जो सेवै हरि पद कमल, सब सुख पावै सोउ[2] ।।

हरिचरणों की सेवा के बिना मनुष्य जहाँ कहीं भी जाता है, उसे भय बना रहता है और मृत्यु उसे अपना ग्रास बनाने से नहीं छोड़ती । इसलिए श्री रामचन्द्रजी के चरण कमलों की नित्य सेवा करो ।

छठी अर्चन भक्ति के वर्णन में कवि ने अष्ट प्रतिमा और षोडशोप-चारपूजन एवं चरणामृत के तत्व आदि का उल्लेख किया है हरिपूजन कवि ने सोलह-प्रकार का बतलाया है[3], सातवीं भक्ति का नाम दास्य इसलिए है कि अपने को भगवान का दास समझकर उनकी सेवा करें । उनका नाम स्मरणमात्र से पाप

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, पृ0 470

2- वही, वही, पृ0 475

3- हरि पूजन षोडश भांति कही । प्रथमे आवाहन कीन वही ।।
पुनि आसन पादरघाचमनं । अस्नान पयद्युति भूषनं ।।
शुचि चन्दन पुष्प सुधूप दियें । नैवेद तंबूल विनय अर्पिं ।।
परदक्षिना षोडश भांति इवौ । चरणामृत नाशत कोटि किवौ ।।
-विश्रामसागर"

भस्म हो जाते हैं और उनके चरणों का जल सांसारिक क्लेशों को दूर कर देता है । इसी संदर्भ में कवि ने आगे कहा है कि दैहिक, वाचिक और मानसिक समस्त कर्म जो भी करे, उन्हें भगवान को अर्पित कर देना चाहिए । इसके लिए विधि, निषेध या भगवान की आज्ञा नहीं है, अपितु यह दास की भावना है। 'पञ्चरात्र-स्मृति' में ऐसा कहा गया है कि श्रेष्ठ नरतन धारण करके जो नारायण जी का दास न हुआ तो वह प्राणी जीवित होते हुए भी शव के समान है । आठवीं भक्ति सख्य कहलाती है । भगवान का सखा भक्त परम सुख पाता है।नन्द गोपिकाएं और ब्रजवासी जन भगवान को सखाभाव से सेवा करके परम सुखी हुए । विभीषण, सुग्रीव और निषाद भगवान के सखा होकर दुखों से मुक्त हुए । नवीं भक्ति आत्मसमर्पण के बारे में कवि ने कहा है कि इसके समान कोई नहीं है,जो कोई अपनी देह आदिक सब आशाओं को त्यागकर, भगवान को अर्पण कर देता है, वह सदा निश्चिन्त रहता है और उसकी चिन्ता कृपालु भगवान स्वयं करते हैं।तन, मन भगवान को अर्पण करने से धर्म- कर्मों का श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है । वही निश्चिन्त होता है और वही ज्ञानी है जिसने राजा बलि के समान दृढ़ व्रतिह होकर अपने को समर्पित कर दिया हो ।

इस प्रकार से कवि ने भक्ति के प्रकारों में नवधा भक्ति का वर्णन किया है ।

<u>अन्य देवों की भक्ति -</u>

कवि प्रसिद्ध वैष्णव और राम भक्त था इस कारण उसने राम से सम्बद्ध विष्णु, कृष्ण, नरसिंह आदि देवों की महिमा का गुणगान किया है उदाहरणार्थ - उसने राम शब्द के रा से नारायण, दीर्घ आकार से महाविष्णु और मकार से महादेव की उत्पत्ति मानी है । यथा -

> नारायण को रूप करि, जो है प्रथम रकार ।
> महाविष्णु आकारतो, महा शम्भु माकार ।।[1]

- -

1- विश्रामसागर, अतिरामायन खण्ड, पृ० 93

विष्णु, नारायण, कृष्ण इन सबको कवि ने अभिन्न माना है जो नित्य है और विश्व के समस्त जड़ चेतन में व्याप्त है उसे विष्णु कहते हैं। इस प्रकार कवि ने सबको राम नाम मय माना है-राम- नाम मय सर्व है, नाम प्रकृति अरु वर्ण।

रम क्रीडा आते कहत, सुनहु अवर परिकर्ण[1] ।।

राम और कृष्ण को अभेद मानते हुए कवि ने कृष्ण भक्ति को भी महत्व दिया है। उसके अनुसार कृष्ण भक्ति विहीन, प्राणी पापी और दुरात्मा होता है। उसका जन्म कुत्ते की विष्ठा तुल्य और जल मदिरा तुल्य हो जाता है[2]।

इससे ज्ञात होता है कि कवि ने राम और कृष्ण में अभेद सम्बन्ध माना है। प्रसंग वश कवि ने ज्ञान और बुद्धि प्रदान करने वाली माता सरस्वती, सिद्धि दायक गणेश और वीर हनुमान की भी वन्दना की है शिव - पार्वती, विष्णु - कमला तथा ब्रह्मा और मत्स्य, वाराह नृसिंह, कूर्म, वामन, महाप्रभु परशुराम की भी वन्दना की है इतना ही नहीं उसने श्री अम्बिका देवी और तैंतीस कोटि देवताओं को नमस्कार किया है[3]।

इससे यह प्रतीत होता है कि कवि राम के अतिरिक्त अन्य देवों में भी आस्था रखता था।

कृष्ण भक्ति -

वैष्णव में राम भक्ति और कृष्ण भक्ति अलग अलग मानी जाती है, किन्तु दोनों में पर्याप्त समन्वय भी है। महाभारत एवं वैष्णव पुराणों में कृष्ण भक्ति का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। गुप्त काल में भी कृष्ण भक्ति को विशेष महत्व प्रदान किया गया था। पुराणों में अग्नि पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, नारद-पुराण, वाराह पुराण और विशेषतः श्रीमद्भागवत् पुराण में कृष्ण कथा का उल्लेख मिलता है। परवर्ती उक्त पुराणों एवं संहिता ग्रन्थों में भी कृष्ण भक्ति का उल्लेख

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड पृ० 57

2- कृष्णभक्तिविहीनस्य पापिष्ठस्य दुरात्मनः।
श्वानविष्ठासमंजन्मं जलंच मदिरासमम् ।।
इतिहासायन खण्ड, पृ० 450

3- कृष्णायन भाग 1 पृ० 301

मिलता है । "कृष्णस्तु भगवान स्वयं" यह उक्ति कृष्ण भक्ति में विशेष आदरणीय है । गीता के नायक श्री कृष्ण की महिमा अपार है। साम्प्रदायिक रूप में बारहवीं शताब्दी के निम्बार्काचार्य द्वारा राधा - कृष्ण की भक्ति का उल्लेख मिलता है । पंद्रहवीं-शताब्दी में स्वामी वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि-मार्ग' की प्रतिष्ठा कर कृष्ण भक्ति के साम्प्रदायिक रूप को विशेष महत्त्व दिया।पुरातिक भक्ति कवियों ने कृष्ण भक्ति को विशेष महत्व दिया गया, जिसमें राधावाद की पर्याप्त प्रतिष्ठा हुई । रीति-काल में कृष्ण भक्ति का 'रसिक- रूप' अधिक पल्लवित हुआ, जिसका विपुल-साहित्य विद्यमान है । आधुनिक युग में भी कृष्ण भक्ति के अस्तित्व को मान्यता प्राप्त है ।

विश्रामसागर के कवि ने भी अपने ग्रन्थ के एक खण्ड को 'कृष्णायन' की संज्ञा दी है, जिसमें उन्होंने कृष्ण भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए श्रीमद्भागवद् ब्रह्म वैवर्त आदि कई ग्रन्थों से कथा-सार लेकर कृष्ण के समग्र चरित्र को संक्षेप में प्रस्तुत किया है । इतिहासायन-खण्ड में उन्होंने कृष्ण की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा है -

कृषि भू वाचक शब्द जो, ताहिं कहत हैं कृष्ण[1] ।।

इतना अवश्य है कि कवि ने राम और कृष्ण को अभिन्न मानते हुए भी कृष्ण की तुलना में राम को ही अधिक महत्वशील माना है।इसलिए रामायण खण्ड में उसने रामचरित की विशद व्यञ्जना की है ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कवि राम भक्त तो था किन्तु राम के ही अवतार के रूप में उसने कृष्ण भक्ति को भी महत्त्व दिया है ।

शाक्त निन्दा -
==========

कवि कट्टर वैष्णव था/कवि के सिद्धान्त के अनुसार वैष्णव धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है क्यों कि वे स्वयं वैष्णव थे । जिसमें सत्य, अहिंसा पर विश्वास

- -

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-6, पृ0 96

था। यथा -

वैष्णव धर्म से परे जो , धर्म निन्दै कोय ।
सो महत्व जब मानसी, कबन न चाहे सोय[1] ।।

वैष्णव महत्व के बारे में सुदर्शन कथा में भी उन्होंने लिखा है -

जाके वैष्णव जातु घर । पावै नहिं सनमान ।
सो पुण्य सौ जन्म की । कह स्कन्द पुरान[2] ।।

यही कारण है कि उन्होंने शाक्तों की बड़ी निन्दा की है।'यमदूत - धर्मराज' के संवाद प्रसंग में शाक्तों की निन्दा की गयी है। उन्हें नरक पथगामी माना गया है । शाक्तों के लक्षण कवि ने इस प्रकार बताए हैं - जिन्हें हरि भक्ति नहीं प्रिय है, जो साधन (पुजाध्यानादि) को देखकर क्रोध करें, जो दूसरे की बुराई करें और जो पराये सुख को देख बिना आग के ही जले अर्थात् बिना किसी कारण के तथा न पराये सुख से किसी प्रकार का कष्ट भी न हो, किन्तु ईर्ष्यावश जलें, वे ही शाक्त हैं । शाक्त वह है , जो हिंसा में लगा रहे सद्मार्गों को त्यागकर कुमार्ग का अनुगामी हो, दूसरे की वस्तु चुराये और दूसरे को हानि पहुँचाने में प्रसन्न हो । परायी स्त्री से भोग करने वाला, अकारण क्रोध करने वाला एक जीव की रक्षा के लिए दूसरे जीव को मराने वाला और पराया माँस खाने वाला शाक्त है । गुरु और माता पिता के वचनों को न मानने वाले, दूसरों को दुख देने वाले शाक्त हैं[3] । कवि शाक्तों को निन्दनीय मानता था ।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय8, पृ0 48

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय9, पृ0 173

3- शाक्त जेहि हरि भक्ति न भावै । साधन लखि मन क्रोध बढ़ावै ।।
शाक्त पर के निन्दा करई । परसुख देखि बिनानल जरई।।
शाक्त सो हिंसारत रहई । तजे सुपन्थ कुपन्थे गहई।।
शाक्त जो पर द्रव्य चोरावै । पर अपकार सदा मन भावै ।।
शाक्त सो भोगै परदारा । करै अकारण क्रोध अपारा ।।
जिव बदले जो जीव मरावै । शाक्त मांस बिराना खावै ।।
गुरु पितु मातु वचन नहिं माने । शाक्त औरन का दुख ठाने ।।

विश्रामसागर, अध्याय,9 पृ0 78-79

भक्ति के बाधक तत्व -

विश्रामसागर में कवि ने भक्ति के बाधक पाँच तत्वों का उल्लेख किया है यथा -

विद्या जाति महन्त, यौवन को मद रूप मद ।।
तजौं जतन करि संन्त , पाँच काँट ये भक्ति कैं ।।

अर्थात् विद्यामद, जातिमद, प्रतिष्ठामद, यौवन मद, और रूपमद इन्हें सन्तजन यत्न करके त्याग देते हैं क्यों कि ये ही पाँच भक्ति- मार्ग के कंटक हैं ।

भक्ति के बाधक तत्वों से सम्बन्धित कवि ने विभिन्न भक्तों के दृष्टान्त दिए हैं कि किस प्रकार से भक्तों की भक्ति में बाधायें आती है और वे किस प्रकार सफलता या असफलता प्राप्त करते हैं । कुछ भक्तों के दृष्टान्त प्रस्तुत हैं -

विभिन्न भक्तों के दृष्टान्त -

विश्रामसागर के इतिहासायन खण्ड में कवि ने अनेकों भक्तों के दृष्टान्त दिए हैं यहाँ पर संक्षेप में क्रमशः गणिका, गज, यवन के दृष्टान्त प्रस्तुत किए जा रहे हैं -

एक गणिका थी उसने जीवन भर पाप ही पाप किए थे गणिका के अन्तिम समय में यमदूत उसे घेर कर नाना प्रकार के कष्ट देने लगे उसी समय वहाँ पर एक हरिभक्त आया।उसे देखकर वेश्या ने उससे (हरिभक्त) विनती की कि आप मुझे इस संकट से बचाइए,किन्तु हरिभक्त बोला कि तुमको राम मन्त्र देना भी पाप है,अतः तुम वह नाम लो जो हिन्दू लोग अपने तोते को पढ़ाते हैं।ऐसा कहने पर उसने 'राम' शब्द कहा,इतना सुनते ही हरि के गण आ गये और आदर पूर्वक उसे विष्णुलोक में वास दिया ।

इसी प्रकार एक गज की कथा है । एक गज जो कि बहुत बली था वह सागर में जल पीने गया उसी समय एक ग्राह ने दौड़कर उसका पैर पकड़ लिया

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय-23, पृ0 219

और गहरे जल में घसीट कर ले गया । फिर हाथी उसे खींचकर किनारे ले आया । हाथी के बाप,भाई,पुत्र, स्त्री कुछ दिन तक उसे भोजन पहुँचाते रहे अन्त में सबों ने त्याग दिया और वह[हाथी] बहुत ही निर्बल हो गया तो उसने राम का आधा नाम ही पुकारा था कि भगवान गरुड़ को छोड़कर तुरन्त ही दौड़े और ग्राह को मार कर हाथी को बचा लिया ।

एक महापापी शेख था वह एक दिन शौच के लिए गाँव के बाहर गया पीछे से एक सुअर का बच्चा आया और विष्टा पर मुँह मारकर उसे गिरा दिया । यवन ने कहा हा राम । मार डाला । राम का नाम कहते ही उसकी मृत्यु हो गयी । यमदूतों ने दौड़कर उसे पकड़ा किन्तु उसी समय हरिगणों ने आकर उसे छुड़ा लिया । हरिगणों ने कहा कि इसने राम का नाम लिया है । अब यह तुम्हारे धाम [यमलोक] नहीं जायेगा । यमदूतों ने कहा कि इसने जो हेराम कहा है सो इसने सुअर का नाम लिया था । इस प्रकार झगड़ा करते हुए वे विष्णु जी के पास पहुँचे और सब समाचार कह सुनाया फिर यमदूतों ने विष्णु जी के चरणों में शिर झुकाकर कहा कि यह महापापी और अन्यायी है । इसने मरते समय "हराम" मुख से कहा है , इसी कारण आपके [विष्णुजी के] गण इसे यमलोक नहीं ले जाने देते हैं हे प्रभु । इसका निर्णय आप ही से होगा । जो आप कहेंगे, वही हम करेंगे । विष्णुजी ने सब सुन कर विचार किया कि नाम का प्रभाव अनन्त और अपरम्पार है उन्होंने कहा हे यमदूतों । अब इसे यहीं रहने दो ।

विश्रामसागर के कवि ने भक्ति के बाधक तत्व जो बतलाए है - विद्या-मद, धन जाति मद, प्रतिष्ठा मद, यौवन मद और रूपमद यह पाँचों तत्व उपर्युक्त उद्धरणों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं ।

भक्ति मार्ग में यह तत्व अवश्य ही बाधा पहुँचाते हैं किन्तु प्रेम से भगवान् का एक बार भी नाम लेने से पापी से पापी व्यक्ति को भी भगवान की भक्ति प्राप्त हो जाती है और उसका उद्धार हो जाता है ।

ज्ञान और भक्ति -

ज्ञान और भक्ति यह दोनों पृथक पृथक मार्ग हैं ज्ञान मार्गी

दुस्तर है जैसा कि तुलसी ने कहा है -

ज्ञान के पंथ कृपान के धारा । परत खगेस न लागै बारा ।।[1]

इसीलिए सभी वैष्णव ने जन साधारण के लिए सुलभ भक्ति को महत्व दिया है। तुलसी ने तो यहाँ तक कहा है कि ज्ञान और विज्ञान दोनों भक्ति के अधीन है और भक्ति स्वतन्त्र है यथा -

सो सुतंत्र अवलम्ब न आना । तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ।

किन्तु उन्होंने "ज्ञान मोक्ष पद वेद बखाना" कह कर यह भी सिद्ध किया है कि ज्ञान मोक्षदायक है । गीता में भी कहा गया है - 'ज्ञानी प्रियतमो मत:' स्वयं तुलसी ने भी कहा है कि - ज्ञानी प्रभु के विशेष प्रिय है - "ज्ञानी प्रभुहि विशेष-प्रियारा ।" फिर भी अंतत: भक्ति को अधिक महत्व दिया है । इस सम्बन्ध में उनके उद्गार इस प्रकार हैं -

बहुत जन्म सुकृत कियौ, ताको फल नर देह ।
कहै रघुनाथ सो पायके, जन्म सुफल करि लेह।।

: : :

आखिर को मिलने रहे,। मरना लेहि विशेषि ।
ताते हरि भजि लीजिए । यही लाभ मन पेखि ।।[2]

कवि कहता है कि बहुत से जन्मों से यह नर-तन प्राप्त होता है और इस मानव देह को हरि की भक्ति करके सफल कर लो । चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि ही मुक्ति मार्ग के लिए एक छोटे से द्वार के समान है । उसे पाकर यदि प्राणी उस द्वार से न निकल सका अर्थात् हरिभक्ति न करके मोक्ष न प्राप्त कर सका तो फिर उसी गहन भव सागर की चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करेगा । अत: मोक्ष लाभ हेतु हरि स्मरण कर लो ।

- -

1- रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, तुलसीदास

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, पृ0 115

प्रश्न उठता है कि इस भवसागर से किस प्रकार तरें। सन्त ने कहा है कि जो भवसागर पार होना चाहे तो हरि के शरण में जाय । काम, क्रोध,मद,मोह, और अहंकार का परित्यागकर करके तथा इच्छा, लोभ, ईर्ष्या का दमन करके इन्द्रियों को सदा वश में रखे । निश्चल स्वभाव हो एकान्तवास करे । सुख और दुख को समान समझे, मन में धर्म की भावना धारण करे । जन्म और मृत्यु से प्रभावित न हो तथा मिलन से हर्षित और वियोग से दुःखित न हो । इस प्रकार वह समस्त जग को नाशवान समझे और आत्मा को अजर और अखण्ड माने राम, दम शील और दया हृदय में रखे और गुरु से कभी गर्व न करे ।

* * *

ये ऐसा प्राणी भवसागर पार हो जाता है, यह सत्य है , इसमें कुछ संदेह नहीं ।

कवि ने ज्ञान से अधिक भक्ति को प्रश्रय दिया है भक्ति के सन्दर्भ में मुक्ति-हेतु उपर्युक्त आचरण बतलाए हैं ।

विश्रामसागर के प्रारम्भ में ही कवि ने भक्ति को महत्व दिया है।यथा -

शास्त्र बिना नहिं ज्ञान भव, ज्ञान बिना नहिं भक्ति ।
भक्ति बिना नहिं सत्य सुख, ताते सुनिय सुभक्ति।।[2]

- -

1- काम क्रोध मद मोह निवारै । निज अभिमान दंभ परिहारै ।
तृष्णा लोभ मत्सरता दहई । इन्द्रिन के मारग नहिं बहई ।।

* * *

नाशरूप सब जग का देखै । आतम अजर अखंडित पेखै ।।
शम दम शील दया उर राखै । गुरु से गर्वित वचन न भाखै ।।

* * *

सो संसार तरै सति मानो । यामें कछु संदेह न आनो ।।

(विश्रामसागर)

2- विश्रामसागर, [illegible] खण्ड, अध्याय- 2 पृ0 20

शास्त्र के अध्ययन बिना ज्ञान नहीं होता, बिना ज्ञान के भक्ति नहीं होती और बिना भक्ति के सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता है ।

गुरु महिमा -

गुरु सर्वश्रेष्ठ है । गुरु साक्षात् भगवान हैं गुरु पूजा भी भगवत्पूजा है । गुरु मंत्र और इष्ट देवता- ये तीन नहीं एक है । गुरु के बिना ईश्वर की प्राप्ति असम्भव है शिष्य अधिकार हीन होने पर भी यदि सद्गुरु की शरण में पहुँच जाए तो वे उसे अधिकारी बना लेते हैं । पारस का स्वभाव ही लोहे को सोना बनाना है । इसलिए जिनके हृदय में भगवत्प्राप्ति की इच्छा है, जो वास्तव में साधना करना चाहते हैं, उनके लिए गुरुदेव की शरण में जाना सर्व प्रथम कर्तव्य है -

यस्य देवो परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।[1]
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

विश्रामसागर के कवि ने भी गुरु की महत्ता को गुरु माहात्म्य नामक शीर्षक के अन्तर्गत दर्शाया है । हरिकथा के वर्णन के प्रारम्भ में कवि ने कहा है यथा -

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु पुरारी । गुरु परब्रह्म दीन दुखहारी ।।[2]

कवि आगे गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहता है कि गुरु की शरण में जो कोई भी आ जाता है तो उस व्यक्ति को आवागमन से मुक्ति मिल जाती है उद्धरण द्रष्टव्य है -

गुरु शरणागत जो कोइ आवै । बहुरि न सो चौरासी जावै ।
गुरु कृपालु अगणित गतिदाता । गुरु कृपा छूटै यमनाता ।।[3]

- -

1- कल्याण साधना अंक, पृ० 209

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, पृ० 23

3- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, पृ० 23

महापापी जन भी यदि गुरु की शरण में आता है और गुरु के उपदेशों को सत्य मानकर उनका पालन करता है, तो वह कभी नरक में नहीं जाता। जो गुरु की शरण में आकर हरि भजन नहीं करते, तो वे नरतन पाकर भी इस संसार में सब कुछ गँवाकर चल देते हैं। गुरु की शरण में आकर जो सीताराम का स्मरण करता है, वह इहलोक में आनन्दपूर्वक रहकर अन्तकाल विष्णु धाम में वास करता है। जो मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी बढ़कर हो जाए, वह भी बिना गुरु-कृपा के भवसागर नहीं तरता, ऐसा वेद शास्त्रों का मत है।

इसी संदर्भ में नारद जी के बारे में एक रोचक कथा है - गुरु विहीन नारद मुनि भगवान के दर्शन के लिए आया करते थे। वहाँ कुछ समय ठहरकर जब चले आते थे तो विष्णु भगवान उस स्थान को धुलवा देते थे। एक बार नारद जी ने देख लिया तो उन्होंने भगवान से इसका कारण पूछा। तब भगवान ने कहा कि तुमने अभी तक अपना कोई गुरु नहीं बनाया है। इस पर नारद ने कहा कि मैं अपना गुरु किसे बनाऊँ? भगवान ने कहा। प्रातः सुबह जो तुम्हें सर्वप्रथम मिले उसे ही गुरु बना लेना। नारद जी को प्रातः एक धीमर मिला और उन्होंने उसे ही अपना गुरु मान लिया और भगवान से आकर कहा कि मैंने एक तुच्छ धीमर को अपना गुरु बना लिया है। इस प्रकार गुरु में पेड़ लगाने के कारण उन्हें शाप मिला कि तुम चौरासी लाख योनियों में भ्रमो। भगवान को ऐसा करने पर नारद मुनि ने आकर अपने गुरु से सारा वृत्तान्त सुनाया। दयालु गुरु ने एक युक्ति बतायी। तदनुसार नारद ब्रह्मा जी के पास गए और ब्रह्मा जी से कहा कि - हे प्रभु मैं चौरासी लाख योनियाँ नहीं जानता अतः आप लिख दें और जब ब्रह्मा जी लिख चुके तब नारद मुनि उसमें लोट गए और इस प्रकार वे गुरु के कारण ही शापमुक्त हो सके। कतिपय उद्धरण दृष्टव्य हैं -

गुरु गोविंद से अधिक हैं यह प्रतीति मन लाय।

1- ब्रह्मा विष्णु महेश से, जो अधिकी है जाय।
गुरु बिन भवनिधि ना तरे, कहत निगम अस गाय।।
[विश्रामसागर-]

गोविंद हारैं नरक जो, तो गुरु लेई उबारै ।।

*   *   *

इसी प्रकार कबीर ने कहा है -

गुरु गोविन्द दोनों खड़े । काके लागौं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने । गोविंद दियो बताय ।।

इसमें उन्होंने गोविंद देखकर गुरु की महत्ता दर्शायी है । गोविंद से मिलाने के मार्ग को दर्शाने वाला गुरु ही होता है अत: गुरु श्रेष्ठ है ।

गु"गु" कार अ तासु हारे, रू लौह करे प्रकाशु ।

"गु" अन्धकार है ल उसे हरने वाला है अत: गुरु प्रकाश फैलाने वाला है।विश्रामसागर के कवि ने "गुरु" शब्द की व्युत्पत्ति पर भी प्रकाश डाला है जो सर्वथा उचित भी है ।

<u>दीक्षाविधि -</u>

श्री गुरुदेव की कृपा और शिष्य की श्रद्धा इन दो पवित्र धाराओं का संगम ही दीक्षा है । गुरु का आत्मदान और शिष्य का आत्म समर्पण एक की कृपा और दूसरे की श्रद्धा के अतिरेक से ही सम्पन्न होता है ।अत: दान और क्षय - यही दीक्षा का अर्थ है । ज्ञान, शक्ति और सिद्धि का दान एवं अज्ञान, पाप और दारिद्र्य का क्षय: इसी का नाम दीक्षा है ।

दीक्षा एक दृष्टि से गुरु की ओर से आत्मदान, ज्ञानसंचार अथवा शक्ति पात है,तो दूसरी दृष्टि से शिष्य में सुषुप्त ज्ञान और शक्तियों का उद्बोधन है । दीक्षा से ही शरीर की समस्त अशुद्धियाँ मिट जाती हैं और देह शुद्ध होने से देव पूजा का अधिकार मिल जाता है । यदि परम्परा की दृष्टि से देखें तो मूल पुरुष परमात्मा से ही ब्रह्मा, रुद्र आदि के क्रम से ज्ञान

1- विश्रामसागर, बलिहारसाधन खण्ड, पृ0 31

की परम्परा चली आ रही है और एक शिष्य से दूसरे शिष्य में संक्रान्त होकर वही वर्तमान गुरु में भी है। इसी का नाम सम्प्रदाय है और गुरु के द्वारा इसी अविच्छिन्न साम्प्रदायिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। क्यों कि मूल शक्ति ही क्रमशः प्रकाशित होती आती है । उससे हृदयस्थ सुप्त शक्ति के जागरण में बड़ी सहायता मिलती है और यही कारण है कि कभी कभी तो जिनके चित्त में बड़ी भक्ति है, व्याकुलता और सरल विश्वास है, वे भी भगवत्कृपा का उतना अनुभव कर पाते हैं जितना कि शिष्य को दीक्षा से होता है[1]।

वैष्णव धर्म में गुरु दीक्षा का बड़ा महत्व है । विश्रामसागर के चौथे-अध्याय "गुरु माहात्म्य" में गुरु- दीक्षा महत्व का वर्णन किया है यथा -

बिन गुरुदीक्षा अफल सब । जप तप होम क्रियादि ।
ज्यों पाहन में बीज सब । उपजै न फल आदि[2] ।।

गुरु शिष्य के अज्ञान को दूर करता है और उसका सच्चा पथ प्रदर्शन करता है । महा अधम पापी मनुष्य भी गुरु की शरण में आकर नरक गामी नहीं होता । इसलिए गुरु से दीक्षा लेना अत्यन्त आवश्यक है । इसी प्रकार गुरु की शरण में आने से इह लोक और पर लोक दोनों में कल्याण होता है । दीक्षा हीन मनुष्य जहाँ जाता है वह स्थान अपवित्र हो जाता है[3]।

गुरु शरण के परताप से हरि सकल संताप नासि हौं ।

* * *

गुरु समान तिहुं लोक में, और न दूसर देव।
तातें सेवक कीजिए, गुरु चरणन की सेव ।।
दीप चन्द्र मणि वज्र रवि, पंच प्रकृति गुरु जानि ।

1- कल्याण साधना अंक, पृ0 210, शीर्षक दीक्षा और अनुशासन

2- विश्रामसागर, अध्याय- 4 पृ0 31

3- दीक्षा हीन जहाँ चलि जावै । सो स्थान अशुद्ध ह्वै जावै ।
गुरुमुख चरण जहँ चलि आई । सब लोक धरा शुद्ध ह्वै जाई ।।
-विश्रामसागर, पृ0 29

वैष्णव दीक्षा सर्व पर, गुनियर कहत बखानि[1] ।।

इस प्रकार कवि ने दीक्षा को विशेष महत्व दिया है उसमें भी वैष्णव दीक्षा को सर्वश्रेष्ठ बताया है ।

प्रकृति चित्रण -

संसार में हर देश के साहित्य में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान रखता है । साहित्य मात्र को प्रकृति से निरन्तर प्रेरणा मिला करती है । साहित्य वास्तव में प्रकृति की अनुकृति के रूप में मिलता है । ईश्वर की इच्छा की अनुकृति सृष्टि मानी गई है जिसका प्रमाण वैदिक ग्रंथों में मिलता है । "एकोऽहं बहुस्याम् में मलीन होवो" इति श्रुतिः (भगवान की इच्छा होती है कि मैं एक से अनेक होऊंगा अकेला मेरा मन प्रसन्न नहीं है ।) तदनुसार सृष्टि का क्रमिक विकास प्रारम्भ हो जाता है । अतः सृष्टि भगवदिच्छा की अनुकृति हुई । साहित्यकार अपनी (सृष्टि) साहित्य (अनुकृति) के रूप में उपस्थित करता है, अतः उसकी सृष्टि (साहित्य) अनुकृति (सृष्टि) की अनुकृति होती है[2] ।

प्रकृति प्रेम में उसको दर्शाते हुए आंग्ल कवि ने कहा है -

" There was joy in the mountains - Words worth."

प्रकृति मानव की चिर सहचरी है । मानव जन्म से मरण पर्यन्त उसके सान्निध्य में रहता है । वह जब जगत का प्रथम प्रकाश देखता है तो प्रकृति के क्रोड़ में अपने को पाता है, जीवन यापन के दिन भी उसे प्रकृति के वक्षस्थल पर बिताने पड़ते हैं और मृत्यु के पश्चात् भी उसका पंचभूत निर्मित शरीर प्रकृति के इन पंच-भूतों में पुनः मिलकर एकाकार हो जाता है । कहने का आशय यह कि प्रकृति से प्रकट होकर मानव प्रकृति में पुनः विलीन हो जाता है । परन्तु जब तक प्रकृति के वक्ष पर वह संचार करता है प्रकृति अपने अनन्त सौन्दर्य द्वारा उसको

- -

1- विश्रामसागर, पृ0 48

2- हिन्दी साहित्य में प्रकृति- पृ0 72,- भुवनेश्वरीचरण सक्सेना .

मानसिक सुख प्रदान करती रहती है। कवि भाव- जगत का प्राणी होता है। उसकी सूक्ष्म और भावुक दृष्टि सौन्दर्य ग्राही होती है। अतः प्रकृति के अनुपम- सौन्दर्य से प्रेरणा प्राप्त करना और अपने काव्य को संश्लिष्ट चित्रों से सजाना उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। भारत के कवियों के लिए यह एक वरदान समझना चाहिए क्योंकि भारत की धरती प्राकृतिक सुषमा की एक मनोरम रंगस्थली है।[1] मानव और प्रकृति के इस अटूट सम्बन्ध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव- जीवन का प्रतिबिम्ब है, अतः उस प्रतिबिम्ब में उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं, प्रकृति मानव हृदय और काव्य के बीच संयोजक का कार्य भी करती रही है। न जाने हमारे कितने ही कवियों को अब तक प्रकृति से काव्य -रचना की प्रेरणा मिलती रही है। आदि कवि ने प्रकृति के दो सजीव प्राणियों में से एक का वध देखकर इतने आँसू बहाये कि उनसे कितने ही भूर्जपत्र गीले हो गए और वे आज भी गीले हैं। आषाढ़ के प्रथम बादलों को देखकर कवि कुल शिरोमणि कालिदास तो इतने भावाभिभूत हो गए कि उनकी अनुभूतियाँ "मेघदूत" का रूप धारण करके बरस पड़ी। हमारे मध्यकालीन कवियों ने अपनी विरह गाथा सुनाने के लिए प्रकृति की ओट बार - बार ली है। आधुनिक कवियों में भी अनेक को काव्य -रचना की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली है। प्रकृति हमारे कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत ही नहीं, सौन्दर्य का अक्षय भंडार, कल्पना का अद्भुत लोक, अनुभूति का अगाध सागर और विचारों की अटूट शृंखला भी रही है।

इस प्रकार "दृश्य प्रकृति मानव जीवन को अथ से इति तक चक्रवाल की तरह घेरे रही है। प्रकृति के विविध - कोमल, कठोर, सुन्दर, विरूप, व्यक्त , रहस्य - मय रूपों के आकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है, इसका लेखा- जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी ठहरेगा। वस्तुतः संस्कार -क्रम में मानव - जाति का भाव जगत ही नहीं,

---

1- केशव का प्रकृति चित्रण - प्रो0 किरण , पृ0 25।

उसके चिन्तन की दिशाएँ भी प्रकृति के विविध रूपात्मक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित है ।" [महादेवी वर्मा]   आँग्ल कवि बायरन ने प्रकृति की सुन्दरता पर मुग्ध होकर कहा है -

" I love not the man less but nature more."

हमारा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य इस प्रकृति के विभिन्न रूपों की सुन्दर-कथा है। वैदिक ऋषियों ने उषा, मारुत, इन्द्र, वरुण, सूर्य, चन्द्र, गिरि, सरिता वन, उपवन, जैसे सुन्दर, गतिशील, जीवनमय और व्यापक प्रकृति रूपों को देख आश्चर्यान्वित और भाव- विभोर होकर उनकी वन्दना की थी । सामवेद की ऋचाएँ इसकी साक्षी हैं परन्तु मानव ने प्रकृति में उसके अलौकिक और विस्मय कारी रूप को ही एकमात्र नहीं देखा था, बल्कि - " वह प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में अपने लघुतम अस्तित्व पर विचार कर रहा था कि अचानक प्रकृति ने अपना मनो मुग्धकारी रूप पलटा। अगाध जलनिधि ने अपनी फेनिल लहरों को उछलना प्रारम्भ किया और उसका गम्भीर निनाद मानव के कर्ण - कुहरों को विदीर्ण करने लगा । समस्त वातावरण में एक भय और आतंक छा गया । ———— जो कुछ भी सौम्य और सुन्दर था, वह रौद्र बन गया । मानव भय से कम्पित और मूक हो गया । परन्तु प्रकृति का यह रूप भी स्थायी नहीं रहा। शान्त वातावरण का आभास होने पर मानव ने नेत्रोन्मीलन किया । ——— उसके हृदय से भय के भाव तिरोहित हो गए । उसने प्रकृति को पुनः प्रिय सहचरी के रूप में देखा । सिन्धु जलद, गिरि, सूर्य में अन्तर्निहित मांगलिक भावना का भी उसने अनुभव किया । इस प्रकार उसने प्रकृति के अद्भुत रौद्र एवं शिव और सुन्दर रूपों का अवलोकन कर नवीन भावनाओं को ग्रहण किया ।" सच में, प्रकृति के विभिन्न रूप मानव को भिन्न भिन्न रूप से आन्दोलित करते रहे । -[डॉ० किरण कुमारी गुप्ता]

प्रकृति, मानव की चिर सहचरी । कौन होगा ऐसा मानव जो उसे देखकर कभी न कभी मोहित न हो जाता हो? प्रत्येक मानव कहलाने वाला व्यक्ति उसकी लीला, उसकी छटा, उसकी रूप माधुरी को देखकर विमुग्ध और मोहित व रस-सिक्त, हुए बिना रह नहीं सकता । 'रसलीन' की नायिका के समान एक ही दृष्टिक्षेप से विचित्र दशा कर देती है दर्शक की वह -

अमिय हलाहल मद भरे, सेत, स्याम, रतनार ।
जियत, मरत, झुकि- झुकि परत, जेहि चितवत इक बार ।।[1]

के समान बना देती है किन्तु उसके आनन्द को फिर भी भुलाया नहीं जा सकता। उसे प्राप्त करने की इच्छा तो मानव को सदा ही प्रकृति के अंचल मे विचरण करने की प्रेरणा देती रहती है और इसी कारण प्राकृतिक स्थलों का महत्व उसके लिए बहुत अधिक हो जाता है, जहाँ जाकर वह अपनी इच्छा की पूर्ति कर सके, अपने नयनों का ताप मिटा सके और आनन्द सागर में डुबकी लगा सके ।

मानव और प्रकृति का अभेद सम्बन्ध है। इसका मूल कारण यह है कि मनुष्य और प्रकृति सृष्टि के आदि काल से एक दूसरे से सम्बन्धित रहे हैं। "डारविन" के विकास वाद के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के पूर्व पुरुष, मगर- मच्छ, पशु -पक्षी लंगूर, बन्दर सब प्रकृति के खुले प्रांगण में ही अपना जीवन बिताते थे और अन्न के उत्पादन किन्तु स्वयं जनमय संसार के ही आश्रय पर टिके थे । प्राचीन भारतीय संस्कृति के रक्षक ऋषि, मुनि भी वनों और पर्वतों में ही रहते थे। कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य का प्रकृति के साथ सर्वाधिक और सर्व प्राचीन सम्बन्ध है। आज भी जब वैज्ञानिक — आविष्कारों तथा बुद्धिवादी प्रभाव के कारण मनुष्य कृत्रिमता से पूरी तरह घिर गया है वह प्रकृति परी से किसी न किसी प्रकार क्रीड़ा करता ही रहता है। साहित्य मानव - मन का प्रतिबिम्ब होता है, अतः संसार के सभी साहित्यों में मनुष्य का यह प्रकृति प्रेम विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है ।

<u>प्रकृति चित्रण के विभिन्न भेद -</u>

वैदिक काल से लेकरआधुनिक युग तक काव्य में प्रकृति-चित्रण का महत्वपूर्ण-स्थान देखा जाता है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद के "उषा सूक्त" में उषा देवी का बड़ा ही सुन्दर और काव्यात्मक चित्रण प्राप्त होता है। प्रकृति मानव जीवन की चिर सहचरी रही है, वह उसके सुख में सुख और दुख में दुख मनाती हुई सी प्रतीत होती है और जीवन-संग्राम में मानव के विश्रान्त मन और बुद्धि को अपनी शान्तमयी गोद में क्षण भर के लिए विश्राम

1- बिहारी सतसई- बिहारी .

देती है और उसकी वेदना को हर बार एक नवीन चेतना प्रदान कर पुन: जीवन संघर्ष के लिए उसे उद्यत कर देती है। इसीलिए कवियों ने काव्य के साथ प्रकृति-चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान देने की चेष्टा की है ।

यहाँ पर प्रश्न स्वाभाविक है कि प्रकृति क्या है ? सांख्यशास्त्र के अनुसार संसार की जन्मदात्री मूल प्रकृति ही है। वह किसी का विकार नहीं है यथा - "मूल प्रकृतिरविकृति महदाद्या: प्रकृति विकृत: सप्त"[1] किन्तु काव्य शास्त्र में और काव्य जगत् में प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत सूर्योदय, चन्द्रोदय, उषा सन्ध्या पर्वत, सरिता, ऋतु, गन्ध, सागर, रजनी, अन्धकार, वृक्ष लताओं, आदि का वर्णन प्रकृति चित्रण के नाम से प्रसिद्ध है । कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है, जो इस प्रकार हैं - प्रकृति का आलम्बन रूप , उद्दीपन-रूप, अलंकृत रूप, कोमल रूप, प्रकृति का भीषण रूप प्रकृति का मधुर रूप, चेतन रूप, प्रकृति का मानवीय रूप, करुण रूप, अद्भुत रूप, प्रकृति का परिगणनात्मक रूप, प्रकृति का उपदेशक रूप, प्रकृति का दार्शनिक रूप प्रकृति का शान्त रूप, प्रकृति का उन्मत्त रूप आदि ।

विश्रामसागर में कवि ने इन सभी रूपों का चित्रण तो नहीं किया, किन्तु जिन - जिन रूपों का चित्रण किया है, उनके क्रमिक उद्धरण इस प्रकार है -

(1) प्रकृति का उद्दीपन रूप -

इसमें प्रकृति कवियों के लिए अनुराग का विषय न होकर नायक और नायिका के अनेकानेक भावों को उद्दीप्त करने का साधन बन जाती है । प्रकृति में भावों को उद्दीप्त करने की प्रबल शक्ति है। उसकी इसी शक्ति के वश कर हमारे कवियों ने चिरकाल से प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया है । रास- रास में चाँदनी और समीर का तथा विरह में विभिन्न ऋतुओं एवं बारहमासा का वर्णन इसी प्रवृत्ति का फल है । उद्दीपन -

---

1- सांख्य कारिका - ईश्वर कृष्ण

रूप में प्रकृति की सुरम्य छटायें सुख की अनुभूति को तीव्र कर देती हैं और वियोग में वे ही दृश्य पूर्वानुभूत सुखों की याद दिलाकर विरही की विरह-वेदना को और भी विषम बना देते हैं[1]। इसी कारण उद्दीपन के दोनों रूपों संयोगावस्था और विरहावस्था में प्रकृति चित्रण हुआ है विश्रामसागर के कृष्णायन खण्ड में प्रकृति का उद्दीपन रूप दृष्टव्य है :—

हे वट हे पाकरी करीला । तुम देखे मोहन गुणशीला ।
हे कदम्ब हे नींब पियारी । तुम कितहुँ देखे बनवारी ।।
हे रसाल हे पनस कुशाम्बा । तुम आवत देखे बल कान्हा ।
हे जामुनि हे गूलरि जूता । तुम देख्यो यदुपति के पूता ।।
हे दाड़िम हे कुन्द चमेली । तुम देखे गिरिधर अलबेली ।।
हे गुलाब बेला कचनारा । हे बदरी हे हरसिंगारा ।।
हे नींबू अबस्त सरीफा । तुम देखे गोपाल हरीफा ।
मौल सिरी हे कदम तमाला । तुम देखे नटवरि नदलाला[2] ।।

उपर्युक्त स्थल में प्रकृति का उद्दीपन प्रस्तुत करने में कवि ने "मानस" का मार्ग दर्शन लिया है, फिर भी उसकी अपनी सूझबूझ है, जो सराहनीय कही जा सकती है ।

(2) प्रकृति उपदेशिका के रूप में -

मनुष्य ने प्रकृति के कार्यकलाप को अनेक रूपों में आदर्श मानकर उससे ज्ञान, ध्यान और सान्त्वना प्राप्त की है । सर्वसहा पृथ्वी क्षमा और सहनशक्ति का आदर्श है । पर्वत चारित्रिक दृढ़ता का, पवन अनवरत सेवा- वृत्ति का, सरिता और वृक्ष परोपकार, मुक्तदान तथा सम दृष्टि का आदर्श प्रस्तुत करते हैं बाबा रघुनाथ दास रामसनेही जी को प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व उपदेश देता सा

- -

1- राजनाथ शर्मा प्रकृति चित्रण, साहित्यिक निबन्ध , पृ० 439

2- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय-6 पृ० 579

प्रतीत होता है यथा -

निज निज गृह सब छावन लागे । विपिन चितहिं बुध बरषन आगे ।
उमड़ि घुमड़ि नभ जलधर आये । दान देनु जनु धुमनिक धाये ।[1]

कवि ने प्रकृति का प्रतीक गरजते हुए मेघों को वृद्धावस्था मान हैं और नम्र होने के लिए कहा है ।-

विपिन शुभ साधन करि करहिं, पुष्कर धर्म सुजान ।
प्रगट पाय गुण अंकुर जामा, विषय संग विपिन बहु विविध कामा ।।
विविध जीव प्रकटे महि आई, प्रजा बहुत विपिन नृपवर पाई ।
जरत जवास आपने दोषा । विपिन बुध नाश होत निज रोषा ।।
फल फरि विटप अवनि झुकि आए । विपिन सुसाधु सुख सम्पत्ति पाए ।[2]

इन पंक्तियों में कवि ने चतुर व्यक्ति का युग एवं समय के अनुसार आचरण, सज्जन व्यक्ति सम्पत्ति को पाकर किस प्रकार व्यवहार करते है इसका उपदेश दिया है ।

§3§ प्रकृति का अलंकृत रूप -

अनादि काल से ही प्रकृति और मानव में सहचर्य होने के कारण कवि प्रायः सौन्दर्य के सभी उपमान प्रकृति के क्षेत्र में ही ढूंढता रहा है। मृग शावकों के नेत्रों में प्रिय के नेत्रों की सी सरलता का अनुभव करता है और मदमस्त गज की मंथर गति में अपने प्रिय की गति का साम्य देखता है इस प्रकार कवि जड़ और चेतन प्रकृति और मानव में साम्य उत्पन्न कर देता है और प्राकृतिक वस्तुओं का चेतन मानव के शरीरांगों का उपमान बनने के कारण विशेष महत्व मिल जाता है ।

विश्रामसागर के रामायण खण्ड में जड़ चेतन का साम्य दृष्टव्य है -

उठे मुनि सरसिज रवि देखी । जैसे कुमुद कुमुद कहँ पेखी ।
तिन पर मधुप करत गुंजारा । जनु तम वपु धरि शरण पुकारा ।।[3]

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड अध्याय- 5, पृ0 561
2- वही, वही, पृ0 562
3- वही, रामायण खण्ड पृ0 740

इन पंक्तियों में सूर्य के साथ कमल का खिलना, कमलों पर भौंरों का गुंजारना, अंधकार का शरण शरण पुकारना - जड़ चेतन का साम्य ही है । 1

(4) प्रकृति का भीषण रूप -

प्रकृति का भीषण रूप भी स्पृहणीय एवं रोमांचक होता है । जिस प्रकार जीवन के सुखात्मक पक्ष का दूसरा पक्ष दुःखात्मक होता है, उसके बिना वह अपूर्ण रहता है, इसी प्रकार प्रकृति के कोमल रूप के अतिरिक्त उसका भीषण रूप भी अपेक्षित होता है ।

कोपि बात बहु बरनि सिधाये । बनकुल बात बहु भ्रम आये ।
घेरि घुमरि जल छाँड़न लागे । सकल गोप हरिपद अनुरागे ।।[1]

यहाँ पर मेघों के भीषण रूप का रूप दर्शनीय है । इसी प्रकार जब किसी दुष्ट का उदय होवाहोता है, तब प्रकृति उसकी पूर्व सूचना दिये बिना ही नहीं रहती । प्रस्तुत उद्धरण में प्रकृति के उदय भीषण रूप का दृश्य देखिये :-

भई गर्भ संपूर्ण पहि भावा । जन्म समय कर अवसर आवा ।।
उल्का पात होन तब लागे । गर्जै मेघ समय बिन आगे ।।
रवि शशि ग्रहण पवन चलि घोरा । दिन को राति भई अति घोरा ।
काँपि उठी महि देव डराने । सब विप्रन के पेट पिराने ।।
दुष्ट मुदित मुनि भे मलीना । अग्नि तेज हत भय द्युति छीना ।।
उदित केतु नभ अशुभ बोले । कुतिदल कोर लखे विधि ओले ।।[2]

-5- प्रकृति का शान्त रूप -

राम जैसे शान्त व्यक्तित्व के लिए प्रकृति ने भी अपने शान्तरूप को संवार लिया है । "पर्णकुटी" में वह चारुचित्र अपने किस भावरूप में रमती रही

- -

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, पृ0 572

2- वही, रामायण खण्ड, पृ0 664

होगी, इसका आलम्बन रूप कवि के शब्दों में इस प्रकार चित्रित किया गया है-

जाकरि जनु तमाल दुत । ता मधि वटतर श्याम ।
तेहि तर सरिता तट बनी । परन कुटी अभिराम ।।[1]

(6) प्रकृति का कोमल रूप -

प्रकृति का कोमल रूप बड़ा ही सुखद और स्मरणीय होता है । कोमल प्रसंगों में सफल कवि प्रकृति के इस रूप की अवतारणा किया करते हैं । विश्रामसागर के कवि ने इसका विधान इस प्रकार किया है -

चहुँदिशि सघन लता तरु नाना । मनहुँ काम रति रचित विताना ।
शीतल मंद सुगन्धित बाऊ । कहोलत डोलत जय करि बाऊ ।।[2]

(7) प्रकृति का मधुर रूप -

पहुँचे नृप बागा सब अनुरागा देखत बागा अति नीका ।
जामें ऋतुराजा सहित समाजा रहत विराजा नितहीका ।।
नाना तरु फूले सकल समूले मधुकर भूले गुंजारें ।
खग विविध कलोलें जहँ तहँ बोलें जनु निज टोलें हँकारें ।।[3]

यहाँ पर "पुष्पवाटिका" का मधुर प्रसंग है, अतः कवि ने प्रकृति के मधुर रूप को "मानस" के अनुकरण पर रखने की भरपूर चेष्टा की है । तुलनीय -

भूप बाग वर देखेउ जाई । जहँ बसन्त ऋतु रहिय लुभाई ।
लागे विटप मनोहर नाना । बरन - बरन बर बेलि विताना ।।

(मानस बाल काण्ड)

(9) प्रकृति का दार्शनिक रूप -

कहीं - कहीं पर कवि ने प्रकृति के दार्शनिक रूप की सफल

1- विश्रामसागर, रामायण खंड, पृ0 886
2- वही, वही, पृ0 904
3- वही, वही, पृ0 766

अवतारणा की है । राम को जगाती हुई माता जी प्रकृति के इस दार्शनिक रूप का वर्णन करती हुई कहती है :-

> भोर भये जागहु रघुराई । मुख छवि पर जननी बलिजाई ।
> रविछवि विलोकि गयो तम भागी । ज्ञान उदय जिमि मोह विरागी ।।
> शशि नक्षत्र भे मलिन सुभाये । जिमि सब गुण दारिद्र के आये ।
> लागे मुकुल निशाचर जैसे । हरि सुमिरण ते पातक जैसे ।।[1]

उक्त प्रसंग में दार्शनिक उपमाओं का जमघट लगाकर कवि ने अपनी दार्शनिक प्रवृत्ति का परिचय दिया है ।

प्रकृति चित्रण के उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि कवि ने भक्त होने पर भी प्रकृति की उपेक्षा नहीं की है। कवित्व के लिए प्रकृति-चित्रण जितनी मात्रा में उपादेय है, उसके चित्रण में कवि ने कोई संकोच नहीं किया । इतना अवश्य है कि भक्त कवि होने के नाते इनकी मनो-प्रवृत्ति भक्ति-भावना तक ही सीमित रही है । प्रकृति की ओर इनका अधिक आकर्षण नहीं रहा, क्यों कि दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति ही तो माया है । अतः ब्रह्म का चिन्तन करने वाला व्यक्ति माया को उतनी महत्ता नहीं दे सकता, फिर भी काव्यात्मक दृष्टि से इनका प्रकृति-चित्रण उत्कृष्ट तो नहीं, किन्तु मध्यम कोटि का अवश्य कहा जा सकता है ।

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, पृ० 740

अध्याय- 10

कवि की बहुज्ञता एवं ग्रन्थ की लोकप्रियता

प्राचीन आचार्यों ने कवि का अनेक विषयों से परिचित होना अनिवार्य माना है[1] । वस्तुतः कवि को बहुविषयज्ञ होना आवश्यक है । जितने ही अधिक विषयों का ज्ञान उसे होगा, उतना ही उसका काव्य उत्कृष्ट, गम्भीर, भावपूर्ण तथा विदग्धतापूर्ण हो सकेगा । इसका यह मतलब नहीं है कि कवि अपनी बहुज्ञता का प्रकाशन अपने काव्य में स्थान - स्थान पर करता ही रहे और इस बात का ध्यान न रखे कि कहाँ कैसा प्रसंग है, कैसी परिस्थिति है, कैसी आवश्यकता है, और कौन सा भाव अभिप्रेत है । उसे इन सब बातों पर विचार करके ही अपनी बहुज्ञता को काम में लाना चाहिए[2] । बाबा रघुनाथ दास राम सनेही जी ने इसमें पूर्ण सफलता पाई है और इस अपने ग्रन्थ विश्रामसागर में अपनी बहुज्ञता का प्रकाश बड़ी चातुरी और चतुरता से किया है ।

विश्रामसागर के कवि ने अपने ग्रन्थ को खण्डों में, अध्यायों में बाँटा है तथा प्रत्येक अध्याय में उन्होंने सर्व प्रथम एक दोहा रखा है, जिस दोहे में एक पद में श्री राम, सीता जी, हनुमत, गुरु गणेश, और माँ सरस्वती का स्मरण किया है और एक पद में उस अध्याय में जो कथा निहित है वह कवि को कहाँ से प्राप्त हुयी, इसका संकेत है ।

अर्थात् कवि ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उसने किन - किन ग्रन्थों का आश्रय लिया है ।

इसी आधार पर कुछ धार्मिक ग्रन्थों का परिचय और विश्रामसागर की कथाओं के सन्दर्भ दिए जा रहे हैं। कवि के संकेतों के आधार पर निम्न ग्रन्थों के किस अध्याय, खण्ड एवं पर्वों का सन्दर्भ है उसका संक्षिप्त विवरण क्रमशः

- -

1- शक्ति निपुणता लोक काव्य शास्त्राद्यवेक्षणात् । {मम्मट काव्य प्रकाश, 1}

2- अष्ट याम - प्राक्कथन

श्रीमद्भागवत, महाभारत, मनुस्मृति, वाल्मीकि-रामायण, एवं पुराणों ~~का विवरण~~ दिया जायेगा -

(क) श्रीमद्भागवत, महाभारत एवं विविध पुराणों का ज्ञान -

श्रीमद्भागवत -

विश्रामसागर के आठवें अध्याय में कवि ने स्वयं कहा है कि मैं भागवत के अनुसार "अजामील कथा" कह रहा हूं। श्रीमद्भागवत में भी यह कथा प्राप्य है विस्तृत विवरण देखिए -

कहौं कथा भागवत की, अब इतिहास अजामि । - विश्रामसागर

विष्णुदूतों द्वारा भागवत धर्म निरूपण और अजामिल का परमधाम गमन -

.... अहो कष्टं धर्म शाम धर्मः स्पृशेत् सभाम् ।

.... यत्रादण्डेष्वपापेषु दण्डो यैध्रियते वृथा ।।[1]

इसी स्कन्ध में आगे कहा है - यमदूतों । इसने कोटि-कोटि जन्मों की पाप राशि का पूरा - पूरा प्रायश्चित कर लिया है । क्यों कि इसने विवश होकर ही सही, भगवान के परम कल्याण मय (मोक्षप्रद) नाम का उच्चारण तो किया है । जिस समय इसने "नारायण" इन चार अक्षरों का उच्चारण किया उसी समय केवल उतने से ही इस पापी के समस्त पापों का प्रायश्चित हो गया । चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नी गामी ऐसे लोगों का संसर्गी, स्त्री, राज्य, पिता और गाय को मारने वाला चाहे जैसा और चाहे जितना बड़ा पापी हो सभी के लिए यही - इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित है कि भगवान् के नामों का उच्चारण[2] किया जाय। क्यों कि भगवन्नामों के उच्चारण से मनुष्य

1- श्रीमद्भागवत् अध्याय-2 षष्ट स्कन्ध श्लोक-1

2- इस प्रसंग में नाम-उच्चारण का अर्थ नामोच्चारण मात्र ही है । भगवान श्री कृष्ण कहते हैं -

यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ।

दुर्वासा जी की दुर्दिननिवृत्ति -

श्री शुक उवाच -

एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ।

अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ ॥ ॥

स्तुति दुर्वासा जी की - अम्बरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।

त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ 3"

महाभारत -

श्रीमद्भागवत की ही भाँति विश्रामसागर में महाभारत की कुछ कथाएँ सम्मिलित हैं, जिनका पूर्वानुसार वर्णन यहाँ किया जा रहा है -

विश्रामसागर के रामायण खण्ड के ग्यारहवें अध्याय में - नासिकेत कथा, यमपुरी वर्णन, का वर्णन है। इस कथा को कवि ने महाभारत से लिया है।[1]

यह कथा महाभारत के अन्तिम पर्व स्वर्गारोहणपर्व अध्याय 1[2] में मिलती है।

विश्रामसागर के पन्द्रहवें अध्याय में "मुद्गल ऋषि" की कथा महाभारत के प्रथम भाग वनपर्व[3] में की गयी है।

विश्रामसागर के अठारहवें अध्याय में राजा शिवि की कथा महाभारत के वनपर्व में "राजा शिवि का चरित्र" की है।

1- नासिकेत भारतस्थ की, कहीं वशिष्ठ कथानि 1- अध्याय- 11 पृ0 93

2- स्वर्ग में नारद और युधिष्ठिर की बातचीत तथा युधिष्ठिर को नरक का दर्शन। - महाभारत

3- व्यास जी का युधिष्ठिर के पास आना और उन्हें तप एवं दान का महत्व बताना।

इसी प्रकार इतिहासायन खण्ड के चौतीसवें अध्याय में "युधिष्ठिर यज्ञ, वर्णाश्रम धर्म और हरिभक्ति माहात्म्य का विवरण महाभारत के द्वितीय खण्ड के "आश्वमेधिकपर्व" में "युधिष्ठिर के यज्ञ में नेवले का ब्राह्मण के सत्तु दान की महिमा बखानना ग्राह्य है ।

<u>मनुस्मृति -</u>

विश्रामसागर के तैंतालीसवें अध्याय में राजा श्राद्ध आख्यान के सन्दर्भ में धर्म और शास्त्र के कुछ मत मनुस्मृति के अनुसार कहे है - 'मनुस्मृति' में पितृगण की उत्पत्ति, देवकार्य से पितृकार्य विशिष्ट, देवकार्य, पितृकार्य का अंग है पिंडदान आदि की विधि[1] तर्पण का फल आदि का आधार लेकर विश्रामसागर के कवि ने इतिहासायन के तैंतालीसवें अध्याय की रचना की है -

धर्म शास्त्र मत कहौं कछु मनुस्मृति कु बखानि ।

वाल्मीकि-रामायण -

विश्रामसागर के रामायण खण्ड के इकतीसवें एवं बत्तीसवें अध्याय में कवि ने लिखा है -

कहौं आदि कवि कहनि कछु, नाटक रीति बखानि ।

विश्रामसागर की कथायें क्रमशः मारुतिनन्दन का सीता के प्रति राम-संदेश अर्पण, हनुमान का लंकाप्रवेश, हनुमान अशोक वाटिका में, हनुमान- जानकी के समक्ष, हनुमान द्वारा राम गुणगान, हनुमान-सीता वार्ता, हनुमान द्वारा वाटिका विध्वंस, हनुमान - मेघनाथ युद्ध, रावण-हनुमान सम्वाद, लंका दहन आदि सभी कथायें वाल्मीकि रामायण से ली गयी हैं ।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम् की कथाओं के सन्दर्भ में विश्रामसागर की

- -

1- आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् ।। षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवित् ।। 7 ।। उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।। अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान् समाहितः ।। 8 ।। मनुस्मृति श्लोक 217- 218 तृतीय अध्याय, पृ0 96-97

कथाओं से सम्बन्धित कुछ प्रसंग प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

सीता के दर्शन और हनुमान का सन्ताप -

दीनैर्दीनेन सीतां विलष्टेनोक्त मारुतात ।
लंकाम्लानकोशरां विपदाग्नि दग्धिनीं[1] [5]

इसी प्रकार पञ्चविंशः सर्ग में हनुमान तथा सीता का वार्तालाप द्रष्टव्य -
रावणेन जनस्थानाद् अपहृता यदि ।
सीता त्वमसि भद्रे तन्मामाचक्ष्व पृच्छतः [4]- पृ0 392

इसी प्रकार विद्यासागर के तृतीय काण्ड के अट्ठाईसवें, उन्तीसवें एवं तीसवें अध्याय में राम- रावण समर- वर्णन, श्री राम द्वारा रावण वध, अयोध्या- आगमन और श्री राम-भरत मिलाप, राम राज्याभिषेक वर्णन आदि का सन्दर्भ द्रष्टव्य है - "राम रावण का घोर युद्ध और रावण का वध -
स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्[2] ।
चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम् [20]

सीता की अग्नि परीक्षा[3] राम का स्वागत समारोह तथा राम भरत मिलाप[4] -

तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे [6]

1- श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम् सुन्दरकाण्डम् नवम् सर्ग, पृ0 372
संस्करण 1981 अनुवादक- परमहंस जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।

2- वही, एकोनषष्टितमः सर्गः युद्ध काण्डम्, पृ0 537,539

3- वही, षट्षष्टितमः सर्ग, पृ0 552

4- वही, त्रिसप्ततितमः सर्ग,पृ0 566

षष्ठ: सप्ततितम: सर्ग[1] में राम का राज्याभिषेक, सुग्रीव आदि की विदाई और रामराज्य का वर्णन है ।

पुराण -
=====

विश्रामसागर में पुराणों की कथाएँ अधिकांश रूप से ली गयी हैं पुराणों में क्रमश: वैवर्त, ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, जैमिनि पुराण, कूर्म, वराह, नरसिंह, मार्कण्डेय, विष्णुपुराण, ब्रह्माण्ड, पद्मपुराण की कथाएँ हैं ।

विश्रामसागर की कथाओं के सन्दर्भ में मुख्यत: वैवर्त पुराण, ब्रह्मपुराण, नरसिंह पुराण, विष्णुपुराण, पद्मपुराण के सन्दर्भ दिए जाते हैं -

ब्रह्मवैवर्तपुराण -
============

विश्रामसागर के रतिहरनायन खण्ड के तीसवें एवं इकतीसवें अध्याय में एकादशी माहात्म्य के वर्णन में कवि ने ब्रह्म वैवर्तपुराण का आधार लिया है। ब्रह्म वैवर्त के श्रीकृष्णजन्म खण्ड पूजन की विधि आसन , वसन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, सुगन्ध गन्ध, ताम्बूल, मधुपर्क, पुनराचमनीय जल[2] ।

इसी प्रकार विश्रामसागर के कृष्णायन खण्ड के चतुर्थ अध्याय में कवि ने लिखा है -

कहौं दशम की रीति कछु ब्रह्म वैवर्त भाषि । वि02/4

जिसमें राधिका विवाह का वर्णन किया है। वैवर्तपुराण में राधिका विवाह का विवरण[3] है ।

1- वही, द्विसप्ततितम: सर्ग, पृ0 570

2- ब्रह्म वैवर्त श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, श्रीकृष्ण ध्यान और षोडशोपचार पूजन विधि - अध्याय - 26
अध्याय एकादशी व्रत का माहात्म्य और एकादशी व्रत न करने से हानि। पृ0 435, संक्षिप्त ब्रह्म वैवर्तपुराणांक वर्ष 37, सन् 1963

3- अध्याय 14-15 पृ0 377, 383

विष्णु पुराण -

"विश्रामसागर" इतिहासायन खण्ड के अट्ठारहवें अध्याय में सातों द्वीप एवं ब्रह्माण्ड प्रमाण का वर्णन है, जिसका कि आश्रय कवि ने -

वरणीं कुलीहिता बहु, विष्णु पुराण बखानि ।

विष्णु पुराण में लिखा है इसमें प्लक्ष तथा शाल्मलि आदि द्वीपों का विशेष वर्णन है - महामुने ! इस जम्बूद्वीप में भी भारत वर्ष सर्व श्रेष्ठ है क्योंकि यह कर्मभूमि है देवता भी निरन्तर गान करते हैं -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।
कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्म भूते ।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥[1]

नृसिंह पुराण -

प्रह्लाद कथा वर्णन एवं नृसिंह अवतार कथा नृसिंह पुराण में नृसिंहावतार हिरण्यकशिपु की वरदान प्राप्ति और उससे त्रास हुए देवों द्वारा भगवान की स्तुति[2] नृसिंह पुराण के इकतालीसवें अध्याय में प्रह्लाद की उत्पत्ति और

1- भारतादि नौ खण्डों का विभाग-श्रीमद् विष्णु पुराण, द्वितीय अंश-
2/3/24-25

2- यदि त्वं वरदानाय प्रवृत्तो भगवन्मम ।
यद्वृणोम्यहं ब्रह्मन् तत्त्वमे दातुमर्हसि ॥ 5
न शुष्केण न चार्द्रेण न जलेन न वह्निना ।
न काष्ठेन न कीटेन पाषाणेन न वायुना ॥ 6
नायुधेन न शूलेन न शैलेन न मानुषैः ।
न सुरैरसुरैश्चापि न गन्धर्वैर्न राक्षसैः ॥ 7
न किन्नरैर्न यक्षैश्च विद्याधरभुजंगमैः ।
न वानरैर्मृगैश्चापि नैव मातृगणैरपि ॥ 8
नाभ्यन्तरे न बाह्ये तु नान्यैर्मरणहेतुभिः
न दिवा न च नक्तं मे त्वत्प्रसादात् भवेन्मृतिः ।
इति मे देवदेवेश वरं त्वत्तो वृणोम्यहम् ॥
नृसिंह पुराण- अध्याय-40, पृ0 124, श्लो 16

हरि भक्ति से हिरण्यकशिपु की अप्रसन्नता । अध्याय 44 में नृसिंह का प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिपु का वध -

तावत्तु स्फुटितस्तम्भो दीप्तिमो दैत्यसूनुना । 12

आदर्शं स्तो दैत्यस्य वैसो यः प्रतिष्ठितः ।

तन्मध्ये दृश्यते स्म नृसिंहतनुमायतम् ।

अतिरौद्रं महाकायं दानवानां भयंकरम् ।

महानेत्रं महावक्त्रं महादंष्ट्रं महाभुजम् । 14

महानखं महापादं कालाग्निसदृशाननम् ।

कर्णान्तव्यावृतविस्तारवदनं यातिभीषणम्[1] ।। 15

पद्म पुराण -

विद्यासागर रामायण खण्ड के सप्तम् अध्याय में गौतम ऋषि की कथा का वर्णन है ।

तत् सर्वविषयाणामनुक्रमादनं नारदीयपुराणे उक्तं यथा -

बृहद्गौतमखण्डे -

गौतमाख्यानकं चैव शिवगीता ततः स्मृता ।

कन्यानाशी रामकथा भारद्वाजसमाश्रिता[2] ।।

अग्नि पुराण -

विद्यासागर के बलिदानायन खण्ड के उन्नीसवें अध्याय में गंगा-नदी की उत्पत्ति तथा गंगा के माहात्म्य का वर्णन किया है। यह कथा अग्नि पुराण में मिलती है ।

अग्न्यध्याय -

गंगामाहात्म्यमाख्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा ।

येषां मध्ये याति गंगा ते देशाः पावनाः वराः ।। [1]

1- नृ०पु० अंक 19, अध्याय - 44 पृ० 145

2- पुराण विमर्श - बलदेव उपाध्याय
अष्टादशपुराणानां विषयानुक्रमणिका (ख) पृ० 13

सन्तारकारी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी । यावदस्थि गंगायां तावत् स्वर्गे स तिष्ठति[1]
॥ 4 ॥

उपर्युक्त विवेचन से मैं इस निष्कर्ष पर निकलती हूँ कि विश्रामसागर के कवि ने सभी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन कर रखा था साथ ही उसने विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों - श्रीमद्भागवत , महाभारत, मनुस्मृति एवं अनेकों पुराणों का बहुत ही अच्छा ज्ञान था ।

(ब) धर्म, नीति, दर्शन, कामशास्त्रादि का ज्ञान -
==================================

धर्म -
===

धर्म एक ऐसा विषय है जिसकी विस्तृत अभिव्यक्ति आचरण में ही होती है, उसको लिख कर, बोलकर, परिभाषा-बद्ध नहीं किया जा सकता, क्यों कि धर्म देश कालानुसार परिवर्तित होता रहता है । धर्म अपनी सहज भावना के द्वारा मानव को सद्-असद् का अनुभव कराता रहा है ।

हमारा हिन्दू धर्म अति विशाल है। उसके बीज हमारे ऋषि मुनियों ने अपने पवित्र , त्यागमय जीवन के द्वारा सामाजिक हृदय में दृढ़ प्रयत्न से बोये हैं ।

आज "मानव" देवत्व और पशुत्व के संधिकाल में खड़ा है। शुद्ध-आचरण से वह देवत्व प्राप्त कर सकता है और दुराचरण से पशु बन सकता है । ऐसी स्थिति में शासन द्वारा निर्मित कानून मानव की अधो: गति के ही माध्यम बने हैं, सुधार के नहीं उदाहरणत: दुर्जन प्रवृत्ति वाला व्यक्ति गलत कार्य करने के उपरान्त भी सही प्रमाण न मिलने के कारण सम्मान के साथ रहता है और कुमार्ग की ओर ही प्रवृत्त होता जाता है। जब कि स्वयं को धर्म से अनुशासित करने वाला व्यक्ति अपने आचरण की प्रत्येक भूल का प्रतिकार कर

1- दशाधिकशततमोऽध्यायः, गंगामाहात्म्यं, अग्निपुराण-
महर्षि वेदव्यास,
अनुवादक- आचार्य बलदेव उपाध्याय

लेता है । उस व्यक्ति में आत्मा संयम के संस्कार जन्म लेते हैं ।

विश्रामसागर एक धार्मिक ग्रन्थ है। विश्रामसागर के कवि भी धार्मिक भावना से ओत-प्रोत है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में गृहस्थ धर्म, धर्म-अधर्म, धर्म के लक्षण, गुण आदि का सविस्तार वर्णन किया है, ग्रन्थ के धार्मिक स्थलों की विवेचना करने से पूर्व धर्म क्या है ? यह समझना अपेक्षित है । -

धर्म क्या है? इस विषय में अनेक विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। मीमांसा शास्त्र के अनुसार चोदना लक्षणो, अर्थों धर्मः यह परिभाषा दी गयी है। जिसका तात्पर्य यह है कि जो तत्व हमें सत्कर्म में प्रवृत्त होने की शिक्षा देता है, उसे धर्म कहते हैं । वास्तव में "धर्म" शब्द संस्कृत की "धृ" धातु से निष्पन्न हुआ है । इसका तात्पर्य यह है कि ध्रियते अनेन इति धर्मः अर्थात् इसके द्वारा यह समाज धारण किया जाता है वह धर्म है । आर्थात् जिस जिस चीज के कारण, जिस शक्ति के कारण, जिस भाव के कारण, जिन नियमों के कारण, जिस-व्यवस्था के कारण, कोई चीज टिके वह धर्म है । इसीलिए सम्पूर्ण प्रजा, जन मानस और उससे भी आगे सृष्टि और उसकी धारणा धर्म के द्वारा ही होती है । कुछ लोग 'धारणाधर्मः' यह मानकर समझते हैं कि मनुष्य की श्रेष्ठ धारणा ही धर्म है । जैनाचार्यों ने "अहिंसा परमो धर्मः" के सिद्धान्त को मानकर अहिंसा को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। धर्म शास्त्रीय आचार्यों ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य दया, दान आदि दस विशेषताओं को सामूहिक रूप में धर्म की संज्ञा दी है । पुराणों में "नहि सत्यात् परो धर्मः" यह कहकर सत्य को धर्म माना गया है । गोस्वामी तुलसी के अनुसार परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।। अर्थात् परोपकार ही धर्म है । इस प्रकार धर्म

1- धर्म बन्धन नहीं आधार है - राष्ट्र सेविका

(वन्दनीया मौसी जी द्वारा सन् 1956 में मराठी राष्ट्र सेविका अंक के लिए लिखे लेख का अनुवाद - सम्पादिका)

की अनेक परिभाषाएँ की गयी है । अंग्रेजी का Religion शब्द धर्म का पर्याय माना जाता है किन्तु वास्तव में धर्म Religion से भिन्न है । धर्म और सम्प्रदाय अलग - अलग हैं । सम्प्रदाय को ही धर्म नहीं मानना चाहिए । वास्तव में धर्म मानव की वे श्रेष्ठ धारणाएँ हैं जो चित्त को पवित्र रखती हैं, जीवन को आदर्श बनाती है और जिन पर आचरण करने से आत्मा को परम सन्तोष होता है ।"धर्मो रक्षति रक्षितः"का सिद्धान्त इसी बात को सूचित करता है कि यदि हम धर्म की रक्षा करते हैं तो धर्म हमारी भी रक्षा करता है ।

यद्यपि धर्म एक है किन्तु अपनी-अपनी मान्यताओं के आधार पर समाज के अनेक वर्गों ने अलग-अलग सम्प्रदाय को ही धर्म घोषित कर दिया है । जैसे , हिन्दू, पारसी, बौद्ध, जैन आदि। हिन्दू धर्म में भी सम्प्रदाय भेद से अनेक धर्म माने गए हैं जैसे - वैष्णव धर्म, शैव धर्म , शाक्त आदि ।

प्रस्तुत ग्रन्थ विश्रामसागर में वैष्णव धर्म का ही गुणगान किया गया है। समस्त ग्रन्थ में अनेक धार्मिक आख्यानों एवं विवरणों का उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर मैं कह सकती हूँ कि "विश्रामसागर" वैष्णव धर्म का आकर [खदान] ग्रन्थ है । इसमें वैष्णव मत के अनुसार धर्म के विविध अंगों की व्याख्या की गयी है और वैष्णव धर्म को ही सर्वोपरि माना गया है । अनेक स्थलों से यह बात प्रमाणित की जा रही है -

दश गौ मारे पाप, सहस एक द्विज संहारे ।
दश द्विज वधे जो पाप , एक स्त्री के मारे ।।
दश स्त्री वध पाप, एक कन्या वध होई ।
दश कन्या वध पाप, यती एक मारे सोई ।।

इस प्रकार गोवध द्विजवध, स्त्रीवध, कन्या वध, और यति वध सभी पाप माने गये हैं, जो उत्तरोत्तर अति दीर्घ वध माने गये हैं । विरक्त का वध सर्वथा अनुचित मानागया है।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 5 पृ0 44

जो कछु धर्माधर्म कमावै । अंत समय सो संग सिधावै ।[1]
अधरम करै भरै यम भाता । धर्म ते लहै अमरपुर जाता ।।

यहाँ पर धर्म से सुरपुर और अधर्म से यमपुर की प्राप्ति होती है, इस तथ्य को बताकर धर्माचरण को ही कल्याण कारक मानकर उस पर चलने की प्रेरणा दी गई है ।

कह शिवि सुनहु सुजान, शरणागत रक्षा करौ ।
यहि सम धर्म न आनु सो मैं निज हिरदय धरयो ।।

यहाँ शरणागत की रक्षा को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा गया है । मानस* में भी इसका महत्व बताया गया है यथा - शरणागत कहँ जो तजहिं, निज अनहित अनुमान ।
ते नर पामर पापमय तिनहिं विलोकत हानि ।।[सुन्दर काण्ड]

सोइ पंडित सोइ शूर, सतिवादी मति धीर ।
शीलवन्त ज्ञानीव जो, हरै पराई पीर ।।[2]

यहाँ पर "परपीड़ाहरण" को ही धर्म कहा गया है, क्योंकि "परपीड़ा सम नहि अधमाई", इस आधार पर परपीड़ा महान् पाप है, अतः"परपीड़ाहरण"महान् धर्म सिद्ध होता है ।

गृहस्थाश्रम को धर्म है याही । हरिजन आइ विमुख नहि जाही ।
जो कछु सम्पत्ति कहँ सो दीजै । सुमधुर वचन भाखि मन लीजै ।।
जो निज कहा करै पति केरा । सो पावै सति लोक बसेरा ।
सुनि पति वचन नारि सुख पाई । कीनी वचन कपट नहिं राई ।।[3]

यहाँ पर कवि ने गृहस्थाश्रम का मुख्य धर्म हरिजन को विमुख न करना, बतलाया गया है । भारतीय-संस्कृति में तो" अतिथि देवो भव" का सिद्धान्त ही मान लिया गया है। इसी प्रकार पतिव्रता नारी के लिए पति की आज्ञाकारिता ही श्रेष्ठ धर्म बतलाया गया है । पतिव्रत्य का यह सिद्धान्त प्रायः सभी पुराणों एवं स्मृतियों में अनेक बार

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 10, पृ0 85
2- वही, वही, अध्याय- 18, पृ0 166
3- वही, वही, अध्याय- 19, पृ0 174

पुष्ट किया गया है । रामचरितमानस में तो यहाँ तक कहा गया है :-

बधिर अंध क्रोधी अति दीना
ऐसेहु पतिकर कर अपमाना ।
नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।

अतः यह सिद्ध हुआ कि :-

"पति रेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ।।

अर्थात पति ही नारी का सर्वश्रेष्ठ देवता है ।

नीति -
=====

नीति की बातें कहना - हमारी संस्कृति की एक अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध परम्परा रही है । हिन्दी के सम्पूर्ण-साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक बहुत ही कम कवि ऐसे होंगे, जिनके काव्य में किसी न किसी रूप में नीति काव्य न मिल जाये।[2]

हम अपने दैनिक जीवन में साहित्यिक माध्यमों और विद्वान तथा साधारणजनों के मुख से नीति काव्य सुनते रहते हैं । इन नीति वाक्यों का हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, क्यों कि इनमें हमारे पूर्वजों द्वारा किए गए जीवन सम्बन्धी अनुभवों का वह सार होता है जो हमारे वर्तमान एवं भविष्य जीवन के लिए पथ प्रदर्शक का काम देता है ।

नीति शब्द के विभिन्न अर्थ -

व्यापक अर्थ -

हिन्दी नीति काव्य पर शोध करने वाले समर्थ विद्वान डाक्टर भोलानाथ तिवारी के शब्दों में -"नीति" शब्द का सम्बन्ध संस्कृत की "नी" धातु से है, जिसका अर्थ - ले जाना होता है अर्थात् धातु की दृष्टि से "नीति" वह

1- "मानस" अयोध्याकाण्ड[अनसूया सीता सम्वाद]

2- हिन्दी - नीति काव्य: उद्भव और विकास- रामना थ शर्मा

है जो "ले जाए" या "आगे ले जाए"[1] ।

ग0 संकुचित अर्थ ::

नीति शब्द के कुछ संकुचित अर्थ भी होते हैं जैसे - किसी कार्य की सिद्धि के लिए चली जाने वाली चाल अथवा ढंग, युक्ति , उपाय, हिकमत तथा दृष्टिकोण आदि ।

नीति शब्द की व्याख्या -

प्राचीन ग्रन्थों में "नीति" शब्द या नीतिशास्त्र" की व्याख्या करते हुए उसके अनेक अर्थ किए गए हैं, जिनका मूल अभिप्राय एक ही है, अर्थात् मानव का कल्याण । तत्सम्बन्धी केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा । "नीति- मंजरी" नामक संस्कृत ग्रन्थ के रचयिता द्याद्विवेदी का प्रथम श्लोक इस प्रकार है - "सर्व कर्तव्यभेदैर्न कर्तव्यमित्यात्मनो यो धर्मः सा नीतिः" अर्थात् जो कर्तव्य और अकर्तव्य को स्पष्ट करे, वही नीति है । डॉ0 भोलानाथ तिवारी ने नीति की विभिन्न व्याख्याओं के आधार पर नीति की निम्नलिखित परिभाषा स्थिर की है -

समाज को स्वस्थतम सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति कराने के लिए जिन विधि या निषेध - मूलक वैयक्तिक और सामाजिक नियमों का विधान देश,काल और पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है उन्हें "नीति" शब्द से अभिहित करते हैं ।"

नैतिक मान्यतायें परिस्थिति जन्य -

इतिहास का प्रत्येक युग अपनी कुछ नैतिक मान्यतायें लेकर चलता है । प्रत्येक नवीन युग में कुछ पुरानी नैतिक मान्यतायें छूट जाती है और नवीन परिस्थितियों के अनुकूल कुछ नवीन नैतिक मान्यताओं को उस युग द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है । परन्तु कुछ नैतिक मान्यतायें ऐसी होती हैं जो प्रत्येक युग में समान रूप से गृहीत की जाती रही हैं क्योंकि उनमें कुछ ऐसे शाश्वत मूल्योंवाले

1- हिन्दी नीतिकाव्य डॉ0 भोलानाथ तिवारी

तथ्य रहती हैं जो आदिकाल से लेकर आज तक प्रत्येक युग एवं प्रत्येक समाज द्वारा समान रूप से स्वीकार किये जाते रहे हैं। "सत्य बोलना" सामाजिक मान्यताओं का एक ऐसा नैतिक मानदण्ड रहा है कि आज तक कोई भी इस नैतिक मान्य का खण्डन करने का साहस नहीं कर सकता है। परन्तु सामाजिक दृष्टि से व्यापक दृष्टाओं ने अनेक बार एवं अनेक प्रकार के अनुभवों द्वारा जब यह देखा कि सदैव और प्रत्येक परिस्थितियों में सत्य बोलना कभी कभी मानव के लिए अत्यन्त घातक एवं दुखदायी सिद्ध होता है, तो उन्होंने "सत्यं ब्रूयात्" की मान्यता में संशोधन उपस्थित कर एक नवीन मान्यता स्थापित की कि - सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यं न प्रियम्।" अर्थात् सत्य बोलो प्रिय बोलो सत्य और प्रिय एक साथ मत बोलो। सम्भव है कि आपके द्वारा बोला गया सत्य किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी अन्य के लिए अथवा स्वयं आपके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकता है। इसलिए "नीति" सम्बन्धी उक्तियों में सदैव "व्यवहार" और "परम्परागत बुद्धिमत्ता" को विशेष महत्व दिया जाता रहा है। नैतिक-मान्यताएँ परिस्थितिजन्य तो होती ही हैं परन्तु साथ ही उनमें अपनी परिस्थितियों का उल्लंघन कर नैतिक नव निर्माण करने की भी प्रबल आकांक्षा और अदम्य शक्ति भरी रहती है।[1]

सिद्धान्तसागर एक धार्मिक ग्रन्थ होने के कारण नैतिक सूक्तियों से ओत प्रोत है, क्यों कि नीति का धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। "नीति" मानव को सन्मार्ग में चलने की प्रेरणा देती है और धर्म भी सत्मार्ग की उपदेष्टा है, अतः नीति को धर्म से सदैव सम्बद्ध माना जाता है। नीति विहीन धर्म, धर्म नहीं, अधर्म है, क्यों कि अनैतिक कार्य को कभी धर्म नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार नीति को धर्म का अनिवार्य अंग मानना उचित है। सिद्धान्तसागर में नीति के इसी स्वरूप का पोषण किया गया है। निम्नलिखित उद्धरणों से उक्त

1- साहित्यिक निबन्ध, सप्तम संस्करण 1978, राजनाथ शर्मा पृ0 746

कथन की पुष्टि की जा रही है -

गौ बटुक द्विज चोर, कुलटा नारि व्यभिचारिणी ।
पती भ्रष्ट धन चोर, तदपि न इनको मारिये ।।[1]

यहाँ पर धर्म के अनुरोध पर ही उपर्युक्त लोगों को अवध्य माना गया है, अन्यथा अनीति का आचरण तो क्षम्य है ही नहीं । इससे सिद्ध होता है कि कवि इस पौराणिक नीति का ही समर्थक है, जिसमें अहिंसा को बल मिलता है । "अहिंसा परमो धर्मः ।

जो कोई करै सो आपु को, पर को करै न कोय ।
अपना कीन्हा पाव है, ऊँच नीच किन होय ।।[2]

"अवश्य मेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" इस नीतिवाक्य के अनुसार ही यह उक्ति कही गई है ।

जहँ लगि खोटे कर्म है, सो सब दुख की खानि ।
लोभ करि नर परत हैं, चौरासी में आनि ।।[3]

यहाँ पर धार्मिक दृष्टिकोण से ही खोटे कर्मों की निन्दा की गई है, क्यों कि लोक में भी दुष्कर्मा व्यक्ति आदर का पात्र नहीं होता और परलोक में भी दुर्गति होती है । इस पर यह नीति वाक्य धर्म की पृष्ठभूमि पर ही आधारित है ।

लोभ क्रोध वश परि रहै, करै न रक्षा तासु ।
सो नर पापी नीच अरु, मुख नहिं देखिय तासु ।।[4]

यहाँ पर भी नैतिक आचरण के अन्तर्गत शरणागत की रक्षा करने का विधान किया गया है और ऐसा न करने पर उस व्यक्ति को नीच, पापी या नराधम माना

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 5 पृ0 44
2- वही, वही, अध्याय-12 पृ0 108
3- वही, वही, अध्याय-12 पृ0 111
4- वही, वही, अध्याय- 18 पृ0 165

गया है ।

मेघ नदी जल भूमि द्रुम , सन्त सज्जन जो हेत ।

केवल विधि परकट किये , परमारथ के हेत ।।[1]

यह भी नीतिमय सूक्ति "परोपकार की पोषिका है। इस पर भर्तृहरि की नीति शतक के "स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षा:" का प्रभाव स्पष्ट है । "परोपकाराय- सतां विभूतय: यह सिद्धान्त धार्मिक नीति का मूल सिद्धान्त है ।

पचि पचि मरयो कुटुम्बहित, परमारथ नहिं कीन ।

धिक धिक ताकी बुद्धि को, तजि अमृत विष पीन ।।[2]

यहाँ कुटुम्ब पोषण मात्र की निन्दा की गई है, क्यों कि इससे व्यक्ति "स्व" पर केन्द्रित हो जाता है, अत: परोपकार के लिए जीवन में प्रयत्नशील होना चाहिए, इस नैतिक आचरण पर कवि ने विशेष बल दिया है ।

सुन सुत मम उपदेश, नहीं नारि सुत [illegible] ।

तदपि मात्र अकुलेश, इन विश्वास न कीजिए ।।[3]

यहाँ पर "काहू की नहीं प्रभु तज भारी । बैठ सभा कवि मानस गुनी " मानस की इस नैतिक कथन का प्रभाव है और अधिक रूप से "चाणक्य नीति" का प्रभाव प्रतीत होता है, जो अकुशल रहने के लिए मानता है, जीवन जीने की शक्ति है, भले ही इसमें धर्म का प्रभाव न हो ।

मानव परारथ कर्म शुभ, तहि पाय नर देह ।

जीवन ताको सफल है, सब जग के सुख देह ।।[4]

यहाँ" मानवजीवन " की सफलता "परोपकार" पर ही निर्भर है, इस नैतिक उपदेश में भी धर्म की छाप है । "मानस" में मानव शरीर के विषय में लिखा है - "साधन धाम मोक्ष कर द्वारा । पाइ न जेहि परलोक सँवारा ।।

1- विश्रामसागर, रघुनाथदास कृत, अध्याय- 18 पृ0 168

2- वही, वही, अध्याय- 19 पृ0 174

3- वही, वही, अध्याय- 20 पृ0 183

4- वही, वही, अध्याय-21 पृ0 194

अतः मनुष्य शरीर से परोपकार कर्तव्य है ।

पढ़न सुनन सोइ सुफल सो, राम चरण रति होइ ।[1]
नातर फिरि पुरख भ्रमा, बाद न ठाने कोई ।।

यहाँ "रामभक्ति" की महत्ता बतलाने के लिए पठन, श्रवण की तभी सार्थकता मानी गई है, जब रामभक्ति में मन लगे । "विद्या बिनु विवेक उपजाये " इस रूप में तुलसी ने भी यही बात कही है ।

दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता, कैसो होय अधीन ।[2]
ज्यों जल कोमल में सो , लोक वक्र गति लीन ।।

यहाँ नीति परक बात की पुष्टि में दुष्ट की अपरिवर्तनीय स्थिति का उल्लेख किया गया है "सो सौंक जिमि वक्र गति , यद्यपि सलिल समान" [मानस] इसी प्रकार एक कवि ने भी कहा है ।[3]

दुर्जन तजै न दुष्टता, सज्जन तजै न हेत ।[4]
कज्जल तजै न श्यामता, मोती तजै न श्वेत ।।

सम्भवतः उक्त दोहा कवि ने किसी सूक्ति ग्रंथ से गृहीत किया है ।

युवतिन की यह रीति , पुरुष मनोहर देखि कै ।[5]
करहिं काम बस प्रीति , बहुरि बजाई बाँसुरी ।।

यहाँ पर "पुरुष मनोहर निरखत नारी" "मानस" के इस अंश के आधार पर ही कवि ने उक्त नैतिक वक्तव्य लिखा है । ज्ञातव्य है कि यह कथन सर्वत्र नहीं घटता । "शूर्पणखा" जैसी स्वच्छन्द एवं कामुक स्त्रियों के लिए ही लागू होता है ।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 25, पृ० 235

2- वही, वही, अध्याय- 41, पृ० 415

3- दुष्ट न छोड़ै दुष्टता, सज्जन तजै न हेत ।
कज्जल तजै न श्यामता, मोती तजै न सेत ।। [नीतिसुधा]

4- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 41, पृ० 417

5- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 41, पृ० 430

यदि कहीं सम्पूर्ण नारी जाति पर यह आक्षेप होता तो सीता, सावित्री, मैत्रेयी, अपाला जैसी सती एवं विदुषी नारियाँ समाज में पूज्य होतीं ।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ -

नीति काव्य का प्राण रहे हैं इनके प्रयोग द्वारा भाषा में प्रसाद गुण की एक ऐसी सहज, सरस, गति और शक्ति आ जाती है कि वह सब के लिए सुबोध बन जाती है । संक्षिप्तता और मार्मिकता की रक्षा भी इन्हीं के द्वारा अधिक सम्भव होती है । बाबा रघुनाथ दास रामसनेही जी ने भी नीति की उक्तियों में मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है । जैसे- पचि पचि मरयो, दुष्ट न छाँड़ा दुष्टता ----------जौं कछु मति लीन, जौ कोइ कौ लौ आप को बादि ।

शैली की दृष्टि से स्पष्टता, सरलता एवं प्रभावविष्णुता को नीति के सन्दर्भ में प्रधान विशेषता मानी जाती है विश्रामसागर के कवि ने अभिधार्थ पर ही विशेष ध्यान रखते हुए सरल एवं प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है । दोहा एवं सोरठा छन्दों में ही कवि ने नीति परक बातें कही हैं ।

दर्शन -

साहित्य या काव्य का दर्शन से घनिष्ट सम्बन्ध है, क्यों कि काव्य के आन्तरिक तत्व भी जीवन के आन्तरिक तत्वों की भाँति दर्शन तथा तत्व चिन्तन पर अवलम्बित है ।

यों तो द्रष्टा द्वारा सम्यक् या परिपूर्ण दर्शन {देखना} बुद्धि और भावना के सम्मिलित योग से ही सम्भव है {"यः पश्यति सः पश्यति" गीता:, कवि मनीषी परिभूः स्वयम्भुः उपनिषद्}, पर सामान्यतः दार्शनिक उसी केवल तर्क व बुद्धि बल से चिंतन कर्म करने वाला ही समझा जाता है ।

दार्शनिकता का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है जीवन और दर्शन एक ही उद्देश्य के दो परिमाण हैं/दोनों का परम लक्ष्य एक ही है} परम प्रेम की

1- साहित्यिक निबन्ध - त्रिभुवन सिंह प्रथम संस्करण पृ० 936

खोज करना । इसी का सैद्धान्तिक रूप दर्शन है और व्यावहारिक रूप जीवन । जीवन की सर्वांगीणता के जो मूल, सूत्र या तत्व है उन्हीं की व्याख्या करना दर्शन शास्त्र का अभिप्राय है । दार्शनिक दृष्टि से जीवन पर विचार करने की एक निजी पद्धति है, अपने विशेष नियम है । इन नियमों व पद्धतियों के माध्यम से जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना ही दर्शन का ध्येय है ।

इस विराट ब्रह्माण्ड के असंख्य, अद्भुत पदार्थों के समक्ष जीवन की स्थिति और सत्ता क्या है एवं मनुष्य के इन रोना, हँसना, सोचना, विचारना, सुख, दुःख, पुण्य-पाप, जन्म-मरण आदि विभिन्न रूपों का रहस्य क्या है ? इन्हीं जिज्ञासाओं को लेकर दर्शन शास्त्र का जन्म हुआ है और व इन्हीं पर उसमें विचार किया गया है ।

जिज्ञासा का अर्थ है ज्ञान की इच्छा [ज्ञातुं इच्छा] यही जिज्ञासा हमें जीवन के प्रति जगत के प्रति नये - नये अन्वेषणों , अनुसन्धानों और अविष्कारों में प्रवृत्त करती है । इन सभी क्रियाओं एवं प्रवृत्तियों से हमें नया ज्ञान मिलता है।नया दर्शन उपलब्ध होता है क्यों कि जीवन की मीमांसा करना ही दर्शन का एक मात्र उद्देश्य है अत: जीवन से सम्बन्धित जितने भी आध्यात्मिक, आधि दैविक तथा आदि भौतिक पदार्थ है, उनका तात्विक विश्लेषण करना भी दर्शन का कार्य हो जाता है ।

विश्रामसागर भक्ति प्रधान ग्रन्थ है किन्तु इसमें दर्शन की भी समुचित मात्रा है। समुचित मात्रा ही क्या अधिक यों कहिये कि विश्रामसागर में दर्शन प्रचुर मात्रा में है। विश्रामसागर का विश्लेषण करने पर यह लगता है कि बाबा रघुनाथ दास रामसनेही जी कवि होने के साथ - साथ एक दार्शनिक भी थे यथा -

अहंकार निरुवारि, कुतरक मोह बुझाइ ।
मन विकार विचारि, ज्ञान रूप अनुसरहि ।।

1- वाचस्पति गैरोला- भारतीय दर्शन पृ0 ।।

में तुलसी ने भी कुछ ऐसा ही कहा है -

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी । [विनयपत्रिका]

पूरण है सब घट में सोई । कोन से ठौर जहाँ नहिं होई ।
पाँच पचीस तीन घट सेरे । पुरुष रहत पुनि विमल बौरे ।।[1]

जहाँ ईश्वर की सर्वव्यापकता, जगत् के पंच तत्व या सांख्य के 25 तत्व, गुणत्रय आदि का जो उल्लेख है, वह यह सिद्ध करता है कि कवि को दर्शन का ज्ञान था

[ग] ग्रन्थ की लोकप्रियता एवं पूर्वग्रन्थों का प्रभाव -

किसी भी ग्रन्थ की लोक प्रियता एवं उपादेयता तभी मानी जाती है जब समाज उसे मान्यता देता है और वह लोक मानस में ही नहीं, वह अपितु विद्वत्समाज में भी समादृत हो जाती है, अन्यथा रचयिता का श्रम व्यर्थ हो जाता है । महाकवि तुलसी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है -

जे प्रबन्ध नहिं बुध आदरहीं ।
सोइ श्रम बादि बाल कवि करहीं ।।[2]

अब प्रश्न उठता है कि किसी ग्रन्थ की लोकप्रियता के कारण कौन कौन से होते हैं ? मेरे विचार से किसी ग्रन्थ की सरसता, सरलता एवं उपयोगिता उसे लोकप्रिय होने में महत्वपूर्ण कारण होते हैं । उदाहरणार्थ "रामचरित मानस" 'बिहारी सतसई' और "सूरसागर" पर्याप्त लोकप्रिय रचनायें है और इन तीनों में उक्त तीनों हेतु विद्यमान हैं । इन कारणों के अतिरिक्त किसी विशेष रचना की लोकप्रियता के कुछ विशेष कारण भी होते हैं । "विश्रामसागर" भी पर्याप्त

1- विश्रामसागर, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9 पृ० 613

2- रामचरित मानस, बालकाण्ड, तुलसीदास

लोक प्रिय ग्रन्थ है, जिसकी लोकप्रियता के निम्नांकित कारण हैं -

1- वैष्णव संस्कृति का पोषण

2- सरल भाषा शैली

3- अर्थ बोध में सरलता

4- भक्ति नीति एवं दर्शन में समन्वय

5- गेयता

6- रोचकता

7- धार्मिकता

8- राम,कृष्ण एवं भक्तों के कथानक

9- कवि की बहुज्ञता

10- रसात्मकता

11- सारतत्व

इन कारणों की सोदाहरण मीमांसा भी अपेक्षित है, जो इस प्रकार है -

1- वैष्णव संस्कृति का पोषण -

भारत वर्ष धर्म प्रधान देश है , आस्था का सम्बल अपनाकर लोक जीवन में मनुष्य त्राण पाता आया है और अब भी पा रहा है । यद्यपि इस देश में अनेक धर्म एवं सम्प्रदाय प्रचलित हैं, किन्तु वैष्णव संस्कृति सर्वाधिक लोक प्रिय सिद्ध हुई है । इसके भी कुछ कारण हैं - प्रथम एवं प्रधान कारण यह है कि इसमें ईश्वर के सगुण रूपों का महत्व दिया गया है, जो जीवन के लिए आदर्श एवं प्रेरणाप्रद है । द्वितीय कारण यह है कि इस वैष्णव भक्ति के क्षेत्र में संकीर्णता नहीं है, सवर्ण एवं निम्नवर्णी सभी को वैष्णव होने का अधिकार है । तृतीय कारण यह है कि व्रतमाहात्म्य दान महिमा,, गुरु महिमा, तपस्या, का महत्व अहिंसा की धारणा, नैतिक आचरण, पुनर्जन्म पर विश्वास आदि आदर्शों की प्रतिष्ठा की गयी है । उदाहरणार्थ - "विश्रामसागर" से कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो सकेगी -

(क) व्रतमाहात्म्य -

एकादशी व्रतमाहात्म्य में कवि ने व्रत विधान एवं व्रत

वर्णन किया है। यथा -

सदा सचित्त करैं जे दाना । पूजैं उत्तम विप्र सुजाना ।
होम यज्ञ तीरथ व्रत करहीं । जप तप गायत्री मन धरहीं ।।

: : :

काहु केर बुरा नहिं चहहीं । रक्षा करत जीव की रहहीं ।
मान परयो गिरन न देहीं । सत्य वचन चक्री गहि लेहीं ।।
वैष्णव देखि करैं परनामा । रज कण जितने लागैं धामा ।
तितने सहस मन्वन्तर माहीं । बसैं स्वर्ग कहि आगम जाहीं[1] ।।

: : :

ये नैतिक आचरण मानव मात्र के लिए कल्याण प्रद हैं । इनका पालन किसी भी धर्म के विरुद्ध नहीं है, अतः "विश्रामसागर" अपनी इस नैतिक शिक्षा के कारण लोक प्रिय है । सदाचारी दीर्घ जीवी होता है[2] । मनुस्मृति में, देवी भागवत नरसिंह पुराण, शिवपुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि अनेक ग्रन्थों में सदाचार की महिमा का गुणगान किया गया है[3] ।

नारी पतिव्रता जो होई । धर्मवान कोमल चित सोई ।
पति कुष्ठी दारिद्री कामी । रोगी कृपण अन्ध परिधानी[4] ।।

: : :

कामी क्रोधी कैसो होय । नारि हंस सम माने सोय ।

: : :

आश्रम धर्म दृढ़ होई, पिंगल कपोता की सरिस ।
जै स्वर्ग महँ सोय, बहुत काल लगि वासिनी[5] ।।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 9 पृ० 81

2- सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ।। (महाभारत, अनु० 104/74)

3- सदाचार अंक कल्याण पृ० 132-133

4- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 10 पृ० 82

5- वही, वही, अध्याय-10 पृ० 82

इसी सन्दर्भ में गुरुधर्म, कर्मविपाक वर्णन में भी कवि ने नैतिक आचरण का वर्णन किया है यथा -

जब लौ पुण्य करौं समुदाई । जाते जनम स्वर्ग महँ जाई ।
जिन नर दान विप्रन कहँ दीन्हा । काहुकर अपमान न कीन्हा ।।
सब जीवन की दया विचारैं । काहु दुख देवैं नहिं मारैं ।।
वेद पुरान सुनै सुख पावैं । कथा कीरतन में मन लावैं ।।
जोग तपस्या तीरथ करहीं । संयम सहित व्रत अनुसरहीं ।
भक्ति सकल कौ साथी । गोवै दई बाछरा नाथी [1] ।।

(ख) आस्तिकता -

कवि भक्त एवं निष्ठावान होने के साथ साथ आस्तिक भी रहा है। विश्रामसागर में जगह जगह ईश्वर के प्रति उनकी आस्था परिलक्षित होती है। यहाँ पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-यथा -

मन रघुनाथ विचारि के, भक्ति करो अतिभाय ।
नातरु फिरि पछिताहुगे, नर तन बीतो जाय [2] ।।

बहुत जन्म कुकृत कियो, तातें भय नर देह ।
अबै रघुनाथ सौ पाइके, जन्म सुफल करि लेह [3] ।।

x x x

आखिर को थिर ना रहै, मरना तोहिं विशेषि ।
तातें हरि भजि लीजिए, यही लाभ मन देखि [4] ।।

(ग) आदर्श प्रतिष्ठा -

विश्रामसागर की गुरुधर्म, कर्म-विपाक, अधिक कपोत कथा,

1- विश्रामसागर, हरिहरनारायण खण्ड, अध्याय - 12 पृ0 107
2- वही, वही, अध्याय- 12 पृ0 108
3- वही, वही, अध्याय- 12 पृ0 115
4- वही, वही, अध्याय- 12 पृ0 115

बहुला गऊ की कथा, प्रह्लाद कथा अर्जुन एवं रामायण खण्ड आदि कथाएँ आदर्श बताती है तथा जन जीवन के सामने आदर्श प्रस्तुत करती हैं वैष्णव संस्कृति के संग्रह में आदर्श प्रतिष्ठा का महत्वपूर्ण स्थान है उदाहरण दृष्टव्य है, पहीतका धर्म की श्रेणी में आते हैं -

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। {मनु० 6/12}

दान करै सो हरि को अरपै, बोलै सत्य झूठ [illegible] नहिं जल्पै ।
करै भक्ति सतसंगति जावै, सब नर ते बैकुण्ठ सिधावै ।।[1]

विश्रामसागर समस्त वैष्णव के आदर्शों का प्रतिष्ठात्मक ग्रन्थ है जिसमें वैष्णव की विभिन्न विशेषताएँ एकत्र उपलब्ध हैं । सत्य, अहिंसा, सदाचार, गुरुमहिमा, रामनाम का महत्व , चौबीस अवतारों पर श्रद्धा आदि पर विशेष प्रकाश डाला गया है इसमें सर्वोपरि रामनाम के जप का महत्व है।यथा -

जप के नाम प्रभाव तैंहि, कहि न सकै हरि आप ।
तातें संतत कीजिए राम नाम को जाप ।।[2]

{2} सरल भाषा शैली -

किसी भी ग्रन्थ की लोकप्रियता का एक अपरिहार्य कारण सरल भाषा शैली भी होती है । "विश्रामसागर" की भाषा "अवधी" है, जिसमें लोक में प्रचलित उर्दू और फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है।जनता "रामचरित मानस" की भाषा शैली से सुपरिचित हो चुकी थी । फलतः उसी अवधी भाषा में और उसी दोहा, चौपाई की सुपरिचित शैली में "विश्रामसागर" को प्राप्त कर प्रसन्न हो गई और उसने उसे अपना लिया । कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं-

पूरण विधि सब जगत अकाशा । सर्व भिन्न निरगुण परकाशा ।।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 12, पृ० 108

2- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 12, पृ० 68

तातें प्रगट कहावत सोइ । अमय अनन्त रूप जेहि होई ।।[1]

इसी प्रकार गीतिका छंद में एक सरल भाषा का उदाहरण देखिए -

अब देखि सुत की भक्ति को अभिमान पारथ को गयो ।
गिरि धरण श्रीगोपाल के है दीन अत बोलत भयो ।
नहिं मंद मोसम कोउ तुम्हें नाथ हौं सेवा लई ।।
सुत लेहु पर अंगीकार राखत भक्त मोसम नाहई ।।[2]

: : :

जयति राम सुर सुखद नमत मुनि दशमुख गंजन ।
जयति कृष्ण कंसारि असुर प्रणतारत रंजन ।।
जयति बोध श्रुति दोष दनुज कुल पुण्य सुवन ।[3]
जयति कल्की निष्कल नीच क्षिति करिहौ पावन ।।

: : :

जासु उदर बस भुवन अपारा । सोवत सो प्रभु द्रुम मंझारा ।
जगतेहु जेहि मन खेद न होइ । कहाँ कहाँ करि रोवत सोइ ।।[4]

: : :

रामायण खण्ड के अन्तर्गत रावण - अंगद सम्वाद में एक सरल भाषा का और उदाहरण द्रष्टव्य है -

रे रे कपि जग महिं, मोहि को है पग दाई ।
लोक पाल यम काल, नमत मोको नित आई ।।
जहाँ जाहि युध करौं, तहाँ जयहि लै आवौं ।।
असुर न करता कोउ , बहुत का तोहि सुनावौं ।।
कह अंगद तें अजित अहू सो रावण बोरे दियो ।।
सठ सहस भुज बालि बलि , अबध सुमन जेहि दुख दियो ।।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 6 पृ0 56
2- वही, वही, अध्याय- 22 पृ0 203
3- वही कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 4 पृ0 947
4- वही, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 4 पृ0 707

उपर्युक्त उद्धरण पढ़ने के साथ ही उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है तथा बुद्धि पर अत्यधिक जोर डालने की जरूरत नहीं पड़ती है। ऐसी सरल भाषा शैली में जो ग्रन्थ होगा, वह तो स्वतः ही लोक जीवन में हृदय ग्राही हो जाता है । अतः इन उदाहरणों से "विश्रामसागर" की सरल भाषा-शैली का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है, जो इसकी लोक-प्रियता का अन्यतम कारण है ।

(3) अर्थ बोध में सरलता -

किसी भी ग्रन्थ की क्लिष्टता उसकी लोक प्रियता में बाधक होती है। अर्थात् यदि किसी ग्रन्थ की भाषा में सहजता, प्रवाहता एवं अकृत्रिमता होगी, तो उस भाषा में "अर्थ बोधता" का गुण सहज रूप से विद्यमान होगा और जिसमें सहज रूप से अर्थ बोधता होती है वह ग्रन्थ लोक प्रिय हो जाता है । उदाहरणार्थ एक ओर रामचरित मानस की लोक प्रियता आज जन जीवन सर्वोपरि है, वहीं दूसरी ओर केशव जी कवि की "रामचन्द्रिका" क्लिष्ट होने के कारण ही लोकप्रिय नहीं हो सकी, अन्यथा कवित्व की दृष्टि से वह एक उच्चकोटि का महाकाव्य है । प्रस्तुत ग्रन्थ "विश्रामसागर" में कुछ अंशों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र अर्थ बोध में सरलता का गुण विद्यमान है। यथा -

गणिका पावन गयन्द से, बाल्मीकि अघ खानि ।
नाम कहत सब तरि गये, कहँ लगि कहौं बखानि ।।[1]

x x x

जाय जन्म अरु मरण, राम के सुमिरण कीन्हें ।
जाय गुरु से धर्म, कर्म निज स्पर्शि कीन्हें ।।
शान्ति जाय परवसित से, दोष जाय दिये दान ।

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 8 पृ० 73

में उक्त तीनों तत्व समन्वित रूप से विद्यमान हैं, अतः यह ग्रन्थ विशेष लोक प्रिय है । यथा -

भक्ति भावना -

भागवत चरित विश्रामकर, नित सेवै जो कोय ।
अन्तकाल के समय में, तेहि उद्वेग न होय ।।
अब हरि कथा कहौं सुखदाता । सुनौ प्रथम गुरु महिमा ताता ।
गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु पुरारी । गुरु परब्रह्म दीन दुखारी ।।[1]

नीति -

पर उपकार सदा मन भावै । द्वारे अतिथि विमुख नहिं जावै ।
बोलैं वचन नम्र सुखदाई । ते नर जाइ स्वर्ग महँ जाई ।।[2]
दो० जो दोष करै सो आपु को, पर को करै न दोष ।
अपना कीन्हा पाव है, ऊँच नीच बिन दोष ।।[3]

दर्शन -

माया वाद महाठकनि, भूमिका भी जेहि जान ।
सोई अखिल ब्रह्म सो, पुनि पुनि करत बखान ।
पुनि पुनि करत बखान, कुछ ऐश्वर्य मतीते ।
कुछ विज्ञान कुछ भूमि, कुछ सरवज्ञ मतीते ।।
तेहि ब्रह्म न जीव, कहौं तुम कुछ का कारन ।
कुन्द कहै मैं सिन्धु, सो विधि बिन हरिमायन ।।[4]

: : :

1- विश्रामसागर, इतिहासायन खण्ड, अध्याय- 3 पृ0 23
2- वही, वही, अध्याय-3 पृ0 23
3- वही, वही, अध्याय- 12 पृ0 108
4- वही, कृष्णायन खण्ड, अध्याय- 9 पृ0 619

की कथा से सम्बद्ध है, जहाँ पर विष्णु द्वारा जालन्धर के मारने का वृत्तान्त वर्णित है। और अंततः विष्णु द्वारा छल करने पर जालन्धर की पत्नी विष्णु को शाप देती है और विष्णु उसे तुलसी के रूप में अपने सिर धारण करने का वचन देते हैं यथा -

> वृन्दा तन तुलसी में आयी । हर्ष विष्णु निज शीश चढ़ाई ।
> उभय मिलापर वश्यि न कीन्हा । हरि जन तेहि उत्तम पद दीन्हा ।।[1]

इसी प्रकार विष्णु के सम्बन्ध में अन्य अनेक कथानक हैं ।

(ख) राम विषयक -

राम के सम्बन्ध में समस्त रामायण खण्ड ही प्रमाण है, जिसमें बालकाण्ड से लेकर उत्तर काण्ड तक की समस्त राम कथा का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है । इसमें कुछ ऐसे कथानक भी लिए गए हैं, जो रामचरित-मानस में नहीं हैं। उदाहरण - मेघनाद अहिरावण विजय, रामगीता, सुलोचना सती प्रमुख हैं । ये सभी कथानक राम से सम्बद्ध होने के कारण पाठकों की जिज्ञासा एवं कुतूहल के विषय हैं, जो इस ग्रन्थ को लोकप्रिय बनाने में सहायक हैं । इस खण्ड की समस्त कथावस्तु तीस अध्यायों में विभक्त है ।

(ग) कृष्ण विषयक -

विश्रामसागर की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि उसके कृष्णायन खण्ड में द्वादश अध्यायों के माध्यम से श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर पूतना, बकासुर, अघासुर, दधिचोरी, यमलार्जुन, उद्धार, रासलीला आदि के सरस वर्णनों के साथ ही साथ जरासंध वध, स्यमंतक मणि हरण की उत्पत्ति तक के कथानक वर्णित हैं । जो विशेष लोकप्रिय हैं - "कृष्णकाल" के अध्येताओं के लिए भी यह ग्रन्थ उतना ही रोचक है, जितना कि मानस प्रेमियों के लिए ।

(घ) नृसिंह विषयक -

इस ग्रन्थ के 227 पृ0 पर भक्त प्रह्लाद के प्रसंग में नृसिंह अवतार की कथा का विस्तृत वर्णन किया गया है । नृसिंह भगवान की गणना दस अवतारों में

1- विश्रामसागर, अध्याय- 33 पृ0 330

सत्य सुशील सुख हेतु सुखहेतु वसु वचन मन काय रघुनाथ दास[1] ।।

× × ×

यहि विधि बानी देखि दास रघुनाथ जू ।
लीन्हि भक्ति वर माँगि लागि पै हाथ जू ।।
जो यह मंगल गाथै सुनै सप्रीति जू ।
सो तो हरिपुर जाइ मिटै भवभीति जू[2] ।।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि मानस की भाँति "विश्रामसागर" की रचना भी भक्ति प्रदान करने के लक्ष्य से किया गया है । शान्ति प्राप्त करना ही तो जीवन का अन्तिम लक्ष्य है । अतः जीवन के अन्तिम लक्ष्य शान्ति का पथ प्रदर्शक और प्रापक होने के कारण "विश्रामसागर" लोक जीवन में विशेष प्रिय है ।

पूर्व ग्रन्थों का प्रभाव -

विश्रामसागर, एक विशद कथा प्रधान ग्रन्थ है, जिसमें विभिन्न-पुराणों एवं अनेक शास्त्रों के साथ ही साथ राम कथा के विभिन्न ग्रन्थों का प्रभाव देखा जा सकता है । यदि हम यह कहें कि इसमें रामचरित मानस का प्रभाव सर्वोपरि है, तो अतिशयोक्ति न होगी। जैसे राम-कथा-ग्रन्थों में वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म रामायण, 00000000 महारामायण, लोमश रामायण, रघुवंश महाकाव्य, हनुमान नाटक, लोमश कण्ड, अभिनिवेश रामायण आदि रामायण, वृहद रामायण गीतावली और रामचन्द्रिका का प्रभाव कई अंशों में द्रष्टव्य है, जैसा कि आगे चल कर उसका स्पष्टीकरण किया जायगा । उक्त राम कथा ग्रन्थों के अतिरिक्त मनुस्मृति श्रीमद्भागवत, गीता, इतिहास समुच्चय, धर्मों सार पुराण, गौरीतन्त्र, भक्ति-रत्न, हंस उपनिषद, गर्ग संहिता, अगस्त्य संहिता, रम्भाभार जैसे ग्रन्थों का भी आंशिक प्रभाव पड़ा है, जिनके प्रमाण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। जहाँ तक लक्षण ग्रन्थों का प्रश्न है, उनमें छन्दशास्त्र, नायिका भेद, आदि के लिए भी कवि हिन्दी एवं संस्कृत के लक्षण

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 22 पृ० 980

2- वही, वही, अध्याय- 4 पृ० 704

ग्रन्थों का कमी प्रतीत होता है। इसी अध्याय के "क" भाग में श्रीमद्भागवत, महाभारत एवं विविध पुराणों के प्रभाव का स्पष्टीकरण किया जा चुका है। और इसी अध्याय के "ख" भाग में धर्म, नीति, दर्शन, काव्य शास्त्र अन्य शास्त्रों की भी प्रभाव कारिता स्पष्ट की जा चुकी है। अतः यहाँ पर मुख्य रूप से पूर्व अंशों में अवर्णित ग्रन्थों के प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत है -

(1) वाल्मीकि रामायण-

यह राम कथा का आदि ग्रन्थ है, जिसका आधार लेकर किसी न किसी रूप में सभी राम कथा कवियों ने अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की है। विश्रामसागर के कवि ने भी अनेक अंशों में इसका आश्रय लिया है[1] उदाहरणार्थ -

सुमिरि राम सिय संत गुरु, नमय गिरा सुखदानि।
कहौं आदि कवि कहनि कछु नाटक रीति बखानि॥[1]

सुमिरि राम सिय संत गुरु, नमय गिरा सुखदानि।
कहौं आदि कवि कथनि कछु, नाटक रीति बखानि॥[2]

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर सिद्ध होता है कि कवि ने वाल्मीकि रामायण का भी आंशिक प्रभाव ग्रहण किया है।

अध्यात्म रामायण -

वैष्णवों में "अध्यात्मरामायण" अत्यन्त आदरणीय ग्रन्थ है "विश्राम सागर" का कवि भी वैष्णव था, अतः उसने इस ग्रन्थ का भी आधार लिया है। यथा -

बरणौं मानस मत कछुक, अध्यातमहिं बखानि॥[3]

इस कथन से सिद्ध होता है कि उक्त ग्रन्थों में "मानस" और अध्यात्म का मिश्रण करके कवि ने अपने वर्ण्य विषय को निर्मित किया है।

श्रीमद्भागवत -

श्रीमद्भागवत राम, कृष्ण एवं समस्त अवतारों का प्रतिपादक

1- विश्रामसागर, रामायण खण्ड, अध्याय- 21 पृ0 960
2- वही, वही, अध्याय- 22 पृ0 971
3- वही, वही, अध्याय 12 पृ0 828

अध्याय - 11

उपसंहार

'विश्रामसागर' अपने नाम के अनुकूल ही लोक जीवन के आतिशय-
वातावरण से श्रान्त पथिक को विश्राम देने वाला है। इसमें कवि ने अपनी
कवित्व प्रतिभा के आधार पर अपने जीवन सिद्धान्तों को वाणी देने का स्तुत्य
प्रयास किया है। यद्यपि वे सम्प्रदाय से वैष्णव थे और वैष्णव धर्म का उद्घोष
भी उन्होंने ग्रन्थ के अधिकांश भागों में किया है, किन्तु व्यापक रूप से विचार
करने पर यह सिद्ध होता है कि वे सच्चे अर्थों में संत थे। मानव मात्र उनका संसार
था, सांसारिक विषयों से उनकी विरक्ति थी, संतों की सहिष्णुता, परोपकारिता
और जितेन्द्रिय-वृत्ति उनके जीवन में स्वर्ण रश्मि बन कर बिखर रही थी।
यद्यपि भक्ति के अपूर्व रंग में रंगे हुए इस महापुरुष ने अपनी सर्वाधिक चेष्टा का
सगुण राम-नाम की महिमा का गुणगान करने में किया है और "राम" नाम को
भगवान् के सभी नामों में शिरोमणि माना है, किन्तु उनकी वैष्णवभक्ति का
उदात्त प्रवाह ही कवि के मुख्य कथ्य के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

अपने आराध्य के रूप में इन्होंने सीताराम की युगल छवि को
महत्ता दी है और इस ग्रंथ के विषय में यह लिखा है कि विश्रामसागर सब
ग्रन्थों का पवित्र तत्त्व है।[अखिल ग्रन्थसारम्मर्यं] इस ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय में
राम, सीता, संत, गुरु, गणेश, और शुभदायिनी, सरस्वती का स्मरण किया
गया है। यथा -" सुमिरि राम सिय सन्त गुरु, गणप गिरा सुखदानि ।।"

दोहे का यह पूर्वार्द्ध प्रति अध्याय में पुनरुक्त है, जिससे यह सिद्ध
होता है कि राम सीता की युगल-छवि के अतिरिक्त वरीयता क्रम में कवि ने
संतों को महत्त्व दिया है। "राम से अधिक राम कर दासा" तुलसी की यह
उक्ति भी संतों के महत्त्व को विशिष्ट स्थान देती है। तदुपरान्त गुरु को महत्त्व
दिया गया जैसे कि सभी साधकों ने "गुरुः ब्रह्मा गुरुः विष्णु" के रूप में
गुरु प्रतिभा का गान किया है। इसके अनन्तर गणेश और सरस्वती का स्मरण ग्रन्थ
के निर्विघ्न परिसमाप्ति और कवित्व शक्ति की सम्प्राप्ति के लिए अपेक्षित है।

इससे यह स्पष्ट है कि कवि अद्वैतवादी नहीं रहा, उसे द्वैत-वादी या विशिष्टाद्वैतवादी कह सकते हैं । अन्य देवों के विषय में भी कवि ने अपनी उदार बुद्धि का परिचय दिया है, जिनमें भगवान शंकर का प्रमुख स्थान है। कवित्व के विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें पिंगल शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान था । गणों का परिचय और उनके फलाफल का विचार करना यह सिद्ध करता है कि उन्हें पिंगल शास्त्र का उचित ज्ञान था । रामचरित मानस की दोहा, - चौपाई, शैली ही नहीं, अपितु एक विशिष्टता यह सिद्ध करती है कि रामचरित मानस का आदर्श उनकी शैली, उनकी विचार धारा और कहीं - कहीं उनके भाव और शब्दावली तक लेकर कवि ने उक्त ग्रन्थ पर अपनी असीम श्रद्धा व्यक्त की है । कवित्व दृष्टि से चमत्कार प्रदर्शन की सामान्य प्रवृत्ति से इन्हें अछूता नहीं कहा जा सकता । सूर की भाँति "सारंग" शब्द का प्रयोग इस बात को सिद्ध करता है ।

इन्होंने 'विश्रामसागर' में श्री देवादास को अपना गुरु लिखा है जो अयोध्या के प्रसिद्ध वैष्णव थे। कवि ने इस ग्रन्थ में 65 प्रकार के छंदों का प्रयोग करके अपनी कवित्वशक्ति का प्रखर परिचय दिया है और काव्य शास्त्र के ध्वनि, वक्रोक्ति, रसवाद आदि विषय का भी उल्लेख कर उन विषयों के परिज्ञान का परिचय दिया है । लोक भाषा के महत्व का गान करना इस बात का द्योतक है कि कवि को लोक भाषा से विशेष प्रेम रहा है। इसीलिए उसने अवधी में प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की है । कवि का 'धार्मिक-विवेचन' मानवता , सदाचार और धर्म नीति से अनुप्राणित है। इसके लिए उसने विविध, सुन्दर, रोचक आख्यानों में प्रस्तुत किया है ।

वैष्णव पंथ में गुरु दीक्षा का बड़ा महत्व है । अतः इन्होंने भी गुरु दीक्षा की पर्याप्त महिमा गायी है। जिससे यह सिद्ध होता है कि गुरु के बिना जीवन निरर्थक है । इस प्रकार इन्होंने वैष्णव धर्म को श्रेष्ठतम् धर्म माना है। राम-नाम की विविध व्युत्पत्ति और उसके विविध महत्व को कवि ने स्थान-स्थान पर प्रदर्शित किया है । व्याध, गणिका, गज, अजामिल जैसे अनेक पापियों

के उद्धार सम्बन्धी कथानकों को प्रस्तुत करते हुए कवि ने वैष्णव वाद की प्रधानता दी है और शाक्तों की भर-पेट निन्दा की है, क्योंकि वे नैतिक आचरण से रहित होते हैं। मुख्य मनुष्य का क्या धर्म है इस सन्दर्भ में दया, योग, तीर्थ, संयम, दान, सत्संगति भक्ति आदि को विविध प्रकार से समझाते हुए यह बतलाया है कि सत्कर्म से सुगति होती है और दुष्कर्म से दुर्गति होती है। संसार की मुक्ति के लिए कवि ने यह उपाय बतलाया है कि कामादि विकारों का परित्याग करना, इन्द्रियों से मुक्ति, संसार के विषयों पर नश्वरता, समत्व बुद्धि, राम भक्ति और निरालम्ब वृत्ति के द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसके लिए अहर्निश राम नाम का भजन श्रेयस्कर है। इन्हीं तत्वों के विषय में कवि ने विभिन्न पौराणिक-ग्रन्थों से अनेक रोचक आख्यानों को प्रस्तुत करके अपने कथन की पुष्टि की है। इस प्रकार राम भक्ति में निष्ठ इस कवि ने भक्ति मार्ग के पाँच कंटक बतलाए हैं- विद्यामद, जातिमद, प्रतिष्ठामद, यौवन मद, और रूपमद। इसके अतिरिक्त भक्ति के बाधक ऋद्धि-सिद्धि जैसे लोभों से भी सावधान रहने को महत्व दिया है। लोक-कल्याण के लिए उसने राजा के लिए भी धर्म नीति का उपदेश दिया है। वैष्णव-धर्म में एकादशी का बड़ा महत्व है। अतः कवि ने वर्ष में होने वाली चौबीस एका-दशी तिथियों का महत्व बतलाया है और धार्मिक दृष्टि से गंगा के महत्व को भी स्वीकार किया है। इसी प्रकार वैष्णव पंथ में "तुलसी" का विशिष्ट माहात्म्य है। अतः कवि ने तुलसी की महत्ता अत्यन्त विस्तार से बतलायी है। साधु पुरुष सत्संग के महत्व को विशेष आदर देते हैं, अतः विश्रामसागर में भी सत्संगति की महिमा विविध प्रकार से कही गयी है।

दार्शनिक दृष्टि से कवि ने स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का प्रामाणिक विचार प्रस्तुत किया है और प्रसंगवश प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व आदि सांख्य-शास्त्रीय विवेचन करते हुए षड् दर्शनों का सारांश संक्षेप में प्रस्तुत किया है, जिससे दर्शन का सामान्य अध्येता अनभिज्ञ हुए बिना नहीं रह सकता। भक्ति-विवेचन के प्रसंग में कवि ने नवधा भक्तियों का सविस्तार परिचय दिया है जिसमें प्रतिमा-पूजन और उसके विविध भेदों को बतलाया गया है।

इस प्रकार तैंतालीस अध्याय में ग्रन्थ का प्रथम भाग वसिष्ठायन वैष्णव धर्म का ही प्रतिपादक है, जिसमें कवि ने धर्म, नीति, साधना और इतिहास को मिलाकर ग्रन्थ को रोचक बनाने की सफल चेष्टा की है।

ग्रन्थ का द्वितीय खण्ड 'कृष्णायन' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें कवि ने राम और कृष्ण को अभिन्न मान कर उनका महत्व अंकित किया है और इसी सन्दर्भ में दशावतारों पर भी अपनी आस्था व्यक्त की है कलियुग की विभीषिका से कवि ने इस अंश को प्रारम्भ किया है। कृष्ण की परम्परित कथा श्रीमद्भागवत् तथा अन्य पुराणों के आधार पर वर्णित की है। जिसमें कोई मौलिकता नहीं दिखायी देती। इतना अवश्य है कि श्री कृष्ण की रासलीला के प्रसंग में कवि ने किसी प्रकार की अश्लीलता नहीं आने दी। केवल नृत्य एवं क्रीड़ा तक ही विषय को सीमित रखा है कृष्ण लीला के प्रसंग में कवि ने 'नायिका-भेद' का उल्लेख कर जहाँ अपनी काव्य-शास्त्रीय-प्रतिभा का परिचय दिया है, वह केवल परिगणनात्मक होने के कारण कोई विशेष महत्व नहीं रखता। इसी प्रकार चौंसठ कलाओं के नामोल्लेख से भी कोई चमत्कार उत्पन्न नहीं होता, क्यों कि उनका उल्लेख अनेक ग्रन्थों में प्राप्त है। इतना अवश्य है कि सोलह श्रृंगार और नायिका भेद के चित्रण में कवि ने छंदों का सुन्दर प्रयोग किया है, जो कवित्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण लगते हैं। इस प्रकार बारह अध्याय के माध्यम से कवि ने जो कृष्ण कथा लिखी है वह कवि के वैष्णव वाद का ही एक अंग बन कर रह गयी है, जिसमें कोई नवीनता नहीं है।

ग्रन्थ का अन्तिम खण्ड 'रामायण' है। जिसमें कवि ने अपने आराध्य राम को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अंश के रूप में मान्यता दी है। उनकी दृष्टि में राम अनन्त हैं और उनके गुण भी अनन्त हैं। प्रारम्भ में राम जन्म के हेतुओं पर प्रकाश डालते हुए कवि ने रामचरितमानस एवं गीता के अवतार-विषयक उद्धरणों को आत्मसात् करते हुए कुछ अन्य कारणों पर भी प्रकाश डाला है। उदाहरणार्थ - देवताओं के अहंकार का विनाश करना, सीता जी को कुछ दिखाने की अभिलाषा, संसार को वैराग्य की शिक्षा देना, जनक का प्रेम आदि।

इससे कवि की मौलिकता भी कुछ सिद्ध होती है । इस ग्रन्थ में कवि ने रावण-कुम्भकर्ण के जन्म के सम्बन्ध में मानस की अपेक्षा कुछ विस्तृत जानकारी दी है। उदाहरणार्थ - ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य ऋषि से लेकर भरद्वाज मुनि की कन्या सुश्रवा से विवाह, विश्रवा से कुबेर की उत्पत्ति, कुबेर द्वारा मय की पुत्री देवी और (सुवक्षा) का विवाह. विश्रवा से कराना और 'देवी' नामक कन्या से रावण और कुम्भकर्ण की उत्पत्ति बतलायी गयी है । इसी प्रकार प्रतिपक्ष के बन्धुओं का जन्म विस्तार से बतलाया गया है । जिसका मूल आधार ब्रह्माण्ड पुराण है। ऐसा करने से एक आवश्यक अंश की पूर्ति हुयी है। इसी प्रकार कौशल्या की उत्पत्ति 'वृहद्- रामायण' के आधार पर वर्णित है, जिसका उल्लेख रामचरित मानस में नहीं है। ऐसा करके कवि ने पाठकों के चित्त की जिज्ञासा को शान्त किया है। बाल-लीलाओं के वर्णन में 'भुशुण्डि-चरित्र' और 'लोमश रामायण' के आधार पर कवि ने अनेक ऐसी लीलाओं का वर्णन किया है, जो 'राम चरित मानस' में भी नहीं है। उदाहरणार्थ - अन्नप्राशन का सविस्तार वर्णन, वर्ष गाँठ की विचित्रता, राम के चरणों में सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अड़तालीस चिन्हों का उल्लेख महत्व पूर्ण है । हनुमद् जन्म का कथानक भी इस सन्दर्भ में रोचक ढंग से वर्णित है। राम के भोजन के प्रसंग में अधिपाक शास्त्र की जो एक लम्बी-चुनी प्रस्तुत की है, वह विशेष आकर्षक तो नहीं, किन्तु चमत्कारिक अवश्य प्रतीत होती है ।

प्रसंगों की दृष्टि से 'लक्ष्मण-परशुराम-सम्वाद' मौलिक न होता हुआ भी काव्यात्मक शैली के कारण स्मरणीय बन पड़ा है । राम के विवाह का वर्णन करने में भी चमत्कार प्रधान दृष्टि के कारण उक्त प्रसंग विशेष रमणीय लगता है । यद्यपि राम चरित मानस में 'राम-कौवा' का उल्लेख नहीं है, किन्तु कवि ने 'कौशल-खंड' के आधार पर उसका उल्लेख किया है । जिसमें हास - परिहास की सृष्टि हुई है । इसे राम भक्ति की रसिक शाखा का प्रभाव माना जा सकता है । दशरथ की मृत्यु होने पर वशिष्ठ के द्वारा उपदेश दिलाने में कवि ने गीता एवं दर्शन के प्रभाव को लिपिबद्ध कर मानस की कमी को दूर करने की

चेष्टा की है । 'रामायण' ग्रन्थ के आकर्षक अंशों में 'रावण-हनुमान-सम्वाद' उल्लेखनीय है, जिसमें विविध प्रकार के छंदों के द्वारा कवि ने आलंकारिक छटा उत्पन्न की है जिसमें केशव कृत 'रामचन्द्रिका' की पद्धति का अधिक प्रभाव प्रतीत होता है । फिर भी उक्त वर्णन उत्कृष्ट है। इसी प्रकार रावण अंगद सम्वादों में भी कवि ने 'राम चन्द्रिका' से प्रेरणा ग्रहण कर काव्यात्मक चमत्कार उत्पन्न किया है । लक्ष्मण - मेघनाद युद्ध और लक्ष्मण शक्ति के प्रसंग भी मनोहर हैं । भले ही उनमें कोई नवीनता न हो, किन्तु काव्यात्मक चमत्कार से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

अंत में राम रावण युद्ध की विभीषिका को कवि ने उदात्त-भाषा-शैली में व्यक्त किया है। इसी प्रकार राम के राज्याभिषेक प्रसंग में कवि ने विविध छंदों के सुन्दर सोपानों द्वारा उत्कृष्ट काव्यात्मक चमत्कार दिखाने की चेष्टा की है । यह ग्रन्थकार की मनोवृत्ति के ही अनुकूल है । ग्रन्थ के उपसंहार में अपने को 'रामानुज सम्प्रदाय' में दीक्षित बताया है। 'ब्रह्मदास' स्वामी से जो परम्परा प्रचलित हुई उसमें गोविन्द राम, लक्ष्मदास, कृपाराम, रामचरण रामजन , जानकर, हरिराम, देवादास और रघुनाथ दास तक की शिष्य-परम्परा बतलायी गयी है । कवि ने स्वयं अपनी बुद्धि को मधुमक्खी की उपमा दी है और अपने इस ग्रन्थ को पावन मधु के रूप में स्वीकार किया है । वैष्णवों की प्राचीनतम परम्परा के आचार्य 'शठकोप' का नाम लिखकर कवि ने अपनी परम्परा प्रमाणित कर दी है क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से आचार्य 'शठकोप' जिनका समय छठवीं-सातवीं शताब्दी माना जाता है, प्राचीनतम राम-भक्त माने जाते हैं । कवि ने स्वामी रामानुजार्य निम्बकाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णु स्वामी, श्रीलालाचार्य, श्रीपयहारीजी, श्री कील्हदेवजी, श्री अग्रदेवजी, आचार्य श्री शंकर स्वामी जी, नामदेव , जयदेव श्रीधर श्रीबिल्वमंगल, श्री ज्ञानदेव, श्रीत्रिलोचन जी श्री वल्लभाचार्य जी, भक्तदास, सूरदास, श्री तुलाजी . श्री गदाधर जी, श्री प्रेमनिधिजी, कुबेरधर जी, लीलानुकरणजी, कर्माबाई आदि अनेक भावुक भक्तों का उल्लेख किया है । इतना ही नहीं कवि रैदास, कबीर,

कबा, भक्तरैन, रघुनाथ, माधवदास, हरिव्यास, नरहरियानंद, नाभाजी, गोविन्द स्वामी, विट्ठलदास, तुलसीदास, कृष्णदास और प्रयागदास जैसे संतों का स्मरण किया है, जिससे कवि की संत-विषयक-आस्था प्रकट होती है ।

इस प्रकार 'विश्रामसागर' में राम कथा का विविध पुराणों एवं काव्य ग्रन्थों के आधार पर प्रणयन करके कवि ने अपनी मधुर वृत्ति का सफल परिचय दिया है । यह ग्रन्थ एक ओर भक्तों का विश्रामस्थल है तो दूसरी ओर धार्मिक व्यक्तियों के लिए विशेषतः भक्तों के लिए एक अमूल्य हार है, जिसे धारण कर उनके व्यक्तित्व की शोभा में वृद्धि हो सकती है । सामाजिक दृष्टि से इस ग्रन्थ के माध्यम से नैतिक आचरण का जो प्रभाव पाठक पर पड़ता है वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

अस्तु, भाव-पक्ष से विश्रांत व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ वास्तव में विश्रामसागर है + और इसमें रामचरित मानस का सर्वाधिक प्रभाव प्रतीत होता है इसको निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यमों से समझा जा सकता है -

(क) जिस प्रकार 'रामचरित-मानस' के प्रत्येक काण्ड में श्लोक रचे गए हैं, वैसे ही विश्रामसागर का प्रत्येक खंड श्लोकों से प्रारम्भ किया गया है ।

(ख) जिस प्रकार रामचरितमानस में राम कथा मुख्य है, उसी प्रकार विश्रामसागर में भी राम कथा मुख्य है ।

(ग) जिस प्रकार राम कथा में मानस के पात्र आदर्श हैं, उसी प्रकार इस ग्रन्थ में श्री राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, हनुमान, जैसे पात्र आदर्श हैं ।

(घ) जिस प्रकार मानस में राम नाम की महिमा का गान किया गया है, सत्संगादि के महत्व को बताया गया है, + उसी प्रकार इस ग्रन्थ में भी उक्त विशेषताएँ विद्यमान है ।

(ङ) मानस की भाँति यह ग्रन्थ भी दोहा - चौपाई शैली में और अवधी-भाषा में निबद्ध है ।

(च) जिस प्रकार मानस में सांगरूपकों का प्रयोग किया है उसी प्रकार इसमें भी सांगरूपक प्रयुक्त हैं ।

(छ) जिस प्रकार मानस में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, और लोक-कल्याण की भावना सन्निहित है, उसी प्रकार विश्रामसागर में भी यह सभी विशेषतायें विद्यमान हैं।

(ज) जिस प्रकार 'मानस' में 'नाना, पुराण, निगमागम,' के प्रभाव का उल्लेख किया गया है - उसी प्रकार विश्रामसागर में भी स्वयं कवि ने विभिन्न पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों के आश्रय लेने का उल्लेख किया है।

अतः यह कह सकते हैं कि कवि के सामने 'रामचरित मानस' एक आदर्श ग्रन्थ के रूप में रहा है और लौकिक दृष्टि से कवि ने अपने ग्रन्थ को लोक प्रसिद्ध करने में भी पर्याप्त सफलता मिली है। यह बात दूसरी है कि रामचरित मानस जैसी विश्वव्यापी ख्याति इस ग्रन्थ को नहीं मिल पायी।

सम्बद्ध ग्रन्थों की सूची -

संस्कृत ग्रन्थ -

1- अभिज्ञान शाकुन्तल- कालिदास- साहित्य संस्थान साउदर रोड, इलाहाबाद

2- अग्नि पुराण- वेद व्यास - खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई

3- कुमार सम्भव- कालिदास-चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

4- काव्य प्रकाश - मम्मट - चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

5- काव्य प्रकाश टीका भाग - रघुनाथ दामोदर- चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी ।

6- कादम्बरी- बाणभट्ट- चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।

7- गीता- वेद व्यास- गीता प्रेस, गोरखपुर ।

8- तैत्तिरीयोपनिषद- गीता प्रेस गोरखपुर ।

9- दशरूपक - धनंजय, साहित्य भंडार, शिक्षा साहित्य प्रकाशन सुभाष बाजार मेरठ ।

10- देवी भागवत- खेमराज श्री कृष्ण दास , बम्बई ।

11- ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धन - साहित्य भंडार शिक्षा साहित्य प्रकाशन सुभाष बाजार मेरठ ।

12- नृसिंह पुराण - , गीताप्रेस गोरखपुर ।

13- पुराण विमर्श , आचार्य बलदेव उपाध्याय , खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई ।

14- पद्म पुराण - खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई ।

15- प्रेम दर्शन - देवर्षि नारद विरचित - खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई।

16- ब्रह्मवैवर्त - खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई ।

17- मनुस्मृति - "मनु" [कुल्लूकी टीका] चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।

18- महानारायणोपनिषद् - गीताप्रेस गोरखपुर ।

19- महाभारत- वेदव्यास , गीताप्रेस गोरखपुर ।

20- रामायण वाल्मीकि - चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी ।

21- विष्णु पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर ।

22- वाक्य पदीय - भर्तृहरि - चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी

23- श्रीमद्भागवत - खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई ।

24- सांख्य कारिका - ईश्वरकृष्ण - चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी

25- संस्कृत साहित्य का इतिहास - प्रो० शिव बालक द्विवेदी - ग्रन्थम राम बाग कानपुर ।

26- साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी

हिन्दी ग्रन्थ -
+++++++++++

1- आधुनिक हिन्दी निबन्ध - भुवनेश्वरी चरण सक्सेना , न्यू विज्डम अमीनाबाद लखनऊ ।

2- आधुनिक हिन्दी निबन्ध - श्री व्यथित हृदय- दिनमान प्रकाशन चर्खेवालान दिल्ली ।

3- उद्धव शतक - रत्नाकर - इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड प्रयाग ।

4- कामायनी- जयशंकर प्रसाद - प्रसाद प्रकाशन वाराणसी ।

5- काव्य शास्त्र - डॉ० कृष्ण दत्त अवस्थी - ग्रन्थम रामबाग कानपुर ।

6- कबीरवाणी - कबीरदास - कमल प्रकाशन 94 प्रिंस यशवन्त रोड इन्दौर ।

7- पद्मावत - मलिक मोहम्मद जायसी - ग्रन्थम रामबाग कानपुर ।

8- प्राचीन प्रमुख हिन्दी कवियों का मूल्यांकन- प्रो० मिश्र- कमला प्रकाशन स्वरूप नगर कानपुर ।

9- बिहारी सतसई - बिहारी, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ।

10- भारतीय दर्शन - वाचस्पति गैरोला - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

11- भक्ति रसामृत सिंधु - डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली ।

12- भक्त भगवन्त चरितावली - परमहंस राममंगल दास - अयोध्या ।

13- भारत का संवैधानिक इतिहास तथा राष्ट्रीय आंदोलन - विद्याधर, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी (प्रा0) लि0 रामनगर नई दिल्ली ।

14- राम नाम सुमिरणी - रघुनाथ दास रामसनेही , बसु काम चीनी बाजार सिधार थाना लखनऊ ।

15- रामचन्द्रिका - आचार्य केशवदास, राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट,दिल्ली ।

16- रामचरित मानस - तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर ।

17- विश्रामसागर, बाबा रघुनाथ दास रामसनेही, तेजकुमार बुकडिपो, प्राइवेट लिमिटेड लखनऊ ।

18- विनय पत्रिका - तुलसी दास, गीता प्रेस गोरखपुर ।

19- शब्द शक्ति रस एवं अलंकार , डॉ० ताराचन्द्र शर्मा , महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा ।

20- शिक्षा मनोविज्ञान - डॉ० मालती सारस्वत - आलोक प्रकाशन लखनऊ ।

21- साहित्यिक निबन्ध , डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद ।

22- साहित्यिक निबन्ध , राजनाथ शर्मा , विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

23- साहित्यिक निबन्ध, डॉ० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी

विविध - कल्याण, अंक विशेषांक, साधना, उपासना, सदाचार, अवध सन्देश सन्त चरितांक, श्री राम जी रामायणी शिव ताण्डव स्तोत्र ।